डब्लू. [illegible]

पदार्थ विद्यासार

5491

- डॉ. चतुर्वेदी

पदार्थ विद्यासार

⁂

सम्पादक :

सप्ताचार्य

डॉ० वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी

एम. ए. (हिन्दी-संस्कृत) पी-एच. डी-, डी. लिट्.,

रीडर एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग

प्राच्यदर्शन महाविद्यालय

वृन्दावन (मथुरा)

⁂

अनुवादक :

डॉ० लवनाथ चतुर्वेदी

⁂

प्राध्यापक :

सेठ वी. एन. पोद्दार उ. मा. वि. मथुरा

प्रकाशक :

श्रीकृष्ण सत्सङ्ग भवन

मथुरा (उ० प्र०)

पदार्थ विद्या सार

❖

सम्पादक :

सप्ताचार्य

डॉ० वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी

एम. ए. (हिन्दी-संस्कृत) पी-एच. डी., डी. लिट्.,

रीडर एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग

प्राच्यदर्शन महाविद्यालय

वृन्दावन (मथुरा)

★

अनुवादक :

डॉ० लवनाथ चतुर्वेदी

साहित्याचार्य, एम. ए. (हिन्दी-संस्कृत) पी-एच. डी.

प्राध्यापक :

सेठ बी. एन. पोद्दार उ.मा. विद्यालय, मथुरा

प्रकाशक :

श्रीकृष्ण सत्सङ्ग भवन

मथुरा (उ० प्र०)

उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी, लखनऊ के
६०% आर्थिक अनुदान से प्रकाशित

卐

प्रथम संस्करण : १००० प्रति

卐

सन् १९८२

5491

卐

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

State Museum Library, Lucknow

卐

प्रकाशक :
श्रीकृष्ण सत्संग भवन
गतश्रम टीला,
मथुरा

卐

मूल्य : Rs 15P 00

卐

मुद्रक :
प्राची प्रिन्टिंग प्रेस, वृन्दावन
वृन्दावन

PADARTH VIDYASAR

●

Editor :
Dr. V. K. Chaturvedi
M. A. (Hindi-Sanskrit) Ph-D., D. Litt
Reader and Head of the Sanskrit Department
I. O. P. Vrindaban (Mathura)

●

Translatar :
Dr. Lavanath Chaturvedi
Acharya M. A. (Hindi-Sanskrit) Ph-D.

●

Lacturar :
Seth V. N. Poddar
Higher Secondery School Mathura

●

Publisher :
Shri Krishna Satsang Bhavan
Prakashan
MATHURA (U. P.)

Published by 60% Grant of Uttar Pradesh
Sanskrit Akadami—Lucknaw

⁂

First Edition— 1000 Copies

⁂

5491

Year : 1982

Copy Right—Publisher

State Museum Library . Lucknow .

⁂

Publishers :
Shri Krishna Satsang Bhavan Prakashan
Gatashram Tila,
Mathura

⁂

Price : Rs 15 P 00

⁂

Printer :
Pakhi Printing Press,
Vrindaban

।। श्रीद्वारकेशो विजयते ।।

प्राक्कथन

प्रणम्य श्रीवराचार्यान् गुरून् विद्याविवृद्धये ।
पदार्थविद्यासाराख्यो ग्रन्थोहिन्द्यामनूद्यते ।।

पदार्थ विद्यासार नामक ग्रन्थ संस्कृत भाषा में है और इसका प्रकाशन १८२८ ई० में कलकत्ता में स्कूल बुक सोसाइटी सरकूलर रोड से हुआ था। 'नेचुरल फिलासफी और नेचुरल हिस्ट्री'एक सीरिज निकाली गई थी उसी का संस्कृत में प्रस्तुतीकरण किया गया है। बालकों को पदार्थ ज्ञान के लिये कथोपकथन के रूप में इस ग्रन्थ को प्रस्तुत किया गया है। मूल ग्रन्थ १०१ पृष्ठ का है।

इस ग्रन्थ की रचना के पूर्व भूगोल सम्बन्धी ग्रन्थ निकला था जैसा कि प्रारम्भ में संकेत हैं–हे शिष्य ! "त्वं भूगोल वृत्तान्तं शिक्षितवानधुना किं अन्यत् शिक्षितुमिच्छसि तन्मांवद" अर्थात् हे शिष्य ! तुम भूगोल वृत्तान्त को सीख चुके हो अब और क्या सीखना चाहते हो।

ईश्वरीय सृष्ट विषयों को जानकर दो बातें सामने आती हैं। एक तो सुख की प्राप्ति दूसरे ज्ञान की वृद्धि। परमेश्वर ने अपने रचे विषयों को देखने के लिये नयन दिये हैं। अतः उनसे उनका देखना उचित और सुखप्रद है। इस ज्ञान के लिये ज्ञानी और अज्ञानी दोनों समान रूप में प्राप्त कर सकते हैं। कारण यह है कि ईश्वर द्वारा रचित वस्तु तो सबके सामने ही है।

इसका प्रारम्भ आत्मा और अनात्मा से किया है। आत्मा का लक्षण देते हुए ग्रन्थकार का कथन है कि जिससे हमारी बुद्धि का विवेचन होता है वह आत्मा अदृश्य है दिखलाई नहीं देता और अस्पृश्य है छूआ नहीं जा सकता दूसरी बात यह है कि अनात्म वस्तु में आकर्षण होता है विस्तार होता है, कठिनत्व आकार होता है और स्वतन्त्रता पूर्वक अनात्म वस्तु कहीं आने-जाने योग्य नहीं होती प्रथम कथोपकथन में विस्तार-आकर्षण-खण्डनीयता, कठिनता, आकार, अस्वतन्त्र गमन आदि का विवेचन किया गया है।

द्वितीय—कथोपकथन में आकाश के गुण, नीलापन क्यों ? तारागणों का स्वरूप, कितने तारा हैं ? तारा में चंचल कान्ति क्यों दिखलाई देती है ? तारा संकीर्णाकार वाले क्यों होते हैं ? तारा सूर्य के समान हैं, सूय का परिमाण क्या है वह पृथ्वी से कितनी दूरी पर है ? पृथ्वी ग्रीष्मकाल में सूर्य के निकट पहुंचती है या शीतकाल में इसका कारण क्या है ?

प्रकाश का स्वाभाविक गुण क्या है, सूर्य की किरण सूर्य से निकलकर पृथ्वी में कितनी देर में आ जाती है दिन-रात का कारण क्या है।

ऋतुओं का निर्माण कैसे होता है, उत्तरायण दक्षिणायन क्या है, ग्रीष्म और शीत कहाँ एक से है।

ग्रहों के नाम उनकी परस्पर दूरी, चन्द्रमा की पृथ्वी से दूरी, चन्द्रग्रहण, चन्द्रलोक वासियों को यह पृथ्वी ही चन्द्रमा है, चन्द्रमा का कलंक क्या है ? धूमकेतु के फल, उल्कापात आदि का विवेचन करके इस द्वितीय कथोपकथन का उपसंहार किया गया है।

तृतीय—कथोपकथन में स्थिर वायु-सामान्य वायु-वाष्प वायु आदि का विवेचन है। वायु के गुण और मेघों से दूरी आदि का विवेचन भी विस्तार पूर्वक इसमें किया गया है। कृषि क्यों होती है इसका कारण क्या है भारत में वर्ष में कितनी वृष्टि होती है—बरफ और करक में क्या वैशिष्ट्य है।

चतुर्थ—में पृथ्वी किस पर है, पृथ्वी के कितने भाग हैं, पर्वतों की स्थिति, मिट्टी के भीतर धातु कैसे आती हैं। समुद्र में ज्वार-भाटे कैसे आते हैं, नदियों के पानी से समुद्र बढ़ता क्यों नहीं है, समुद्र का पानी खारी क्यों है, समुद्र की उपयोगिता क्या है, वाष्प कैसे बनता है। वह्नि की सत्ता आदि का विवेचन भी इसमें प्रस्तुत है।

पंचम—में मनुष्य के अंग प्रत्यंगों के प्रश्नों का समाधान लोम कूपों का प्रयोजन रखा है।

इसी के द्वितीय भाग में—आमाशय, रक्त स्थान, वृद्धि रक्तगति और इसमें—शरीर और आत्मा का सम्बन्ध, आत्मा का स्थान ब्रह्मरन्ध्र है।

षष्ठ—में ६ प्रकार के जन्तुओं का विवेचन है। दुग्धपायी-भू-जलचर, पक्षी, मत्स्य, पतङ्ग, कीट का स्वरूप, इनकी भाषा, जन्तुओं के वर्ग, पशुवर्ग में मनुष्य भी है। विभिन्न वर्ग के जन्तुओं का विवेचन भी इसमें विस्तार से किया है।

सप्तम—में पक्षियों के ६ वर्गों का विवेचन, पक्षियों के अवयव, दांत, नेत्र, आदि का विस्तृत वर्णन है।

अष्टम—में मत्स्यों के भेद, मत्स्यों के आकार प्रकार इनके भोजन आदि का विवेचन है।

नवम—में पतङ्ग विषयक विवेचन है, इनके ७ वर्ग हैं। चेंटी, मक्खी, वर्र आदि का स्वरूप, जन्म, भोज्य आदि का विवेचन भी है।

दशम—में कृमि जाति के ५ वर्गों का विवेचन, कृमि जन्म की अनिर्वचनीयता, इनके आकार प्रकार, चरण, सींग, डाढ़, अण्ड आदि का विवेचन है।

एकादश—में वृक्ष पुष्प आदि का विवेचन, वृक्षों की ७७ जाति, बीज से वृक्ष की उत्पत्ति, फल वाले वृक्ष, फलों की उत्पत्ति कैसे होती है, ३ वर्ष तक बीज सुरक्षित रहते हैं, वाष्प और ताप से बीजों से अंकुर जन्म।

द्वादश—में घास का विवेचन, गेहूँ, जौ, चना आदि समग्र धान्यों का विवेचन भी इसमें प्रस्तुत है।

त्रयोदश—में खानोंके चार भेद, प्रसारों के भेद, मृत्तिकामय, लवणमय, काच निर्माण, हीरा आदि रत्न निर्माण विधि, सीमेंट आदि का विवेचन है। गन्धक, मिट्टी का तेल, यक्षधूप, मृन्मयांगार, लौह आदि धातुओं का विवेचन है।

चतुर्दश—में नाना देश में उत्पन्न वस्तुओं का वर्णन है। मुख्यतया-एशिया-योरुप-लन्दन-अफ्रीका-अमेरिका आदि देशों की वस्तुओं का विस्तृत विवेचन है।

संस्कृत भाषा में इस प्रकार का यह प्रथम अनुवाद है। बालकों के ही नहीं वयस्कों के ज्ञान वर्धन हेतु अनेक प्रश्नों के माध्यम से कठिन से कठिन विषयों का सरल ढंग से प्रतिपादन करना इस पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता है।

यह पुस्तक संस्कृत की परीक्षाओं में प्रथम स्थान प्राप्त करने योग्य है, एक प्रकार से "गागर में सागर" वाली उक्ति इसमें चरितार्थ होती है। एकत्र ऐसा संग्रह संस्कृत साहित्य में मेरे देखने में अद्यावधि नहीं आया है।

सरल और सहज रूप में संस्कृत भाषा के ज्ञान वर्धन के साथ वालकों को अवश्य विविध विषयों का ज्ञान इससे सुलभ है जो जीवन के लिये सुख कर एवं ज्ञानप्रद है।

मैंने प्रथम वार जब यह ग्रन्थ देखा तो इसके प्रति मेरी वड़ी श्रद्धा हुई कतिपय अंश विदेशियों की प्रशंसा के थे वे अव उपयुक्त नहीं हैं। अतः उनका रखना भी यहां उचित नहीं था, शेष वस्तुओं का परिज्ञान तो सर्वदा सर्वथा हितकारी है। अतः हिन्दी अनुवाद के साथ इसे उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी के लिये प्रस्तुत किया गया। मान्य सदस्यों ने इसे प्रकाशन योग्य स्वीकार कर ६०% अनुदान की स्वीकृति दी है।

प्रारम्भ में इस पुस्तक के अनुवाद में कु० उर्मिला अग्रवाल एम. ए. संस्कृत ने मुझे अत्यन्त सहयोग दिया था, परन्तु तव यह प्रकाशन की भूमिका से दूर ही रहा था।

डा० लवनाथ चतुर्वेदी ने अपने शोधकाल में मुझे पुनः उत्साहित किया तो इसका अनुवाद उन्होंने वड़े श्रम से किया है। अनुवाद में जहां त्रुटियां रह गई हों विद्वज्जन सुधार कर इसके गुण ग्रहण करेंगे और अगला संस्करण समीक्षात्मक निकलेगा उसमें पूर्व त्रुटियों के निरास का पूरा प्रयास किया जायगा।

मुझे विश्वास है—यह कृति संस्कृत प्रेमियों द्वारा अवश्य उत्साह प्राप्त कर विभिन्न कक्षाओं में गौरव वृद्धि करेगी।

इस कार्य के सहयोगी सभी महानुभावों का हृदय से

आभार व्यक्त करना मेरा कर्तव्य है। संस्कृत क्षेत्र इसे अपनायेगा तो अवश्य मेरा श्रम सफल होगा।

उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी को धन्यवाद देना उपयुक्त ही है जिसके आर्थिक साहाय्य के कारण अद्‌भुत ग्रन्थ रत्न प्रकाश में आ रहा है। मैं पाखी प्रिन्टिग प्रेस, वृन्दावन की मुद्रक श्रीमती ऊषा गौतम और कम्पोजीटर श्रीरफीक मुहम्मद को भी धन्यवाद प्रदान करता हुआ संस्कृत प्रेमियों की सेवा में इसे समर्पित कर आनन्द का अनुभव कर रहा हूँ।

"जयन्तिते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः"

गंगा दशहरा　　　　　　　　　　विदुषामाश्रवः

२०३८　　　　　　　　डॉ० वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी

दो शब्द

"पदार्थ विद्यासार" नामक ग्रन्थ का अनुवाद हिन्दी में प्रथम बार प्रकाशित हुआ है जो कि संस्कृत व हिन्दी जगत के छात्रों के लिए ही नहीं अपितु विभिन्न विषयों के संचित ज्ञान की कुंजी के रूप में सभी वर्गों के छात्र एवं सामान्य जन के सामान्य ज्ञान हेतु प्रयोजन सिद्ध होगा, ऐसा मेरा विश्वास है। परम श्रद्धेय गुरुजी डा० श्रीवासुदेवकृष्णजी चतुर्वेदी के अथक प्रयास, परिश्रम तथा अनुग्रह द्वारा इस ग्रन्थ का यथाशक्ति अनुवाद किया गया है। आशा है कि पाठक इसके प्रयोजन को ग्रहण कर अन्य त्रुटियों पर ध्यान न देकर मुझे अनुग्रहीत करेंगे।

इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ के प्रकाशन में संस्कृत-अकादमी उ.प्र. का मैं अधिक आभारी हूँ जिसने युग और समाज के अनुकूल इस ग्रन्थ के प्रकाशन की स्वीकृति प्रदान की। साथ ही अपने गुर-भ्राता श्रीसहदेवकृष्णजी चतुर्वेदी एवं पाखी प्रिन्टिंग प्रेस के कर्मचारियों को धन्यवाद देता हूँ जिनके पुनीत सहयोग से यह ग्रन्थ प्रकाशित हो सका।

भवदीय :

लवनाथ चतुर्वेदी

पदार्थ विद्यासार नामायं ग्रन्थः

(अथ गुरुशिष्ययोः कथोपकथन-व्याजेन ग्रन्थावतरणं)

आभासः

गुरुर्वदति—हे शिष्य ! त्वं भूगोल वृत्तान्तं शिक्षितवानधुना किं अन्यत्शिक्षितुमिच्छसि, तन्मां वद ।

गुरुदेव कहते हैं—हे शिष्य ! तुमने भूगोल वृत्तान्त सीखा, अब क्या दूसरी बात (शिक्षा) सीखना चाहते हो, वह मुझसे कहो ।

शिष्यः कथयति—हे गुरो ! परमेश्वरीय निखिल सृष्टविषयान् ज्ञातुमहमिच्छामि ।

शिष्य कहता है—हे गुरुदेव ! परमेश्वरीय समस्त सृष्टि विषयक ज्ञान (जानकारी) प्राप्त करना चाहता हूँ ।

गुरुः—तदतीव भद्रं, यतः सर्वैरुत्तमलोकैः सर्वदैवेश्वरीय सृष्टविषयान् विज्ञायातीव सन्तुष्यते ।

गुरु—वह अत्यन्त कल्याणकारी है क्योंकि सभी उत्तमजन सर्वदा ईश्वर सृष्ट विषय को जानकर अत्यन्त सन्तुष्ट होते हैं ।

शिष्यः—अहो महाशय ! परमेश्वर सृष्टविषय परिज्ञानेन किमस्माकं प्रयोजनं स्यात् ?

शिष्य—हे महोदय ! परमेश्वर सृष्ट विषय के ज्ञान से हमें क्या प्रयोजन है ?

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गुरुः—सुखं ज्ञानस्य वृद्धिश्चेत्युभयमेव फलम् तस्माद्भवति, स्वीय सृष्टविषयान् दर्शयितुमीश्वरः शरीरिणां खलु नयनान्यसृजत् अतस्तैस्तदवलोकनमुचितं सुखप्रदञ्चेति ।

गुरु—सुख और ज्ञान की वृद्धि ये दोनों ही फल हैं। इसलिये आपको अपनी सृष्टि अर्थात् सृष्ट विषय को दिखाने के लिये ईश्वर ने शरीर धारियों (मनुष्यों) के नेत्रों को बनाया, अतः उनको देखना उचित और सुखप्रद है।

शिष्यः—अहं तावदबोधः किं परमेश्वरीय सृष्टविषयान् ज्ञातुं शकिष्यामि तत्र किमधिक बोधापेक्षा नास्ति ?

शिष्य—मैं तो अबोध (अज्ञानी) हूँ। क्या परमेश्वरीय सृष्ट विषय को जान सकूँगा क्या उसमें अधिक बोध (बुद्धि) की अपेक्षा (आवश्यकता) नहीं है ?

गुरुः—न तत्राधिक बोधापेक्षा, परन्तु ज्ञानवानज्ञानोवेत्युभयमेव तज्ज्ञातुमर्हति तज्ज्ञात्वा तौ सुखिनौ भवितुमर्हतश्चेति न ज्ञानाधिक्यापेक्षास्ति। ईश्वरीय सृष्टवस्तु च सर्वेषां गोचरे विद्यते एतावद्वस्तूनां दर्शनविवेचनयोर्नास्त्यन्य प्रयोजनापेक्षा।

गुरु—इसमें अधिक बोध की अपेक्षा नहीं है, किन्तु ज्ञानवान् और अज्ञानी दोनों को उसे जानना उचित है, उसे जानकर वे दोनों (ज्ञानी, अज्ञानी) सुखी हो सकते हैं, ज्ञानाधिक्य की अपेक्षा नहीं है। ईश्वरीय सृष्ट वस्तु सभी की आँखों के सामने है, इन वस्तुओं को देखने और विवेचन करने के अतिरिक्त और किसी प्रयोजन की अपेक्षा नहीं है।

शिष्यः—एतस्मिन् जगति किं किं वस्तु तावदस्ति ?

शिष्य—इस संसार में क्या-क्या वस्तु है ?

गुरुः—आत्मा अनात्मा चेत्येतावदुभय वस्त्वस्ति।

गुरु—आत्मा और अनात्मा ये दो वस्तु हैं।

शिष्यः—कस्तावदात्मेति ?

शिष्य—तो आत्मा क्या है ?

गुरुः—एतावानेवात्मा येनाऽस्माकं बुद्धिर्विवेचनादि च भवति एवं सचात्माऽदृश्योऽस्पृश्यश्च भवति।

गुरु—ये ही आत्मा है ज़िससे हमको बुद्धि विवेचन होता है और वह आत्मा अदृश्य (न देखे जाने योग्य) और अस्पृश्य (न छूने योग्य) होती है।

शिष्यः—कस्तावदनात्मेति ?

शिष्य—तो अनात्मा क्या है ?

गुरुः—यद्यदेव कृत्स्नं वस्तु दृश्यं स्पृश्यं वा भवति तथा विवेचनादि धर्मविरहितञ्च स्यात्तदेव कृत्स्नं अनात्मेति।

गुरु—जो अदेव अर्थात् मनुष्य कृत वस्तु दृश्य (देखने योग्य) अथवा स्पर्श करने योग्य होती है तथा विवेचनादि धर्म से रहित हो, अदेवकृत वही वस्तु अनात्मा है।

शिष्यः—अहो महाशय मयैतद् भद्रं बुद्धं परन्त्वनात्मविषये कश्चिदपरः प्रभेदोऽस्ति।

शिष्य—हे महोदय! मैंने यह भली प्रकार समझ लिया, किन्तु अनात्म विषय में कोई दूसरा भेद है ?

गुरुः—अस्त्यत्र कश्चित् प्रभेदोऽवधीयतां, आकर्षणं विस्तारः खण्डनीयत्वं कठिनत्वमाकारोऽस्वतन्त्रगमनञ्चैवमादिभिर्गुणैरनात्म वस्तूपहितं भवति त्वयैतत् श्रुतम्वा ?

गुरु—कुछ भेद हैं सुनो, आकर्षण, विस्तार, खण्डनीयत्वं, कठिनता, आकारत्व, अस्वतन्त्र और गमन आदि गुणों से अनात्म वस्तु उपहित होती है, तुमने यह सुना है ?

शिष्यः—मैवं, अहो महाशय ! नाहमेतत् श्रुतवान् यदि विशेषयित्वा मामेतद् बोधयसि तदा ते महाननुग्रह-प्रकाशः स्यात् ।

शिष्य—नहीं, हे महोदय ! मैंने यह नहीं सुना यदि विशेष रूप से मुझे समझायें तो आपका परम अनुग्रह होगा ।

गुरुः—आकर्षणं नाम येन वस्तुनो नानावयवाः परस्परं संयुक्ता भवन्ति एवं बृहद्वस्तुनि क्षुद्रवस्तुनो दृढ़ाकर्षणे सति तत्क्षुद्रं तस्मान्न पतति यथा पृथिव्यामाकृष्टं प्रासादादिकं नापैतीति ।

विस्तारो नाम वस्तुगता दीर्घता तद्गतं प्रसारितत्वमौन्नत्यञ्चेति । खण्डनीयत्वं नाम येन च वस्तुनो बहवोंऽशा भवन्तीति ।

कठिनता-नाम सुकरत्वेन दुष्करत्वेन वा येन वस्तु वेधनीयं भवति । आकारो नाम वस्तुनो रूपं ।

अस्वतन्त्र गमनं नाम स्वतो गमनादि विरहितस्य वस्तुनोऽन्यद्वारा चलनं एवं चलितं सत् बाधामन्तरेण सततं चलतीति ।

अनात्मन्येतावद् गुणा अतिरिक्ता अप्यपरे गुणाः सन्ति किन्तु बाहुल्यंभिया न ते विधृताः ।

गुरु—आकर्षण, जिससे वस्तु के अनेक अवयव परस्पर संयुक्त होते हैं एवं बड़ी वस्तु के छोटी वस्तु का दृढ़ता पूर्वक आकर्षण किये जाने पर वह छोटी वस्तु उस पर नहीं गिरती है जैसे—पृथ्वी पर आकृष्ट प्रासादादि नहीं गिरते हैं ।

विस्तार—वस्तुगत दीर्घता है तद्गत (वस्तुगत) फैलाव और ऊँचाई।

खण्डनीयत्व—जिससे वस्तु के बहुत से अंश हो जाते हैं।

कठिनता—(कठोरपन) सुलभता अथवा कठिनता जिससे वस्तु वेधनीय होती है।

आकार—वस्तु का स्वरूप है।

अस्वतन्त्र गमन—स्वयं गमन (क्रिया) रहित का दूसरी वस्तु द्वारा चलना और चल जाने पर बिना बाधा के निरन्तर चलती है।

अनात्मा में इतने गुणों के अतिरिक्त और भी अन्य गुण हैं, किन्तु बहुलता के डर से तुम्हें नहीं बताये।

अथ द्वितीय कथोपकथनं

(आकाशीय ग्रहादि विषयक)

शिष्यो वदति—अगणितेष्वीश्वरीय सृष्ट वस्तुषु किमस्माभिरग्रे ज्ञातुमुचितं स्यादिति।

शिष्य कहता है—ईश्वरीय सृष्ट (निर्मित) अगणित वस्तुओं में से सर्वप्रथम हमें क्या जानना उचित है।?

गुरुर्वदति—आकाशं दृष्ट्वा तस्मिन् विद्यमानानां सूर्य्यचन्द्र तदितरग्रह धूमकेतु तारागणादीनां विशेष ज्ञानमग्रतोऽस्माकं भद्रं।

गुरु कहते हैं—आकाश को देखकर उसमें विद्यमान सूर्यचन्द्र तथा उनसे भिन्न ग्रह धूमकेतु, तारागण आदि विषयक विशेष ज्ञान (ही) सर्वप्रथम (ज्ञात कर लेना) हमारे लिये कल्याणप्रद रहेगा।

शिष्यः—आकाशस्य केके विशेष गुणाः ?

शिष्य—आकाश के कौन-कौन से विशिष्ट (मुख्य) गुण हैं ?

गुरुः—विशालता स्वच्छताचेति प्राधान्येनाकाशस्य गुणद्वयमेतत् यतोहि न चेत्तस्यैतादृशी विशालता तदाऽगणित तारागणस्य स्थित्यै तत्र स्थानं नाऽभवत्, यदि च तादृक् स्वच्छता च तस्य नाभवत्तदा तद्वर्त्तिनं तारागणं दृष्टुम् वयं न प्राप्नुम इति। एवं नहि कश्चिदाकाशं परिमातुं शक्नोति तथा तदीय स्वच्छता च तद्वद्विचित्रेति ज्ञायताम्।

गुरु—'विशालता एवं स्वच्छता' प्रधानतः आकाश के ये दो गुण हैं, क्योंकि यदि उसकी ऐसी विशालता न होती तो अगणित तारागणों के स्थित होने के लिये वहाँ (आकाश में) स्थान न होता और यदि उस प्रकार की स्वच्छता न होती उसकी तो उसमें रहने वाले तारागणों को हम नहीं देख पाते। इस प्रकार कोई भी आकाश को माप नहीं सकता, उसी प्रकार उसकी स्वच्छता भी विचित्र है, ऐसा जानना चाहिये।

शिष्यः—आकाशं नीलाभं, पृथिवी दूर्वाश्यामा च तयोस्तत्तद्वर्णत्व विधाने किं फलमिति ?

शिष्य—आकाश नीली आभा वाला एवं पृथ्वी घास से श्यामल है (हरितवर्ण) उन दोनों के उन-उन वर्ण के विधान में क्या फल है ?

गुरुः—तयोर्नील दूर्वाश्यामयोरवलोकनेन प्राणिनां चक्षुः सत्तानन्दौ जायेते एवं कापि कस्यचिद्धानिर्न जायते च एतस्माद्धेतोः प्राणिषु कृपां विधाय परमेश्वरेणाकाशस्य नीलसमत्वं पृथिव्या दूर्वाश्यामत्वञ्च विहितम्।

गुरु—उन दोनों नील एवं श्याम वर्ण के अवलोकन से प्राणियों के चक्षुओं को सत्ता (सृष्टि) का आनन्द (प्राप्त) होता है, इस प्रकार से किसी की कोई हानि नहीं होती, इसी हेतु प्राणियों पर कृपा करके परमेश्वर ने आकाश को नीलवर्ण एवं पृथ्वी को दूर्वा से श्यामल बनाया है।

शिष्यः—यदाकाशं सुनिर्मलमास्ते तदा वयं यत्तारागणमवलोकयामस्तत्किम्।

शिष्य—जब आकाश अति निर्मल होता है, तब हम जिन तारागणों को देखते हैं, वह क्या है ?

गुरुः—तारानिकरमध्ये कश्चित्तारागण एतादृग्बृहदस्ति यः सूर्यवन्महान्, एवमस्माकमेवमनुमानं स्यात् यथा सूर्यस्य चतुःपार्श्वे मण्डलाकारेणावस्थिता — ग्रहास्तदीयोष्णतामालोकञ्च प्राप्नुवन्ति । तथा कस्य कस्यचित्तारागणस्य चतुःपार्श्वे कतिचिद्ग्रहाः सन्ति, यैस्तत्तारागणतोह्यालोक उष्णता च संप्राप्यत इति ।

गुरु—तारा समूह के मध्य में कुछ तारागण इतने बड़े आकार के हैं, जो वस्तुतः सूर्य के समान महत् आकार वाले हैं, ऐसा हमारा अनुमान है कि जैसे सूर्य के चारों ओर (समीप में) मण्डलाकार रूप में स्थित (जो) ग्रह हैं, वे उससे (सूर्य से) उष्णता एवं प्रकाश प्राप्त करते हैं वैसे ही किसी-किसी तारागणों के चारों ओर समीपस्थ कुछ ग्रह हैं जो उन-उन तारागणों से ही आलोक (प्रकाश) एवं उष्णता प्राप्त करते हैं ।

शिष्यः—यदि तारागणस्याप्येतादृग्बृहत्त्वमस्ति तदाऽस्माभिः कथमेतादृक् क्षुद्राकारास्तारा दृश्यन्ते । ?

शिष्य—यदि तारागण भी इतने विशाल हैं, तो हमें ये तारे इतने लघु आकार के क्यों दिखाई देते हैं ?

गुरुः—अत्रैतत् कारणं यतस्ता अति दूरस्थाः सन्ति यदा पृथ्वी सूर्य्यं वेष्टयति तदा समयविशेषे तस्या नवत्यधिक शत नियुत क्रोशमितत्वेन कतिपय तारकाणां सन्निकृष्टत्वेपि तास्तारा विपुला न दृश्यन्ते किन्तु पूर्वस्मिन् काले यथा दृष्टास्तास्तद्रूपा एवाऽवतिष्ठन्ते ।

गुरु—इसका कारण है, क्योंकि वे अति दूरवर्ती हैं । जब पृथ्वी सूर्य का आवेष्टन (घिराव) करती है, उस समय विशेष में उसके कुछ तारों के अति निकट होने पर भी वे तारे बड़े दिखाई नहीं देते, किन्तु प्राचीनकाल में जैसे वे देखे जाते थे वे उसी रूप में ही स्थित दिखाई देते हैं ।

शिष्यः—आकाशमण्डले कति तारकाः सन्ति ?

शिष्य—आकाश मण्डल में कितने तारे हैं ?

गुरुः—एकदैक सहस्त्रं तारकाणां नयनैर्दृष्टं भवतीति सर्वैरेवमनुमीयते किन्तूत्तम दूरदर्शन यन्त्रेण यत्नादवलोकनतस्ततोऽधिक संख्यकास्ताराः प्रदृश्याः स्युः, यादृशी दूरदर्शन यन्त्रस्योत्तमता तादृगधिक संख्यया ताराः प्रदृष्टाः स्युरित्यस्मादेवासंख्यास्ताः प्रोच्यन्ते ।

गुरु—एक बार एक हजार तारों को नेत्रों द्वारा देखा जाता है, सभी ऐसा अनुमान करते हैं, किन्तु उत्तम दूरदर्शन यन्त्र द्वारा यत्नपूर्वक देखे जाते हुए अधिक संख्या में तारे दृष्टिगत होते हैं । जैसी दूरदर्शन यन्त्र की उत्तमता होती है (उसी प्रकार) उतनी ही अधिक संख्या में तारागण दृष्टिगत होते हैं, और तब उतनी ही उनकी संख्या कही जाती है ।

शिष्यः—तारागणस्य कथं चञ्चला दीप्तिः प्रदृश्यते ।

शिष्य—तारागणों की चञ्चला ज्योति क्यों दिखाई देती है ?

गुरुः—गगनमण्डलाभ्यन्तरे यन्नाना—वाष्पादिकं वर्त्तते तेनैवैतादृशी प्रभा चञ्चला दृष्टास्ति ।

गुरु—आकाश मण्डल के मध्य में जो विभिन्न भाप आदि विद्यमान हैं, इसी कारण इस प्रकार की ज्योति चञ्चल दृष्टिगत होती है ।

शिष्यः—कथं नक्षत्रगणः श्रेणीबद्धो नो दृश्यते ?

शिष्य—नक्षत्रगण पङ्क्तिबद्ध क्यों नहीं दिखाई देते ?

गुरुः—सत्यं, यतस्तासां तारकाणां सर्वावयवा अस्माभिरधोवर्त्तिभिर्द्रष्टुमशक्या अतः कारणादेव ताः सङ्कीर्णाकाराः प्रदृश्यन्ते । वस्तुतस्ताः श्रेणी क्रमेण वर्त्तमानाः सन्तीति नात्रसन्देहावसरः ।

गुरु—यह सत्य है कि उन तारागणों के सभी अवयवों को हम नीचे स्थल पर रहने वाले (पृथ्वी पर निवास करने वाले) जन देखने में सक्षम नहीं हैं, यही कारण है कि वे सूक्ष्म आकार के दिखाई देते हैं। वस्तुतः वे पङ्क्तिवद्ध क्रमशः वर्तमान अर्थात् स्थित हैं, इसमें सन्देह नहीं है।

शिष्यः—अहो केवलमस्माकं कृते किं तारा वृन्दं दृष्टं भवति ?

शिष्य—अहो ! केवल हमारे लिये ही क्या ताराओं का समूह दृष्टिगत होता है ?

गुरुः—अनुचितोऽयं बोधो यतोऽसौ तारागणेऽति सुदूरवर्ती परन्त्वेवमनुमीयते लोकान्तराऽवस्थितानां विदुषां प्राणभृतां कस्मैचिदुपकाराय तारागणोऽयं भाति तेषां विषयोऽस्माभिर्न ज्ञायते।

गुरु—यह जानना अनुचित है कि ये तारागण सुदूरवर्ती हैं, परन्तु इस प्रकार का अनुमान किया जाता है कि लोकान्तरों में रहने वाले विद्वानों प्राणधारियों के किसी प्रकार के उपकार के लिए ये तारागण प्रकाशित होते हैं, उनके विषय में हम नहीं जानते।

शिष्यः—किमसौ तारागणः सूर्येण सदृशः ?

शिष्य—क्या ये तारागण सूर्य के समान हैं ?

गुरुः—वाढं सर्वैर्विद्वद्भिः प्राय एवमेव बुध्यते।

गुरु—सभी विद्वान् प्रायः इसी प्रकार समझते हैं।

शिष्यः—तर्हि तारागणतोऽस्माकं किमस्ति प्रयोजनम् ?

शिष्य—तो तारागणों से हमारा क्या प्रयोजन है ?

गुरु:—तस्मादस्ति प्रयोजन वह्वं यतस्ताभिस्ताराभिरीश्वरस्य कृति विज्ञाता भवति एवं ताभिस्तिमिरचयलयोऽपि भवति भवति च नौकोप जीविनां नृणां ताभिर्महानुपकार: विशेषस्तु ध्रुवाख्यया तारया तेषां सदोपकारो जायते यस्मादऽसौ सर्वेषां मध्ये निरन्तरमेकस्थानं समुदेति।

गुरु—उनसे (तारागणों से) वहुत से प्रयोजन हैं क्योंकि उन ताराओं से ईश्वर की रचना ज्ञात होती है तथा उन ताराओं से अन्धकार समूह भी विनष्ट होता है और नौका चलाकर जीवन यापन करने वाले मनुष्यों का उनसे (तारागणों से) महान् उपकार होता है, विशेषकर 'ध्रुव' नामक तारा तो उनका सदैव उपकारी होता हैं, क्योंकि यह सभी के मध्य में निरन्तर एक ही स्थान पर उदित होता है।

शिष्य:—सूर्य्य कियत् परिमाणेन महान् ?

शिष्य—सूर्य परिमाण में कितना बड़ा है ?

गुरु:—पृथ्वीमानाद्दशलक्षगुणेनादित्यो महान्।

गुरु—पृथ्वी के मान से दस लाख गुना सूर्य बड़ा है।

शिष्य:—पृथिव्या: कियद्दूरवर्ती सूर्य्य: ?

शिष्य—पृथ्वी से सूर्य कितनी दूरी पर स्थित है ?

गुरु:—सहि पञ्चनवति नियुत क्रोशमानेन पृथिव्या विप्रकृष्ट आस्ते।

गुरु—सूर्य पृथ्वी से ९५ कोटि क्रोश की दूरी पर है।

शिष्य:—कीदृगाश्चर्य्यमेता दृग्दूरे सूर्य्य:। किञ्चिन्निकटावस्थायित्वे किमस्माकं भद्रं न भवति।?

शिष्य—कैसे आश्चर्य की बात है कि सूर्य इतनी दूरी पर स्थित है। क्या कुछ निकटवर्ती होने पर हमारा कल्याण नहीं होता ?

गुरुः—स हि विवेचकोऽयमस्माकं सृष्टिकर्ता विज्ञानमयस्य तस्य भ्रान्तिर्नास्ति स हि समुचित देश एव सूर्य्यं स्थापितवान् यद्यपरं कियत् सन्निधानवर्त्ती भवेत् तदा वयं दग्धदेहा भवामः यद्यस्मादऽधिक दूरे च स्थायी स्यात्तदा दुःसह शीतेन वयं म्रियामहे ।

गुरु—हमारी इस विज्ञानमयी सृष्टि को रचने वाला वह निश्चय ही विवेकी है, उसे भ्रान्ति नहीं है। उसने सर्वथा उचित स्थान पर सूर्य को स्थित किया है यदि कुछ समीप दूरी पर हो जाये तो हम (उसके ताप से) दग्ध शरीर वाले हो जायें और यदि हमसे अधिक दूर वह स्थित हो जाये तो असह्य शीत से हम मर जायेंगे ।

शिष्यः—किमहो सूर्य्यात् पृथ्वी सर्वदैक समानदूरे तिष्ठति ?

शिष्य—तो क्या पृथ्वी सर्वदा ही सूर्य से समानान्तर दूरी पर रहती है ?

गुरुः—तन्नयतो लम्वाकार चक्रवद्गत्या पृथ्वी सूर्य्यं वेष्टयति सूर्यस्तु सर्वदैव मध्यदेशवर्ती निश्चलः स भास्ते अतः सुतरां कदाचिन्निकटे कदाचिद्दूरेव पृथ्वी संस्थितास्ते ।

गुरु—ऐसा नहीं है क्योंकि लम्बाकार चक्र की गति के समान गति से पृथ्वी सूर्य का आवेष्टन करती है। सूर्य तो सर्वदा ही मध्यदेश में निश्चल रूप से स्थित है। अतः निरन्तर कभी निकट एवं कभी दूर पृथ्वी स्थित रहती है ।

शिष्यः—ग्रीष्मकाले शीतकाले वा कस्मिन् समये हि पृथ्वी सूर्यस्य किञ्चिन्निकटवर्त्तिनी स्यात् ?

शिष्य—ग्रीष्मकाल में अथवा शीतकाल में किस समय पृथ्वी सूर्य के कुछ समीप पर स्थित होती है ?

गुरुः—शीत समये।

गुरु—शीतकाल में।

शिष्यः—एतत् किं यदि तदा नैकट्येन वर्त्तते तदा कथमेतादृशं शीतं ?

शिष्य—यह क्या, यदि तब (शीतकाल में) निकटवर्ती होती है, अर्थात् शीतकाल में यदि पृथ्वी सूर्य के समीपवर्ती होती है, तब इस प्रकार का अधिक शीतता अर्थात् जाड़ा क्यों पड़ता है ?

गुरुः—अत्रैतत् कारणं यतोहि गगनोपर्यनेक क्षणमेव ग्रीष्मे सूर्य्यः समुदितस्तिष्ठेत् तस्मादेवातिशय तापतापिता पृथ्वी भवेत् सुतरां तत्राधिक ग्रीष्मानुभवो भवति। शीतसमयेचाल्पक्षणमेव सूर्योदयाऽवस्थिते स्तत्तापस्याप्यल्पत्वेन सुतरां शीताधिक्यं जायते।

गुरु—इसमें कारण है, क्योंकि आकाश के ऊपर अनेक क्षणों में अर्थात् बहुत समय में ग्रीष्मकाल में सूर्य उदय होकर स्थिर होता है। इसीलिये ही अतिशय ताप से तप्त पृथ्वी हो जाती है, अतः निरन्तर वहाँ अधिक गर्मी का अनुभव होता है। शीतकाल में अल्प समय में ही सूर्य उदित होकर स्थित हो जाता है, अतः ताप के भी अत्यल्प होने के कारण निरन्तर शीत का आधिक्य हो जाता है, अर्थात् जाड़ा पड़ता है।

शिष्यः—ग्रीष्मकालतः शीतकाले पृथिवी कियन्निकटवर्त्तिनी सूर्य्यस्य ?

शिष्य—ग्रीष्मकाल से शीतकाल में पृथ्वी सूर्य के कितनी निकटवर्ती होती है ?

गुरुः—आषाढ़ मासापेक्षया अग्रहायणे चतुःपञ्चाशत् सहस्त्राधिक सप्तविंशति लक्षक्रोशमानेन पृथिवी समीपस्था भवति।

गुरु—आषाढ़ मास की अपेक्षा अगहन (मार्ग शीर्ष) के महीने में २७ लाख ५४ हजार कोश मान से पृथ्वी के पास आता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शिष्यः—अस्माभिरालोकातिरिक्तमन्यत् किमपि फलं सूर्य्यतो लभ्यते न वा ?

शिष्य—प्रकाश के अतिरिक्त क्या कोई और भी फल हमें सूर्य से प्राप्त है अथवा नहीं ?

गुरुः—तदीय रौद्रेण निखिल वृक्षादिर्वृद्धिमाप्नोति जायते सर्वेषां प्राणिनां शरीर पुष्टिश्च एवं तेन च समुद्रात् यत् वाष्पमुद्भवति तद्वाष्पेन वृष्टिर्जायते च ।

गुरु—उसके ताप से समस्त वृक्षादि वृद्धि को प्राप्त करते हैं और सभी प्राणियों का शरीर पुष्ट होता है, एवं इसी प्रकार से उसके द्वारा समुद्र से जो भाप बनती है उस भाप से वर्षा होती है ।

शिष्यः—कस्तावदालोकस्य स्वाभाविको गुणः ।

शिष्य—तो प्रकाश का स्वाभाविक गुण क्या है ?

गुरुः—सूर्य्य किरणस्य प्रभा नाम आलोकः स एव किरण आकाशमाशु व्याप्नोति स चाति क्षुद्रतीक्ष्णश्च भवति भवति हि स्वच्छ काचादि वस्तुतो निर्गतश्च एवं कृतश्चं जगत् व्याप्नोति ।

गुरु—सूर्य किरण की प्रभा नाम ज्योति अथवा प्रकाश होता है, वह ही किरण आकाश मण्डल को शीघ्र ही व्याप्त कर लेती है; वह किरण अति सूक्ष्म एवं तिरछी होती है तथा जो वस्तुतः कांच आदि के समान स्वच्छ होती है, जो निकलकर जगत् को व्याप्त कर लेती है । अर्थात् प्रकाशित कर देती है ।

शिष्यः—सूर्य्यान्निर्गत्य कतिपयैः क्षणैः किरणः पृथिवीमायाति ?

शिष्य—सूर्य से निकलकर कितने क्षणों में किरण पृथ्वी पर आती है ?

गुरुः—प्रायो दण्डार्द्धेन किरणोऽयमायाति चलति च निमेषैकेनाऽसौ द्विलक्षमित कोशान् एवं षष्टि निमेषैर्द्वादश नियुत क्रोशान् चलति।

गुरु—प्रायः आधे दण्ड में यह किरण यहाँ पृथ्वी पर आ जाती है और एक पल में (पलक मारने के समय में) दो लाख कोश चलती है। इस प्रकार ६० पल में १२ नियुत (लाख) कोश चलती है।

शिष्यः—केनास्माभिर्ज्ञातव्यं यच्चाग्नेरंशः सूर्यकिरणे विद्यते ?

शिष्य—हमें यह कैसे ज्ञात हो कि अग्नि का अंश सूर्य की किरण में विद्यमान है ?

गुरुः—अनेनैवेदं ज्ञातव्यं स्याद्यदि तदीय किरणे चातसीत्यातप यन्त्रं धृतं भवति तदाग्निवदग्नि कर्म्म च दृष्टं स्यादिति।

गुरु—यह इसी से ही ज्ञात है, यदि उसकी किरणों में ताप है, वह जो मन्त्र ज्ञात होता है, वह अग्निवत् अथवा अग्नि ही है और अग्नि का कर्म दृष्ट है ही।

शिष्यः—किरण विषयिणी किमपरा कथास्ति ?

शिष्य—किरण विषयक क्या अन्य कथा है ?

गुरुः—आमस्ति तेनैव नीलपीत लोहिताद्यखिल वर्णानां विशेषेण बोधास्युः।

गुरु—हाँ है, उसी के कारण नीली, पीली, लाल आदि समस्त वर्णों की विशिष्टता से ज्ञात होती हैं।

शिष्यः—प्रत्यूषे सायं समये च सूर्य्य किरणः कीदृग्भवति?

शिष्य—प्रत्येक ऊषाकाल में एवं सायंकाल की बेला में सूर्य की किरण किस प्रकार की होती है ?

गुरुः—प्रत्यूषेऽयं किरणः क्रमेण वृद्धिमुपैति सायं समये च क्रमशो ह्रासमेति। अत्रेदं कारणं आकाशमण्डल स्थित स्थिर वायुषु किरणोऽसौ न स्यात्तदा समुदित समये निमेषैकेन मध्याह्नवत् प्रचण्डतर करनिकर समागमो भवतु एवमस्तसमये निमेषाभ्यन्तर एव घोरान्धकाराणां प्रचारः स्यादिति।

गुरु—प्रत्येक ऊषाकाल में किरण क्रमशः वृद्धि को प्राप्त होती है और सायंकाल में क्रमशः ह्रास होता है। इसका यह कारण है कि आकाश मण्डल में स्थित स्थिर वायुओं में इसकी किरणें क्रम से प्रवेश करती हैं, अतः क्रमशः इसकी किरणों की वृद्धि एवं ह्रास होता है। यदि ऐसा न हो तो उदय काल में एक ही निमेष में दोपहर के समान प्रचण्डतम किरण समूह का समागम हो जाये एवं अस्त समय में एक क्षण के अन्दर ही घोर अन्धकार का प्रसार हो जाये।

शिष्यः—तस्मिन् सति किमेषां लोकानां हानिर्भवति ?

शिष्य—वैसा होने पर क्या इन लोगों की हानि होती ?

गुरुः—तथासति हानिद्वयमुपतिष्ठेत् यतस्तूर्णं प्रचण्डतर किरण समागमे चक्षुःसत्ता विनश्येदथ सत्वरमिह घोरान्धकार प्रचारे लोकानां वैकल्य बाहुल्यं स्यात्।

गुरु—वैसा होने पर दो हानि हो सकती हैं, क्योंकि प्रचण्डतर किरणों के समुपस्थित होने पर नेत्रों की सत्ता समाप्त हो जाती है, अर्थात् देखने की शक्ति विनष्ट हो जाये अथवा शीघ्र ही यहाँ (संसार में) घोर अन्धकार के फैलने के कारण मनुष्यों में विफलता की अधिकता हो।

शिष्यः—किमिह दिवारात्र्योः कारणं ?

शिष्य—दिन-रात्रि का क्या कारण है ?

गुरुः—षष्टि संख्यक दण्डैः प्रत्यहं पृथ्वी चक्रवत् वारमेकं भ्रमति एतस्मादेव पृथिव्या अर्द्ध भागे सूर्य्यमयूख सम्पर्कवशाद्दिवा भवति अपरार्द्ध भागे च किरणमालिनः किरण सम्बन्ध विरहेण रात्रिराविर्भवति ।

गुरु—साठ (६०) दण्डों द्वारा प्रतिदिन पृथ्वी चक्र के समान एकबार घूमती है, अतएव पृथ्वी के आधे भाग में सूर्य किरणों के सम्पर्क वश दिन होता है तथा दूसरे आधे भाग में सूर्य की किरण से सम्बन्ध न होने के कारण रात्रि का आविर्भाव होता है ।

शिष्यः—कस्माद्धि समयविशेषे दिनरात्र्योर्दीर्घता भवति ?

शिष्य—किस समय विशेष में दिन-रात्रि दीर्घ होते हैं ?

गुरुः—सूर्यस्य दक्षिणायनोत्तरायनाभ्यामेव तयोस्तथात्वं भवति ।

गुरु—सूर्य के दक्षिणायन एवं उत्तरायण होने पर ही वे दोनों उस प्रकार के होते हैं, अर्थात् दीर्घ होते हैं ।

शिष्यः—सर्वस्मिन् देशे किमेकदा दिवारात्र्योरेका रीतिः?

शिष्य—सभी देश में क्या एक ही समय में दिन-रात्रि एक होते हैं ?

गुरुः—नैवं योयो देशः पृथिव्या उत्तरभागे दक्षिणभागे वा यदायदा यादृग्दूरवर्त्ती भवति तदनुसारेव तस्मिंस्तस्मिन् देशे दिन यामिन्योः विशेषो भवति ।

गुरु—ऐसा नहीं है । जो-जो देश पृथ्वी के उत्तर भाग में अथवा दक्षिण भाग में जब-जब जितनी दूरवर्ती होते हैं, तदनुसार ही उन-उन देशों में दिन एवं रात्रि विशेष होते हैं ।

शिष्यः—ये देशाः पूर्वपश्चिम रेखयोरुपरि भागे वर्त्तन्ते तेषु किं दिवारात्र्योः कश्चिद्विशेषो विद्यते ?

शिष्य—जो देश पूर्व पश्चिम रेखा के ऊपरी प्रदेश में विद्यमान हैं, उन देशों में क्या दिन-रात्रि कुछ विशेष होते हैं ?

गुरुः—मैवं तेषु देशेषु सदैव दिनयामिन्यौ समाने स्यातामिति ।

गुरु—नहीं, उन देशों में सदैव दिन-रात्रि समान होते हैं ।

शिष्यः—उत्तर केन्द्रे दक्षिण केन्द्रे वा यो देशो विद्यते तत्र दिनरात्र्योः को विशेष इति । ?

शिष्य—उत्तर केन्द्र अथवा दक्षिणी केन्द्र में जो देश विद्यमान हैं, वहाँ दिन-रात्रि की क्या विशेषता है ?

गुरुः—तस्मिन्नपि दिन यामिन्यौ समाने यतस्तस्मिन् देशे सम्वतसरे च दिनमेकमेका रात्रिश्च भवति यस्मादावच्छेदेन तत्र षण्मासान् सूर्य्यः प्रकाशते अतश्चापरषण्मासेषु भास्करोदय विरहेणाविच्छेदादेका रात्रिरिति ।

गुरु—उसमें भी दिन और रात्रि समान होते हैं, क्योंकि उन देशों में संवत्सर में दिन एक एवं एक रात्रि होती है, जिससे निरन्तर वहाँ छः महीने सूर्य प्रकाशित होता है और दूसरे छः महीनों में सूर्योदय से रहित निरन्तर एक रात्रि होती है ।

शिष्यः—किमेकदा सर्वस्मिन् देशे विवस्वानुदयास्तं प्रयाति?

शिष्य—क्या एकबार सभी देशों में विवस्वान् उदय और अस्त होता है ?

गुरुः—पूर्वदिक् भागे विवस्वानुदेति पश्चिमदिग्भागे चास्तमुपयाति अतः सुतरां पूर्वस्यां दिशि यो यो देशोऽवतिष्ठते तस्मिंस्तस्मिन्देशे प्रथमं सूर्यः प्रकाशते अनन्तरं क्रमेण पश्चिम-दिग्भागे प्रकाशते। अतः कारणादेवास्मिन्देशे यदा मध्याह्नो भवति तदैवेंग्लैण्ड देशे पौर्वाह्निकी भवति षड्दण्डात्मिका वेला भवति एवमेकस्मिन् देशे यदा सूर्योऽस्तं याति तदान्यस्मिन् पश्चिमदेशे रविरुदेति।

गुरु—पूर्व दिशा की ओर सूर्य उदित होता है एवं पश्चिमी दिशा में अस्त होता है। अतः पूर्वी दिशा में जो-जो देश स्थित हैं, उन-उन देशों में सर्वप्रथम सूर्य प्रकाशित होता है, पश्चात् क्रम से पश्चिम दिशा में चमकता है। इसीलिये इस देश में जब मध्याह्न (दोपहर) होता है, तब इंग्लैण्ड देश में पूर्वाह्न (लगभग प्रातःकाल) होता है, जो छः दण्ड युक्त वेला है। इसी प्रकार एक देश में जब सूर्य अस्त होता है, तब दूसरे पश्चिमी देशों में सूर्योदय होता है।

शिष्यः—हिमशिशिर वसन्त ग्रीष्मवर्षा शरदित्येषां षण्णा-मृतूणां कारणं किं ?

शिष्य—हेमन्त-शिशिर-वसन्त-ग्रीष्म वर्षा एवं शरद् आदि इन छः ऋतुओं का क्या कारण है ?

गुरुः—रवेर्दक्षिणायनोत्तरायणे।

गुरु—सूर्य के दक्षिणायन एवं उत्तरायण में होना।

शिष्यः—सूर्यस्य निश्चलत्वेनेदं केन रूपेण सम्भवति ?

शिष्य—सूर्य का निश्चलत्व फिर किस प्रकार से सम्भव है ?

गुरुः—विवस्वान् भ्रमतीत्येषा साधारणी कथा परन्तु पृथिवी चलतीति सर्वैर्निर्णीतं। सूर्याऽभिमुखं पृथिव्या गतिविशेषेण वक्रभावेन सूर्यं प्रति तस्या वेष्टनेन च ऋतूणां प्रभेदो भवति।

गुरु—सूर्य चक्कर लगाता है, यह तो साधारण सी बात है, किन्तु पृथ्वी चलती है, यह तो सभी द्वारा निर्णीत है अर्थात् वेद्य है। सूर्य के सम्मुख पृथ्वी की गति विशेष अर्थात् (वक्रभावेन) टेढ़ी चाल से सूर्य के प्रति उसकी गति से (विराव से) ऋतुओं में भेद होता है।

शिष्यः—कस्मादृतु विशेषो भवति ?

शिष्य—ऋतु विशेष क्यों होती है ?

गुरुः—सर्वेषां हिताय वृक्षादीनां प्रवृद्धये फलवत्त्वाय च ऋतुविशेषो जायते।

गुरु—सभी के कल्याण के लिए, वृक्षादिकों की वृद्धि के हेतु उनके फलवान् होने के लिए ऋतु विशेष होती है।

शिष्यः—यदि शीतसमयो नाभवत्तदा किमस्माकं भद्रं नाऽभवत् ?

शिष्य—यदि शीतकाल न होता तो क्या हमारा कल्याण नहीं होता ?

गुरुः—मैवं, यतः शीतसमयेऽस्माकं पृथिव्याश्च महानुपकारो जायते। पश्य च तेनास्माकं सुस्थं शरीरं भवति पृथिवी च फलयोग्या भवति। यथा मनुष्याणां शरीरेषु विश्रामकालः कश्चित् प्रयोजनार्हो भवति तथा पृथिव्यर्थं प्रयोजनार्हो भवेत्। एतस्मादेव यथा ग्रीष्मकाले ग्रीष्मस्तथा शीतकाले शीतमुपकारक भवति एतस्मादेव परमेश्वरधन्यवाद विधानमस्माकमुचितमेव। तदन्यत् यदाऽस्मिन्देशे शीतसमयः स्यात्तदा दक्षिणस्यां दिशि ये देशाः सन्ति तेषु ग्रीष्मकालो भवति। अतोऽस्माकमेतादृश लोभाविष्करणमनुचितं यत् परमेश्वरीयानुग्रहः केवलमस्माभिरेव लभ्यते इति।

गुरु—ऐसा नहीं है क्योंकि शीतकाल में हमारा एवं पृथ्वी का महान् उपकार होता है। और देखो उससे हमारा शरीर स्वस्थ होता है और पृथ्वी फलवती होती है। जैसे—मनुष्यों के शरीरों में विश्रामकाल किसी प्रयोजनार्थ होता है वैसे ही पृथ्वी के लिये भी प्रयोजन होता है। इसी प्रकार से जैसे ग्रीष्मकाल में ग्रीष्मकाल, वैसे ही शीतकाल में शीत, महान् उपकारी होता है, इसीलिये परमेश्वर का धन्यवाद योग्य विधान हमारे लिये सर्वथा समुचित ही है। उससे भिन्न जब हमारे देश में शीतकाल होता है, तब दक्षिण दिशा में जो देश हैं, उनमें ग्रीष्मकाल होता है। अतः हमें इस प्रकार का भ्रम उत्पन्न करना अनुचित है कि ईश्वर का अनुग्रह केवल हमको ही प्राप्त है।

शिष्यः—ऋतूणां मध्ये यो वसन्तनामा ऋतुस्तस्मिन्नहं परमसन्तुष्टो भवामि।

शिष्य—ऋतुओं में जो वसन्त नामक ऋतु है, उसमें मैं परम सन्तुष्ट होता हूँ।

गुरुः—तस्मिन्नृतौ भवान् यत् प्रमोदातिशयं लभते तत् कारणं जानाति यत्वया शीतसमयोपभोगानन्तरं दुःखावसाने सुखं प्राप्यते तदेवात्रकारण यथा रोगिणो मनुष्याः सुस्थीभूय सुखमनुभवन्ति। वसन्तस्तु लोकानामभिलाष समयः अतः कारणादतिसुखजनकोऽसौ भवति पश्य च। परिम्लानं, यदखिलं वस्तु मृतवदवतिष्ठते तत् कृत्स्नं स्वान्त प्रशान्त वसन्तर्तु समागमेन प्रफुल्लं तेजस्वञ्च भवति एवमुत्तरोत्तरं तत्र फलं फलिष्यतीत्येषाम प्याशा जायते।

गुरु—उस ऋतु में आप जो अतिशय आनन्द प्राप्त करते हैं, उसका कारण जानते हो कि तुम शीतकाल के अनुभव के पश्चात् दुःखों की समाप्ति पर सुख प्राप्त करते हो, यही यहाँ कारण है, जैसे—रोगी

मनुष्य स्वस्थ होकर सुख का अनुभव करते हैं। वसन्त ऋतु तो लोगों के मनोरथ का समय है, इसी कारण यह सुखकारी होती है और देखो मलिन अथवा मुरझाई हुई जो समस्त वस्तुएँ मृतवत् मृतकसी स्थित थीं, उनके लिये स्वयं में शान्त वसन्त ऋतु के आगमन से वे प्रफुल्लित एवं तेजमयी हो जाती हैं। इस प्रकार उत्तरोत्तर फलों के फलित होने की भी वहाँ (वसन्त ऋतु में) आशा उत्पन्न होती है।

शिष्यः—ग्रीष्मशीत कालयोः सर्वस्मिन् देशे किं ग्रीष्मशीते समाने ?

शिष्य—ग्रीष्म शीतकाल में सभी देशों में क्या गर्मी-सर्दी समान होती है ?

गुरुः—मैवं इंग्लैण्डदेशे ग्रीष्मकालीन मध्याह्नः ग्रीष्म एतस्य देशस्य शीतकालीन ग्रीष्मापेक्षयाऽत्यधिको न सम्भवति।

गुरु—ऐसा नहीं है। इंग्लैण्ड देश में ग्रीष्म कालीन मध्याह्न की गर्मी इस देश की शीतकालीन गर्मी की अपेक्षा अत्यधिक नहीं होती।

अथ द्वितीय भाग:

शिष्य:—आकाश मण्डले सूर्य-तारकातिरिक्तमन्यज्ज्योतिर्मयं वस्तु विद्यते नवा ।

शिष्य—आकाश मण्डल में सूर्य तारों के अतिरिक्त कोई अन्य प्रकाशमय वस्तु है अथवा नहीं ।

गुरु:—आं, सर्वे ग्रहादय: सन्ति किन्तु ते न स्वयं प्रकाशका: परन्तु सूर्य किरणोद्योतेन प्रकाशन्ते ।

गुरु—हाँ सभी ग्रहादि हैं किन्तु स्वयं प्रकाशित होने वाले नहीं हैं, किन्तु सूर्य की किरणों के प्रकाश से वे प्रकाशित होते हैं ।

शिष्य:—ग्रहाणां नामधेयानि कानि ?

शिष्य—ग्रहों के क्या नाम हैं ?

गुरु:—सूर्यस्य सन्निधानवर्त्ती यो ग्रहस्तस्य नाम बुध:, तस्मादुत्तरे शुक्रस्तत् परे चन्द्रेण सार्द्ध पृथ्वी, तदुत्तरे मङ्गलस्तत् परे वृहस्पतिस्तत्परं शनिरिति सर्वेषामेषां चरमग्रहद्वय-समीपेऽपरश्चन्द्रगण आस्ते सर्वे च ग्रहा: सूर्येणैव प्रकाशन्ते ।

गुरु—सूर्य के समीपवर्त्ती जो ग्रह है उसका नाम बुध है, उसके उत्तर में शुक्र ग्रह, उससे परे चन्द्रमा से आधी दूरी परपृथ्वी, उसके उत्तर में मङ्गल, उससे परे वृहस्पति, और उससे परे शनि है । इन सभी के

दो चरम ग्रहों के समीप में दूसरे चन्द्रगण हैं, ओर सभी ग्रह सूर्य से ही प्रकाशित होते हैं।

शिष्यः— एभ्योग्रहेभ्योऽपरः कश्चिद् ग्रहो दृष्टोऽभून्नवा ?

शिष्य—इन ग्रहों के अतिरिक्त अन्य कोई ग्रह दृष्टिगत हुआ अथवा नहीं ?

गुरुः— आं, हर्षलाख्यः कश्चिद्विद्वांल्लोकः प्रथमञ्चैकमपरं दृष्टवान् सहि राजाऽनुग्रहलब्धः सन्निग्लण्ड देशीय राजाधिराज नाम्ना तद्ग्रहस्य जर्जेति नामधेयं कृतवान्। किन्तु सर्वैरेव लोकैः प्रायोऽस्य ग्रहस्य हर्षलेति नामाऽभिधीयते।

गुरु—हाँ 'हर्षल' नामक किसी विद्वान् ने सर्वप्रथम एक दूसरे प्रकाश को देखा, उसने राजाके अनुग्रह से प्राप्त किया अतः इंग्लैण्ड देशीय राजाधिराज के नाम से उस ग्रह का नाम 'जर्ज' यह रखा। किन्तु प्रायः सभी लोग इस ग्रह को 'हर्षल' नाम से पुकारते हैं।

शिष्यः—पृथिव्या एक एव चन्द्र इति सत्यं, अपरेषां ग्रहाणां किमपरश्चन्द्रो विद्यते न वा ?

शिष्य—पृथ्वी पर एक ही चन्द्रमा है, यह सत्य है किन्तु इन दूसरे ग्रहों का क्या कोई दूसरा चन्द्र है अथवा नहीं ?

गुरुः—बृहस्पतेश्चत्वारः शनैश्चरस्य सप्त, हर्षलाख्य ग्रहस्य च षडेव चन्द्रा विद्यन्ते।

गुरु—बृहस्पति के चार, शनि के सात, 'हर्षल' नामक ग्रह के छः ही चन्द्र हैं।

शिष्यः—तारागणतः केन लक्षणेन ग्रहगणो ज्ञायते ?

शिष्य—तारा गणों से भिन्न किस लक्षण से ग्रह गण ज्ञात होते हैं।

गुरु:—तारागणस्य दीप्तिश्चञ्चला, ग्रहाणां पुनरति स्थिरतरा दीप्तिरेव, ग्रहास्तु गगन मण्डले तारा वृन्द मध्ये सन्ततं चलन्ति किन्तु तारागणं सततमेकस्थाने तिष्ठति। अतः कारणात् ध्रुवतारा प्रोच्यते।

गुरु—तारागणों की ज्योति चञ्चल होती होती है। ग्रहों की अति स्थिर। ज्योतिग्रह तो गगन मण्डल में तारा समूहों के मध्य में निरन्तर चलते हैं किन्तु तारागण निरन्तर एक स्थान पर स्थित रहते हैं। यही कारण है कि 'ध्रुव' तारा कहलाता है।

शिष्य:—ग्रहगणः केन रूपेण चलति ?

शिष्य—ग्रह गण किस प्रकार चलते हैं ?

गुरु:—मण्डलाकारेण सर्वे ग्रहाः सूर्यं वेष्टयन्ति किन्तु नैकेन पथा ते व्रजन्ति नवैकस्मिन् समये सम्भूय सूर्यं वेष्टयन्ति।

गुरु—मण्डलाकार रूप में सभी ग्रह सूर्य को घेर लेते हैं किन्तु वे एक ही मार्ग से नहीं जाते और न एक ही समय में एकत्र होकर सूर्य को घेरते हैं।

शिष्य:—कतिपयवासरैः पृथ्वी वारमेकमर्कं वेष्टयति ?

शिष्य—कितने दिनों में पृथ्वी सूर्य का एक बार चक्कर लगा लेती है ?

गुरु:—पञ्चषष्ट्यधिकशतत्रय वासरैर्वेष्टयति एतावद्भिर्वासरैरेकएव वत्सरोऽभिधीयते। अतिक्षिप्रं पृथिवी चलति किन्तु तद्गमनम्स्माभिर्नानुभूयते।

गुरु—३६५ दिनों में घूमती है इन्हीं दिनों का एक वत्सर (संवत्) कहलाता है। पृथ्वी अतिशीघ्र गमन करती है किन्तु उसकी गति हम अनुभव नहीं कर पाते।

शिष्यः—कीदृश्या क्षिप्रगत्या पृथिवी सूर्यं वेष्टयति ?

शिष्य—कितनी तीव्र गति से पृथ्वी सूर्य का चक्कर लगाती है ?

गुरुः—सार्द्ध दण्डद्वयेन प्रायस्त्रिचत्वारिंशदधिक शतद्वयात्तराष्टषटि सहस्रमित शास्त्रीय क्रोशान् गच्छति।

गुरु—२॥ दण्ड में प्रायः ६ ८ २ ४ ३ शास्त्रीय कोश चलती है।

शिष्यः—कथमेतादृग्गमनमस्माभिर्न बुध्यते ?

शिष्य—इस प्रकार का गमन हमारे द्वारा क्यों नहीं जाना जाता ?

गुरुः—अत्रैतत् कारणं यतः स्थिरवायुरभितः पृथिवीं व्याप्य तया सार्द्धं चलति तया चापरमपि वस्तु चलति।

गुरु—इसका कारण है क्योंकि स्थिर वायु पृथ्वी को दोनों ओर व्याप्त करके उसके (पृथ्वी के) साथ चलती है और उसके वायु के साथ दूसरी वस्तु चलती है।

शिष्यः—ईदृग्गमनादन्यत् पृथिव्या गमनं विद्यते न वा ?

शिष्य—इस प्रकार के गमन के अतिरिक्त पृथ्वी का गमन है अथवा नहीं ?

गुरुः—आं, सूर्यवेष्टनाय पृथिव्या यद्गमनं तस्य नाम वत्सरीय गमनं तदन्यद्यद्गमनं तस्य नाम दिवसीय गमनं। आभ्यां गतिभ्यामवनी शाकटचक्रवद्गमनं करोति तथाहि यथा चक्रं भ्रमति तथा क्रमशः पुरो भागे च चलति।

गुरु—हाँ, सूर्य की परिक्रमा के लिये पृथ्वी की जो चाल है उसका नाम वत्सरीय गमन है, उससे उसका जो गमन, गति अथवा चाल है उसका नाम दिवसीय गमन है। इन दोनों गतियों से पृथ्वी गाड़ी के पहिये के समान चलती है जैसे-जैसे ही चक्र चलती है वैसे ही क्रमशः आगे २ चलता है।

शिष्यः—चन्द्रमाः पृथ्वीं वेष्टयति न वा ?

शिष्य—चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करता है अथवा नहीं ?

गुरुः—आं, पृथ्वी सूर्ययोर्मध्य देशे सार्द्धोनत्रिंशद्वासरैश्चन्द्रः पृथिवीं वेष्टयति एवं तया सार्द्धं सूर्यमपि वेष्टयति।

गुरु—हाँ पृथ्वी सूर्य के मध्य २६॥ दिन में चन्द्रमा पृथ्वी को व्याप्त करता है। और उसके साथ सूर्य की भी परिक्रमा कर लेता है,

शिष्यः—चन्द्रमा पृथिवीतः कियद्दूरवर्त्ती ?

शिष्य—चन्द्रमा पृथ्वी से कितनी दूरी पर है।

गुरुः—द्विशताधिक-चत्वारिंशत् सहस्र क्रोश मानेनाऽसौ पृथ्वीतो दूरवर्त्ती।

गुरु—ये (चन्द्रमा) पृथ्वी से चालीस हजार दो सौ कोश की दूरी पर स्थित है।

शिष्यः—वयं सर्वदा कथं चन्द्रं न पश्यामः ?

शिष्य—हम सर्वदा चन्द्रमा को क्यों नहीं देखते हैं ?

गुरुः—यदा पृथ्वी सूर्ययोर्मध्यदेशे चन्द्रः स्थितो भवति तदा दीप्ति-विहीन चन्द्रस्यार्द्ध-भागोऽस्माकं करोभागे तिष्ठेदतः कारणात् तदानीमस्माभिः चन्द्रांशो नो दृश्यते अथवा कदाचित् पृथिव्या अधोभागे चन्द्रमा याति तेनाप्यऽदृश्यो भवति।

गुरु—जब पृथ्वी एवं सूर्य के मध्यदेश में चन्द्रमा स्थित होता है तब प्रकाश रहित चन्द्रमा का आधा भाग हमारे सम्मुख स्थित होता है यही कारण है उस समय हमें चन्द्रांश दिखाई नहीं देता अथवा कभी पृथ्वी के निचले भाग में चन्द्रमा आ जाता है उससे भी येदृश्य हो जाता है।

शिष्यः—किन्तावद्ग्रहणं ?

शिष्य—तो फिर ग्रहण क्या है ?

गुरुः—यस्मिन् काले चन्द्रमसच्छाया पृथिव्यां पतति तदैव सूर्यग्रहणं भवतीति वयं ब्रूमः। यस्माच्चावरणी-भूतेन चन्द्रेण तदा सूर्य्यदर्शनं न भवति यादृशी क्षुद्रा महती वा चन्द्रस्य छाया तदनुरूपं क्षुद्रं बृहद्वा ग्रहणं भवति।

गुरु—जिस समय चन्द्रमा की छाया पृथ्वी पर गिरती है (पड़ती है) वही सूर्य ग्रहण होता है यह हम कहते हैं जिससे आवरणी भूत चन्द्रमा के कारण तब सूर्य का दर्शन नहीं होता, जैसी सूक्ष्म अथवा बड़ी चन्द्रमा की छाया होती है उसी अनुरूप (सूक्ष्म) छोटा अथवा बड़ा ग्रहण होता है।

शिष्यः—सूर्य ग्रहणं कस्मिन् समये भवति ?

शिष्य—सूर्य ग्रहण किस समय होता है ?

गुरुः—चन्द्रो यदा नवीनो भवति अर्थाद्दर्श प्रतिप्रदोः सन्धौ तदा तद्भवति।

गुरु—चन्द्रमा जब नवीन होता है अर्थात् दर्श और प्रतिपदा की सन्धि में नवीन होता है।

शिष्यः—कदा चन्द्रग्रहणं भवति ?

CC-0. Agamnigam Digital Preseyation Foundation, Chandigarh

शिष्य—चन्द्र ग्रहण कब होता है ।

गुरु:—यदा चन्द्रमा: पूर्णो भवति अर्थात् पूर्णिमा प्रतिपत् सन्धौ ।

गुरु—जब चन्द्रमा पूर्णता को प्राप्त होता है अर्थात् पूर्णिमा-प्रतिपदा की संधि में ।

शिष्य:—चन्द्र: स्वयं प्रकाशहीन: अतस्तस्माद्वयं किं किमपि फलंलभेमहे ?

शिष्य—चन्द्रमा स्वयं प्रकाश रहित होता है अत: उससे हमें क्या फल मिलता है ?

गुरु:—चन्द्रो हि सूर्य किरण द्वारेणाऽस्मभ्यं दीप्तिं ददाति, सा च दीप्तिर्महान्धकारमय्यां दीर्घतरायां निशायामति सुखप्रदा महोपकारिका च भवति । अतएव पश्याऽस्मान् प्रति परमेश्वरेणैतादृगनुग्रह: प्रकाशीकृतो यत: सूर्य्य-प्रकाशविरहितेऽपि काले चन्द्रतोऽस्माभिरालोको लभ्यते ।

गुरु—निश्चय ही चन्द्रमा सूर्य किरणों द्वारा हमें प्रकाश देता है और वह ज्योति महान् अन्धकारमयी दीर्घतर रात्रि में अति सुख प्रदायिनी एवं बहुत उपकारिका होती है । अतएव देखो इस प्रकार से ईश्वर ने हमारे प्रति अनुग्रह प्रकट किया है क्योंकि सूर्य के प्रकाश के न रहने पर भी अर्थात् जिस समय सूर्य हमें प्रकाश नहीं देता (अस्तकाल रात्रि में) उस समय चन्द्रमा से हमको प्रकाश प्राप्त होता है ।

शिष्य:—चन्द्रादस्माभिरन्यत् फलं लभ्यते न वा ?

शिष्य—चन्द्रमा से हमें अन्य भी फल प्राप्त होते हैं अथवा नहीं ?

गुरुः—आं, चन्द्र सूर्याभ्यां समुद्रस्य वृद्धिह्रासौ भवतः। ताभ्याञ्च सामुद्रजलं निर्मलं भवति एवं वृहन्नौकोपजीविनां लोकानां महानुपकारो जायते।

गुरु—हाँ चन्द्रमा और सूर्य से समुद्र की वृद्धि एवं ह्रास होता है। उन दोनों से समुद्र का जल निर्मल होता ही है साथ ही नौका चालकों का महान् उपकार होता है।

शिष्यः—चन्द्रमण्डल मध्ये कश्चिल्लोको विद्यते न वा ?

शिष्य—चन्द्र मण्डल के बीच में कोई लोक विद्यमान है अथवा नहीं ?

गुरुः—तन्मध्ये कश्चिल्लोको विद्यते इति विद्वद्भिरभिधीयते एवमियं पृथ्वी तल्लोकस्य चन्द्रमा भवति। यतश्चन्द्रस्य निष्प्रभार्द्ध भागो वसुधया देदीप्यमानो भवति, चन्द्रे नवीने सति स च सदैव दृष्टो भवति परन्तु ग्रीष्मकालतः शीत समयेऽधिकं दृश्यते।

गुरु—उसके मध्य में कोई लोक है, विद्वान् ऐसा कहते हैं कि ये पृथ्वी ही उस लोक की चन्द्रमा है। क्योंकि चन्द्रमा का प्रभा रहित आधा भाग पृथ्वी द्वारा दीप्तिमान् होता है। चन्द्रमा के नवीन होने पर वह सदैव दृष्टिगत होता है। किन्तु ग्रीष्मकाल की अपेक्षा शीतकाल में अधिक दिखाई देता है।

शिष्य—यथा चन्द्रोऽस्मान् प्रति प्रकाशते तथा चन्द्रं प्रति पृथिवी प्रकाशते न वा ?

शिष्य—जैसे चन्द्रमा हमारे प्रति प्रकाशित होता है वैसे ही चन्द्रमा के प्रति पृथ्वी प्रकाशित होती है अथवा नहीं ?

शिष्य—जैसे चन्द्रमा हमारे प्रति प्रकाशित होता है वैसे ही चन्द्रमा के प्रति पृथ्वी प्रकाशित होती है अथवा नहीं ?

गुरु—आं, त्रयोदश गुणेनाधिकं प्रकाशते पूर्णचन्द्रापेक्षया त्रयोदश गुणेन दीप्तौ प्रकाशमानायाँ कीदृगाश्चर्य्यं दृष्टं स्यात् यदाऽस्मान् प्रति चन्द्रः सम्पूर्णो भवति तदेयं पृथिवी चन्द्रलोकतो न दृश्यते यदा च तल्लोकं प्रति पृथिवी सम्पूर्णा दृष्टा स्यात्तदा प्रकाश हीने चन्द्रे तस्मादस्माभिः किमपि फलं न प्राप्यते ।

गुरु—हाँ तेरह गुना अधिक प्रकाशित होती है पूर्ण चन्द्रमा की अपेक्षा तेरह गुना अधिक प्रकाश से प्रकाशित इसमें कितना आश्चर्य दिखाई देता है । जब हमारे प्रति चन्द्रमा सम्पूर्ण (सोलह कलायुक्त) होता है तब यह पृथ्वी चन्द्रलोक से दिखाई नहीं देती और जब उस लोक के प्रति पृथ्वी सम्पूर्ण दृष्टि गत होती है तब चन्द्रमा के प्रकाश ही न होने के कारण हमें कोई भी फल प्राप्त नहीं होता है ।

शिष्यः—चन्द्र बिम्बे कलङ्कारो यद्दृश्यते तत् किं ?

शिष्य—चन्द्रमा बिम्ब में कलङ्क के आकार का जो दिखाई देता वह क्या है ?

गुरुः—ते सर्वे पर्वता इत्यनुमीयते, चन्द्रस्य प्रभावहीनोंऽशः समुद्र इति पूर्वेषामनुमानं इदानीन्तनैर्धीमद्भिः शैलानां गुहा किम्वा उपत्यकाचेत्यनुमीयते याश्च सूर्यरश्मिभिर्न प्रकाश्यन्ते ।

गुरु—वे सभी पर्वत हैं ऐसा अनुमान लगाया जाता है । चन्द्रमा का प्रभाव रहित भाग समुद्र है, यह पूर्वजों (पहले हुए विद्वानों) का अनुमान है तथा आधुनिक विद्वान् तो पर्वतीय गुफा अथवा उपत्यका अर्थात् पर्वतीय ऊपरी चोटियां हैं ऐसा अनुमान लगाते हैं । जो भाग वस्तुतः सूर्य किरणों से प्रकाशित नहीं होता ।

शिष्यः—यदि तारागणः सूर्येण सदृशः यदि च सूर्यवत्तेषां ग्रहाश्च वर्तन्ते तदा भवान् किमनुमाति तेषां मध्ये कश्चिल्लोको विद्यते ?

शिष्य—यदि तारागण सूर्य के सदृश हैं और यदि सूर्य के समान उनके ग्रह हैं तो आपका क्या अनुमान हैं उनके बीच में कोई लोक है ?

गुरु—आं, वर्तते तत्र मे सन्देह लेशोऽपि नास्तीति यथा जन्तूनां मध्ये नानाविधाश्चर्य्य–जन्तवस्तथाऽस्माक–मनुमानं भवति यदेतेषां सृष्टानां मध्येऽपि मनुष्यवन्नानाकाराः प्राणिनः सन्ति ।

गुरु—हाँ है, इसमें मुझे रंचमात्र भी संदेह नहीं है । जैसे-जन्तुओं के बीच में नाना प्रकार के आश्चर्यमय जन्तु हैं, वैसे ही इन रची गई वस्तुओं में भी (सूर्यादिकों के मध्य में) मनुष्य की भाँति विभिन्न आकार के प्राणी हैं, ऐसा हमें अनुमान होता है ।

शिष्यः—धूमकेतुगणः, किमग्नि मयं किमपि वस्तु ?

शिष्य—धूमकेतु गण क्या अग्नि युक्त कोई वस्तु है ?

गुरुः—मैवं किन्तु दिनकर–किरण–जालैः प्रकाशमानो भवति तेषां दीर्घतरज्योतिर्मय लाङ्गूलेनाऽस्माभिरनुमीयते ।

गुरु—ऐसा नहीं है, किन्तु सूर्य की किरण समूहों से प्रकाशित होता है, उसकी बड़ी प्रकाशमान पुच्छ से हमें ऐसा अनुमान होता है ।

शिष्यः—तत् किमग्निमयं ?

शिष्य—तो फिर अग्नि युक्त क्या है ?

गुरुः—नेति किन्त्विदमस्माभिरनुमीयते तच्च धूमकेतोः स्थिरवायुर्यत्र सूर्य्यरश्मयो लगन्ति ।

CC-0. Agamnigam Digital Preseyation Foundation, Chandigarh

गुरु—ऐसा नहीं है, किन्तु हमारा ऐसा अनुमान है, वह धूमकेतु की स्थिरवायु जहां सूर्य की किरणें लगती है।

शिष्य:—सर्वग्रहापेक्षया धूमकेतु: किं सूर्यादतिदूरवर्त्ती न ?

शिष्य—सभी ग्रहों की अपेक्षा क्या धूमकेतु सूर्य से अति दूर नहीं है।

गुरु:—तत् सत्यं तेनाऽस्माभिर्बुध्यते यतश्चाकाशोऽपिमित विस्तार: अष्टपञ्चाशदधिक सप्ताधिक सहस्त्रमित जावनिकाब्दे धूमकेतौ दृष्टे सतिनिश्चितमिदमासीत् पञ्चसप्तति वत्सरैरसौ धूम्रकेतुर्वारमेकमर्कं वेष्टयतिएवमशीत्यधिक-षट्शत्तोत्तर सहस्त्रमित जावनिकाब्दे धूमकेतौ दृष्टे सति निश्चितमिदमभूत् पञ्चसप्तत्युत्तर पञ्चशत वत्सरैर्वारमेकं धूमकेतुरर्कं वेष्टयति स धूमकेतूनां सूर्य वेष्टन वर्तमानेन प्रकारेण निश्चीयम यत् धूमकेतौ दृष्टे सति कतिपय वत्सरानन्तरं पुन: धूमकेतुर्दृष्टो भविष्यतीति सुधीर्विभक्तुं शक्यने ।

गुरु—यह ठीक है हम जानते हैं कि आकाश का विस्तार अपरिमित है १७५८ यवनाब्द में धूमकेतु के देखने पर यह निश्चित हुआ था कि ७५ वर्ष में यह धूमकेतु एक बार सूर्य की परिक्रमा लगाता हैं इसी प्रकार १६८० यवनाब्द में धूमकेतु देखा गया तब निश्चय हुआ कि ५७५ वर्ष में एकबार धूमकेतु सूर्य का वेष्टन करता है। धूमकेतुओंके सूर्य के चक्कर लगाने के इस प्रकार से यह निश्चय है कि धूमकेतु के देखे जाने पर कुछ वर्ष पश्चात् धूमकेतु फिर दिखलाई पड़ेगा ऐसा विद्वानों का मत हैं।

शिष्य:—धूमकेतूनां कश्चिल्लोकोऽस्ति न वा ?

शिष्य—धूमकेतुओं का कोई लोक हैं अथवा नहीं ?

गुरुः—अनुमानेन तथा भवितुमर्हति निश्चयं वक्तुं न शक्यते । यदि तेषां लोकाः सन्ति तदा येषां लोकानां विषयान् वयं श्रुतवन्तस्तेभ्यो लोकेभ्यस्ते विशिष्टा भविष्यन्ति । ग्रहेभ्यो दीप्ति तापश्च वितरतः सूर्यरश्मयः क्षीणा भवन्ति तस्मादेव धूमकेतुगणः सूर्यमण्डले पतति तेन च सूर्यस्य दीप्तिस्तापश्च वृद्धिं यातीति केचित् पण्डिता वदन्ति ।

गुरु—अनुमानतः वैसा हो सकता है किन्तु निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता । यदि उनके लोक हैं तो जिन लोकों के विषय में हमने सुना है, उन लोकों से विशिष्ट ही (वे लोक) होंगे । ग्रहों की दीप्ति एवं गर्मी वितरित करते हुये सूर्य, की किरणें क्षीण हो जाती हैं इसीलिए धूमकेतु गण सूर्य मण्डल में गिरता है और उससे सूर्य का प्रकाश एवं गर्मी वृद्धि को प्राप्त हो जाती है, ऐसा कुछ पण्डित कहते हैं ।

शिष्यः—उदिते धूमकेतौ किमहो जगतामुत्पाता भवन्ति ?

शिष्य—धूमकेतु के उदित होने पर क्या संसार में उत्पात (उपद्रव) होता है ?

गुरुः—नह्येवं तस्मिन्नुदिते केचिद्व्याकुला भवन्ति बुध्यन्ते च लोकानां भविष्यति महानुपद्रव इति किन्तु धूमकेतुर्नोपद्रवहेतुः । यतस्तस्योदये नहि मारीभय विग्रह दुर्भिक्षानि केवलं भवन्ति परन्तु सन्धि शान्ति सुभिक्षादयोऽपि भवन्ति ।

गुरु—ऐसा नहीं है । उसके उदय होने पर कुछ व्याकुल होते एवं जानते हैं अर्थात् ऐसा समझते हैं लोकों का बड़ा अनिष्ट होगा किन्तु धूमकेतु उपद्रव का सूचक नहीं है । क्योंकि उसके उदय होने पर महामारी (रोग) का भय, युद्ध, दुर्भिक्ष ही केवल नहीं होता अपितु सन्धि, शान्ति एवं सुभिक्ष धनधान्य आदि की वृद्धि भी होती है ।

शिष्यः—नक्षत्राणांयत् पतनं दृश्यते तत्किम् ?

शिष्य—नक्षत्रों का जो गिरना देखा जाता है, वह क्या है ?

गुरुः-नहि नक्षत्रस्य पतनं किन्तु यस्य कस्यचिद्वस्तुनो यद्वाष्पानि सूर्यतापैराकाश मण्डले चोत्तिष्ठन्ते तेषां मध्ये ये स्फुलिङ्गाः प्रविशन्ति तेज्वलित्वायावद्दग्धा न भवन्ति तावत्तो तथा दृश्यन्ते ।

गुर—नक्षत्रों का पतन नहीं किन्तु जिस किसी वस्तु और जो वाष्प सूर्य की गर्मी से आकाशमण्डल में उठती है, उनके बीच में कोई जो चिनगारी प्रवेश करती है, वे जलकर जब तक दग्ध नहीं होती तब तक वे वैसी दिखाई देती हैं ।

शिष्यः—रात्रौ क्वचित्, क्वचिदालेयेति लोक प्रसिद्धमग्निं यद्दृष्टं भवति तत् किं वस्तु ?

शिष्य—रात्रि में कभी १ किसी का लय होगया लोक प्रसिद्ध अग्निमान जो दिखाई देता है वह क्या वस्तु है वह क्या है ? (कभी २ रात्रि में आकाश में अग्नि युक्त वस्तु दिखाई देती हैं जिसके विषय में ऐसा प्रसिद्ध है कि किसी महान् व्यक्ति का लय (दिवंगत) हुआ है ।)

गुरुः—अनुमीयते तच्च वायु विशेषः । यस्मिन्नग्नि सम्बन्धो वर्त्तति किम्वा मृत वृक्ष शुष्क पर्णेभ्यो निर्गतं किमपि स्नेह वस्तु यस्मिन्नुत्पन्नाश्चाग्नि स्फुलिङ्गास्तदाकारेण ज्वलन्ति ।

गुर—अनुमानतः वह वायु विशेष है । जिससे अग्नि का सम्बन्ध होता है अथवा मृत वृक्ष के शुष्क पत्तों से निकल हुई कोई स्नेह (तैलमयी) वस्तु जिसमें कि उत्पन्न अग्नि की चिनगारी उस आकार में प्रज्वलित होती है ।

शिष्य—नभस्युल्कापातो यद्दृश्यते तत् किं ?

शिष्य—आकाश में जो उल्कापात दिखाई देता है, वह क्या है ?

गुरुः—तच्च वाष्पमयं किमपि वस्तु यस्मिन् प्रविष्टे स्फुलिङ्गे सति प्रज्ज्वलति ।

गुर—वह भाव युक्त कोई वस्तु है, जिसमें प्रविष्ट हुई चिनगारी जलती है ।

शिष्यः—उल्का निपाते सति यत्र स्थान्न विशेषे कदाचिद् पाषाणः पतति तत्किम् ?

शिष्य—उल्का पात होने पर जहाँ स्थान विशेष में कभी पत्थर गिरता है वह क्या है ।

गुरुः—तत् केन प्रकारेणोत्पद्यते नहि कैश्चिन्निश्चीयते अग्निमय पर्वतादुत्तिष्ठेत इति केचिद्वदन्ति । चन्द्रात् पतति तदित्यपरे वदन्ति, किम्वा गगन मण्डले कस्मादपि वस्तुनः समुत्पद्य पततीति धीमद्भिर्बुध्यते ।

गुर—वह किस प्रकार उत्पन्न होता है, इसका निश्चय नहीं है अर्थात् इस विषय में निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता । अग्नि युक्त पर्वत से उत्पन्न होता है कुछ (विद्वान्) यह कहते है । चन्द्रमा से गिरता है, यह दूसरे (भिन्न विद्वान्) कहते हैं अथवा गगन मण्डल में किसी वस्तु से उत्पन्न होकर गिरता है विद्वानों द्वारा यह जाना जाता है ।

अथ तृतीय कथोपकथनम्

(स्थिरवायु, सामान्यवायु, वाष्पवृष्टि प्रभृतीनां विशेषाभिधानं)

शिष्यः—कथयति—हे गुरो ! स्थिरवायोर्विशेषमहं वहुधा श्रुतवान् किन्त्वदृश्य वस्तुत्वात् तत् किं मया ज्ञातुं शक्यते ?

शिष्य कहता है—हे गुरदेव ! स्थिर वायु विशेष के सम्बन्ध में मैंने प्रायः सुना है किन्तु अदृश्य वस्तु होने के कारण क्या मैं उसे जान सकता हूँ ?

गुरुर्वदति—शक्यते, स्थिरवायुरेकं द्रव्यमयं वस्तु यदा तच्चलति तदावस्त्वन्तरं चालयति । तस्य च त्र्योगुणास्तीक्षणता स्फाटिकवत् स्वच्छता सङ्कीर्णता चेति । यदा सङ्कीर्णः क्रियते तदा वारुदवदाश्चर्य शक्तिस्तस्य जायते ।

गुरु कहते हैं—हाँ जाना जा सकता है । स्थिर वायु एक द्रव्य मय (तरल) वस्तु है जब यह चलती है तब अन्य वस्तुओं को चला देती हैं । उसके तीन गुण हैं—तीक्ष्णता, स्फटिक मणिवत् स्वच्छता एवं सङ्कीर्णता । जब वह सूक्ष्म हो जाता हैं तब बारूद की तरह उसकी आश्चर्यजनक शक्ति उत्पन्न हो जाती हैं ।

शिष्यः—स्थिरवायोरपरः कश्चिद्गुणे विद्यते ?

शिष्य—स्थिर वायु का कोई दूसरा गुण भी है ।

गुरुः—तस्माच्छब्द उत्पद्यते अतस्तेन विना वयं श्रोतुं न शक्नुमः । यदि तद्वायुर्नासीत् तदा रागरागिन्यादयो नासन् । एव-

माघ्राणञ्चास्माकं नाऽभवत् तथा परस्पर कथोपकथने वयमशक्ता भवाम: । स्थिरवायोरभ्यन्तरे चेदृक् परमाणुर्वर्त्तते यस्मिन् सूर्यरश्मय: प्रकाशन्ते अतएव तद्वायुर्यदि नासीत्तदा गगनमण्डले यत्र सूर्यस्तिष्ठति केवलं तत्रैवालोक: स्यात् । एवं मध्याह्ने पि ग्रह नक्षत्रादय: प्रदृष्टा भवन्तु ।

गुरु—उससे शब्द उत्पन्न होता है, अत: उसके बिना हम सुन नहीं सकते । यदि वह वायु नही होती तो राग रागिनी आदि नहीं होती । इसी प्रकार यदि हमारी घ्राण (नासिका) न होती तो हम आपस में वार्तालाप नहीं कर सकते । स्थिर वायु में यदि ऐसे परमाणु विद्यमान हैं जिनमें सूर्य की किरणें प्रकाशित होती हैं, अत: यदि वह वायु न होती तो आकाश मण्डल में जहाँ सूर्य स्थित हैं, वहाँ ही प्रकाश होता । और इस प्रकार मध्याह्न में भी ग्रह नक्षत्रादि दिखाई देते हैं ।

शिष्य:—स्थिरवायव: कतिविधा: सन्ति ?

शिष्य—स्थिर वायु कितने प्रकार की हैं ?

गुरु:—स च द्विविध: एक: प्राणदायक: अपर: प्राणनाशकश्च ।

गुरु—वह दो प्रकार की हैं, एक जीवदायिनी एवं दूसरी प्राणापहारिणी ।

शिष्य:—स्थिरवायौ तयो: कस्य कियानंऽशोविद्यते ?

शिष्य—स्थिरवायु में उनका अंश विद्यमान का किस दोनों है ?

गुरु:—शतसंख्याकांशक स्थिरवायो: शतांश मध्ये प्राणदायकस्यैकविंशत्यंऽशा: प्राणनाशकस्यैकोनाशीत्यंऽशा ज्ञातव्या: ।

गुरु—शतांश स्थिर वायु के शतांश में से प्राणदायक वायु का २१ अंश एवं प्राणनाशक का ७९ अंश जानना चाहिये ।

शिष्य:—जलापेक्षया स्थिरवायू: कियाँल्लघु: ।?

शिष्य—जल की अपेक्षा स्थिर वायु कितनी लघु है ?

गुरु:—षोडशोत्तराष्टशत गुणेन स्थिरवायुर्लघु: ।

गुरु—८१६ गुना स्थिर वायु लघु है ।

शिष्य:—प्रत्येक मनुष्य शरीरोपरि स्थिरवायो: कियन्तो भारा: सन्ति ?

शिष्य—प्रत्येक मनुष्य के शरीर पर स्थिर वायु का कितना भार होता है ?

गुरु:—प्रत्येक शरीरोपरि द्विचत्वारिंशत संख्यक लोक प्रसिद्ध मनपरिमित भारा: सन्ति ।

गुरु—प्रत्येक शरीर पर ४१ संख्यक अर्थात् लोक में प्रसिद्ध 'मन' भरके बराबर भार होता है ।

शिष्य:—अहो किमेतत् यदेताद्दश भारेषु सत्सु वयं तान् बोद्धुं न शक्नुम: ?

शिष्य—अरे क्या इस इतने भार के होते हुए उसे हम नहीं जान सकते ?

गुरु:—अत्रैतत् कारणं शरीराभ्यन्तरे शरीरबाह्ये च ये स्थिरवायव: सन्ति तेषां परस्पर विश्लेषेण हेतुना तद्भारो नावबुध्यते ।

गुरु—इसका क्या कारण है । शरीर के अन्दर एवं शरीर के बाहर जो स्थिर वायु हैं उनका परस्पर विश्लेषण होने के कारण उनका भार ज्ञात नहीं होता ।

शिष्य:—सर्वेषां स्थिरवायूनां कियन्तो भारा: ?

शिष्य—सभी स्थिर वायुओं का भार कितना है ?

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गुरुः—५७६११०५७८ १००८८६५४३ एतत् संख्यकाशीति तोलकमान लोकप्रसिद्ध सरे परिमाणेन तेषां भाराः ।

गुरु—५७६११०५७८१००८८६५४४ इतनी संख्या का ८० तोले के मान परिमाण से भार है ।

शिष्यः—समीरणः किं ?

शिष्य—समीकरण क्या है ?

गुरुः—यदा स्थिरवायुश्चलति तदा समीरणः प्रोच्यते ।

गुरु—जब स्थिर वायु चलति तब समीकरण कहलाता है ।

शिष्यः—स्थिरवायुर्यच्चलति तत्र कारणं किम् ?

शिष्य—स्थिर वायु जो चलती है उसका क्या कारण है ?

गुरुः—ग्रीष्मः शीतश्च यत् स्थिरवायौ विद्यते तस्मादेव स चलति ग्रीष्मेण स्थिरवायुर्विस्तृतो भवति शीतेन च सङ्कीर्णः क्रियते । यत् समीरण विशेषो भवति तत् कारणं केनापि हठाद्वक्तुं न शक्यते वस्तुतो यदा ग्रीष्मेण स्थिरवायुस्तीक्ष्णो भवति तदा स्थिरवायोस्तीक्ष्णोंऽशस्तत्र वेग्रेन प्रविशति । अनेन रूपेण समीरण विशेषा जायन्ते ।

गुरु—गर्मी और सर्दी जो स्थिर वायु में होती है उसी से वह चलती है, गर्मी से स्थिर वायु विस्तृत हो जाती है और शीत से सिकुड़ जाती है । और जो समीकरण विशेष होता है उसको कोई भी सहसा ही नहीं कह (बता) सकता । वस्तुतः जब गर्मी से स्थिर वायु तीक्ष्ण हो होती है तब स्थिर वायु का अतीक्ष्ण अंश वहाँ शीघ्रता से प्रविष्ट हो जाता है । इस रूप में समीरण विशेष उत्पन्न होता है ।

शिष्यः—समीरणस्य किं विशेषनामाऽस्ति ?

शिष्य—समीरण का कोई विशेष नाम है ।

गुरुः—अस्ति यस्या दिशो वायुर्वहति तन्नामानं स लभते। अतः पूर्व पश्चिम दक्षिणोत्तरा विभागेन समीरणाः प्रोच्यन्ते।

गुरु—है, जिस दिशा में वायु चलती है उसका नाम वह प्राप्त कर लेती है। अतः पूर्व पश्चिम, दक्षिण एवं उत्तर के विभाग से समीरण कहा जाता है।

शिष्यः—मया केन रूपेण एता दिशो निरूपितव्यास्तत् किं गुरो स्वानुग्रहेण मां वक्ष्यसि ?

शिष्य—मुझे किस रूप में इन दिशाओं का निरूपण करना चाहिये क्या गुरुदेव कृपा करके बतलायेंगे ?

गुरुः—प्रातःकाले सूर्य्याभिमुखे त्वयि स्थिते त्वत् सम्मुख भागे या दिक् सा पूर्वादिक् पश्चाद्भागे पश्चिमा दिक्, दक्षिणभागे दक्षिणा दिक्, वामे चोत्तरा दिगिति वेदितव्यम्।

गुरु—प्रातः काल में सूर्य की ओर मुख करके तुम्हारे स्थित होने पर तुम्हारे सम्मुख के भाग में जो दिशा है वह पूर्व दिशा है पीछे की ओर पश्चिम दिशा, दाहिनी ओर दक्षिण दिशा एवं बाई ओर उत्तर दिशा है, ऐसा जानना चाहिए।

शिष्यः—समीरणात् किं फलं भवति ?

शिष्य—समीरण से क्या फल होता है।

गुरुः—समीरणतोऽसंख्य फलं जायते। पश्य सः स्थिरवायुं निर्म्मलं करोति। कुञ्झटिकां निवारयति। समये वृष्टि हिम हिमानीः समानयति। एवमाकाशं निर्मलं करोति वाणिज्यादि कर्मणि रत्नाकरे बृहन्नौप्रयाणे वणिजामुपकरोति च।

गुरु—समीरण से असंख्य फलों (उद्देशों) की प्राप्ति होती है। देखो, वह स्थिर वायु को निर्मल बनाती है, ग्रीष्म का संचालन करती

है, गीले हुये घर को एवं गीली भूमि को सूखा बनाती है, कुहरा दूर करती है, समय पर वर्षा करती है, बर्फ को वृहत् वर्फ बना देती है। इसी प्रकार से आकाश को निर्मल बनाती है, व्यापारादि के कार्यों के लिये समुद्र में बड़ी २ नौकाओं में संचालन में व्यापारियों का महत् उपकार करती है।

शिष्य:—वायु: कियत् शीघ्रं गच्छति ?
शिष्य—वायु कितनी शीघ्रता से चलती है ?

गुरु:—सार्द्धं दण्डद्वयाभ्यन्तरे क्रोशैकमारभ्य षष्टिक्रोश पर्यन्तं गन्तुं शक्नोति तत् कालाभ्यन्तरे यदा क्रोशमेकं चलति तदा वायुरति मन्दं वहति तत् प्राय: कैर्नाविबुध्यते। तत् काले च यदि षष्टिकोशं गच्छति तदा महती झञ्झरेत्युच्यते। साधारण मध्यमो वायु: सार्द्धं दण्डद्वय मध्येपञ्चदशक्रोशं चलति। यस्तु निर्घातवायुर्वेगेन वृक्षसद्म वाटीर्नाशयति स हि दण्डैकेन चत्वारिंशत् क्रोशं गच्छति।

गुरु—ढाई दण्ड के अन्दर एक कोश से प्रारम्भ होकर छ: कोश तक चल सकती है। उस समय में जब ये एक कोश चलती है, तब वायु अति धीमी गति से बहती है; प्राय: वह किसी के द्वारा नहीं जानी जाती और यदि उतने ही समय में छ: कोश चलती है तब महान् झंझावात (तूफान) कहलाती है। साधारण मध्यम वायु ढाई दण्ड में पन्द्रह कोश की गति से चलती है। और जो निर्घात वायु वेग से वृक्ष-मकान-वाटी का नाश करती है वही दण्ड में ४० कोश जाती है।

शिष्य:—वायु: कतिविधो भवति ?
शिष्य—वायु कितने प्रकार की होती है ?

गुरु:—स च त्रिविधो भवति एक: साधारणो य: सततं

वहति। द्वितीयो यस्तु मास विशेषे वहति। तृतीयश्च यो हि समुद्रात् पृथिव्या वा काल विशेषे उपतिष्ठते।

गुरु—वह (वायु) तीन प्रकार की होती है—एक साधारण जो निरन्तर बहती है। दूसरी वह जो मास विशेष में बहती है, और तीसरी वह जो समुद्र से पृथ्वी पर समय विशेष में उत्पन्न होती है।

शिष्यः—सर्वदा वहति यः साधारणो वायुस्तथा मास-विशेषे वहति यो वायुस्तत् कारणं किम्?

शिष्य—जो साधारण वायु सदैव बहती है तथा मास विशेष में जो वायु बहती है, उसका क्या कारण है।

गुरुः—तत् कारणं सूर्य्यस्य तापः।

गुरु—उसका कारण सूर्य की गर्मी हैं।

शिष्यः—यो वायुः समुद्रात् भूमेर्वा निर्गत्य वहति तत् कारणं किम्?

शिष्य—जो वायु समुद्र से अथवा भूमि से निकलकर बहती है, उसका क्या कारण हैं?

गुरुः—समुद्र समीपस्थानि यानि स्थानानि तेषु ये स्थिर-वायवस्ते दिवसाऽभ्यन्तरे सामुद्र स्थिरवाय्वपेक्षया उष्णा विस्तारिताश्च भवन्ति अतः कारणात्तत् समीरणस्तत्र भूमौ वहति अतोऽनेन लवणीय वायुर्जायते। रात्रिकाले च गुरुतर स्थिरवायुर्यः पर्वतोपरि वर्त्तते स हि निम्नप्रदेशे पतेत्। एवं सामुद्र स्थिरवाय्वपेक्षया गुरुत्वात् स हि सामुद्र स्थिरवायौ प्रविशति तेन च भौमवायुर्जायते।

गुरु—समुद्र के समीपवर्त्ती स्थानों में जो स्थल हैं उनमें जो स्थिरवायुएं हैं वे दिन में समुद्री स्थिर वायुओं की अपेक्षा गर्म एवं

विस्तृत होती है यही कारण है कि तव समीरण वहाँ भूमि पर वहता है इसी से लवणीय वायु (समुद्री) खारी वायु उत्पन्न होती है। और रात्रि समय में गुरुतर (भारी) स्थिर वायु जो पर्वत पर होती है, वह निचले स्थानों पर गिर पड़ती है। इस प्रकार से समुद्री स्थिर वायु की अपेक्षा भारी होने के कारण वह समुद्री स्थिर वायु प्रवेश कर जाती है और उसी से भूमि की वायु उत्पन्न हो जाती है।

शिष्यः—वायुविशेषस्य के के गुणाः सन्ति ?

शिष्य—वायु विशेष में कौन-कौन मे गुण हैं ?

गुरुः—देशविशेषीय वायोर्गुणविशेषाः सन्ति तथा चास्मिन् वङ्गदेशे दक्षिणवायुर्मध्यमः, उत्तरीय वायुः सुशीतलः, पूर्व वायुश्च रोगदायकः, पश्चिम वायुरत्युष्णो रुक्षश्चेति।

गुरु—देश विशेष की वायु के गुण विशेष हैं जैसे इस वङ्ग (बंगाल) देश में दक्षिण वायु मध्यम, उत्तरी वायु शीतल (ठण्डी) पूर्वी वायु रोगकारिणी, पश्चिमी वायु अति गर्म होती है।

शिष्यः—एतेषां गुणानां किमिह कारणम् ?

शिष्य—इन गुणों का क्या कारण है ?

गुरुः—दक्षिण वायुर्यन्मध्यमस्तत्रैतत् कारणं यतो दक्षिण महासागरादायाति। उत्तरी वायुर्यत् शीतलस्तत्रैतत् कारणं यतो हिमसागरतः किम्वा ईषत् सूर्यरश्मिक-हिमालय प्रदेशादायाति। पूर्ववायुर्यद्रोगदायी तत्रैतद्बीजं यतः सुन्दराख्य महावनान्तरादायाति। पश्चिम वायुर्यदुष्णो रुक्षश्च तत्रैतत् कारणं यतोऽत्युष्ण रुक्ष भूम्यन्तरादायाति।

गुरु—दक्षिण वायु जो मध्यम है उसका कारण, यह है कि वह दक्षिणी महासागर से आती है। उत्तरी वायु जो शीतल है, उसका

कारण है कि वह हिमसागर से अथवा कुछ सूर्यरश्मियों वाले हिमालय प्रदेश से आती है। पूर्वी वायु जो रोगकारी है उसका हेतु यह है क्योंकि वह सुन्दर नामक महावन के मध्य से आती है। पश्चिमी वायु जो गर्म एवं सूखी होती है, उसका कारण यह है कि वह अति गर्म एवं सूखी पृथ्वी के अन्दर से आती है।

शिष्यः—कथं निर्घातवायुर्भवति ?

शिष्य—निर्घात वायु (विनाश कारिणी वायु) कैसे (उत्पन्न) होती है ?

गुरुः—बलवन्तौ द्वौ समीरणौ यदा परस्परं सम्मुखवर्त्तिनौ परस्पराहतौ स्यातामथवा हठात् स्थिरवायौ विस्तारिते भूते निर्घातो जायते एवं महती झंझाप्यनेन प्रकारेग भवति।

गुरु—शक्तिवान् दो समीरणों में जब परस्पर सम्मुखवर्त्ती होने पर आपस में टकराहट होती है अथवा अचानक स्थिर वायु में विस्तार हो जाने पर निर्घात वायु उत्पन्न होती है, इस प्रकार विशाल झंझावातादि भी (विभिन्न) प्रकार की होती है।

शिष्यः—किन्तावद्वाष्पं मेघो वा ?

शिष्य—तो फिर (वाष्प) भाप अथवा मेघ क्या है ?

गुरुः—वाष्पमति सूक्ष्ममदृश्यश्च अर्थाज्जलीय परमाणुश्चाकाशे समुत्तिष्ठते। यदा च सम्भूय संकीर्णः सन् दृश्योभवति तदा मेघ इत्यभिधीयते।

गुरु—भाप अति सूक्ष्म एवं जल के परमाणु हैं और आकाश में उड़ जाते हैं। तथा जब एकत्र होकर सूक्ष्म रूप में दिखाई देते हैं तब मेघ कहलाते हैं।

शिष्यः—वाष्पमिदं कस्मादुत्तिष्ठते ?

शिष्य—यह भाप क्यों उड़ती है ?

गुरुः—दिनकर करसन्तापवशात् पृथिव्या उत्तिष्ठत लघुतया गगनमण्डले तिष्ठेत् ।

गुरु—भाप सूर्य की किरणों के तापवश पृथ्वी से उठकर लघु (हल्के) होने के कारण आकाश मण्डल को उड़ जाती है ।

शिष्यः—तस्याकाशमण्डलावस्थाने कि फलं ?

शिष्य—उसका आकाशमण्डलमें स्थित होने का क्या परिणाम है ?

गुरुः—यदा स्थिरवायुरुष्णो भवति तदा तं शीतलत्वं नयति यदा च स्वयं संकीर्णो भूय मेघो भवति तदाऽस्माकं छायां वितनोति एवं पृथिव्या उष्णतां वारयति येन च मृत्तिका न स्फुटति एवं महोपकारिणीं वृष्टिं जनयति ।

गुरु—जब स्थिरवायु गर्म होतीहै तब उसको शीतल बनाती है और जब स्वयं सकीर्ण होकर मेघ हो जाती हैं तब हमको छाया प्रदान करती है इसी प्रकार पृथ्वी की गर्मी का निवारण करतीहै जिससे मिट्टी स्फुटित नहीं होती (मिट्टी में दरार नहीं पड़ती) तथा परोकारिणी वर्षा करती है ।

शिष्यः—वाष्पतः किं लोकानां कापि हानिर्नजायते ?

शिष्य—भाप से क्या लोकों की (पक्षान्तर में मनुष्यों की) कोई हानि उत्पन्न नहीं होती ?

गुरुः—समयविशेषे हानिर्भवितुमर्हति । यतः सर्वैः प्राय एवमनुमीयते यत् तस्मादेव भूकम्पो जायते तदनुमानवीजं पृथिव्या अभ्यन्तरे लवणविशेषगन्धकमयं वाष्प वर्त्तते यदा तस्मिन् वाष्पे स्फुलिङ्गः प्रविशति तदा ज्वलित्वा तस्मिन् प्रब-

लिते भूकम्पो भवति कदाचिद्वा पृथिव्या अन्तर्गत वायुस्तदीय वाष्पम्वा विसारि सत् भूकम्पं जनयेत् ।

गुरु—समय विशेष में हानि हो सकती है। क्योंकि प्रायः इस प्रकार अनुमान लगाया जाता है कि भाप से भूकम्प उत्पन्न होता है उस अनुमान का हेतु पृथ्वी के अन्दर लवण विशेष गन्धक युक्त भाप है, जब उस भाप में चिनगारी प्रवेश करती हैं तब जलकर उसके चलने पर भूकम्प होता है अथवा कभी पृथ्वी के अन्तर्गत वायु अथवा भाप पृथ्वी में भूकम्प उत्पन्न कर देता है।

शिष्यः—ऊर्द्ध्वं कियद्दूरं मेघा उत्तिष्ठन्ते ?

शिष्य—ऊँचाई में मेघ कितनी दूरी पर उड़ जाते हैं ?

गुरुः—पृथिव्या अर्द्धमर्द्धकोशमारभ्य क्रोशद्वय पर्य्यन्त मुत्तिष्ठन्ते ।

गुरु—पृथ्वी की ऊँचाई में आधे कोश से लेकर दो कोश पर्यन्त उड़ते हैं।

शिष्यः—मेघानां मध्ये यन्नानावर्णा नानावयवाश्च दृश्यन्ते तत् कारणं किं ?

शिष्य—मेघों के मध्य में जो विभिन्न रंग के विभिन्न अवयव दिखाई देते हैं उसका कारण क्या है ?

गुरुः—ते च वर्णाः सूर्यकिरणेभ्यः उत्पद्यन्ते एवं मेघा यथा निविडाः सूर्य सन्निधिवर्तिनश्च भवन्ति तथा वर्ण विशेषा जायन्ते एवं वायुना ते यथा विचलिता भवन्ति तथाकृतयोपि दृश्यन्ते ।

गुरु—वे रंग सूर्य की किरणों से उत्पन्न होते हैं जिस प्रकार मेघ घने होकर सूर्य के समीपवर्त्ती होते हैं वैसे ही रंग

विशेष उत्पन्न होते हैं इसी प्रकार वायु द्वारा वे जैसे भी संचालित होते हैं वैसी ही आकृति के दिखाई देते हैं।

शिष्यः—प्रायः सततमेवाकाशं यन्नीलवर्णाभं दृश्यते तत् कारणं किं ?

शिष्य—प्रायः निरन्तर ही आकाश जो नीली वर्ण वाली आभा से युक्त दिखाई देता है उसका क्या कारण है ?

गुरुः—तदेतद् कारणं यद्वाष्पमध्ये वायुर्विद्यते तेन हेतुना सर्वेभ्यो वर्णेभ्यः सूर्यकिरणस्य नीलसमत्वं प्रकाशते।

गुरु—उसका कारण यह है कि भाप के बीच में वायु है उसी हेतु सभी वर्णों से सूर्य किरण का नीलापन प्रकाशित होता है।

शिष्यः—वृष्टेः कारणं किं ?

शिष्य—वर्षा का क्या कारण है ?

गुरुः—यदा वाष्पैर्वायुरीदृक् पूर्णो भवति यथाऽन्यत् किमपि धारयितुं नशक्नोति तदा सम्भूय कृत्स्न वाष्पं स्वस्य गुरुत्वेन कणिकाकारैः पतेत् तस्याख्या वृष्टिरिति कणिकारूपेण वृष्टेः पतने परमेश्वरस्य कीदृशी विज्ञता प्रकाशते। यदि मूषलधारया वृष्टिः पतेत् तदा पृथ्वी प्रणस्येत् विशेषतस्तु वृक्ष-गुल्म-लतादीनां मूलगत मृन्निचय धौतेन वृक्षादयः प्रणष्टाःस्युरित्यनेन रूपेण जगतां महती हानिर्जायताम्।

गुरु—जब भाप से वाष्प इतनी पूर्ण हो जाती है कि उसके अतिरिक्त कुछ भी धारण नहीं कर सकती तब एकत्र हुई भाप को अपनी गुरुता से कणिका आकार (बूंदों के आकार) में गिराती है उसका नाम वर्षा है। कण के आकार की वर्षा गिरने में परमेश्वर की कैसी विज्ञता प्रकट होती है। यदि मूसलाधार वर्षा हो तो पृथ्वी नष्ट हो जाये विशेष

कर वृक्ष, झाड़ी, लताओं की जड़ की मिट्टी के घुल जाने से (मिट्टी के कटाव से) वृक्षादि नष्ट होजाये इस रूप में संसार के लिये महान् हानिप्रद है ।

शिष्य:—किं वृष्टितोऽस्माकं उपकारो जायते ?

शिष्य—क्या वर्षा से हमारा उपकार होता है ?

गुरु:—वृष्टय: पृथ्वीमिमां सफलां कुर्वन्ति म्लानी भूतानि शस्यानि च पुनरम्लानयन्ति, ग्रीष्मे चोत्तप्तान् वायून् शीतलतां नयन्ति एवं नदीनदादीनुत्पादयन्ति यभ्य: क्वचिन्न जलाभावो भवति ।

गुरु—वर्षा इस पृथ्वी को फलवती बना देती है । मलिन हुए (खाद्यान्न) को पुन: निर्मल बनाती है, ग्रीष्म में तप्त हुई वायुको शीतल बनातीहै तथा नदी एवं तालाबोंको उत्पन्न करतीहै जिनसे कहीं भी जलाभाव नहींहोता ।

शिष्य:—वृष्टे: प्रभवे किमपि लक्षणमस्ति ?

शिष्य—वर्षाकी उत्पत्ति अर्थात् वर्षाहोनेके सूचक कोई लक्षण हैं ?

गुरु:—तत्र नाना चिह्नानि सन्ति यत: समीरण-पक्षि-पुष्पादिभ्यो वृष्टेरागमनं निर्णीयते ।

गुरु—इस सम्बन्ध में विभिन्न चिह्न हैं क्योंकि समीरण, पक्षि, पुष्पादि से वर्षा के आगमन का निर्णय किया जाता है ।

शिष्य:—वत्सरमध्ये पृथिव्यां कियती वृष्टिर्जायते ?

शिष्य—संवत् में पृथ्वी पर कितनी वर्षा होती है ?

गुरु:—प्रायस्तूच्चै:शतयवपरिमाणेन पृथिव्यां वृष्टिर्जायते ।

गुरु—प्रायः १०० यव के परिमाणके तुल्य पृथ्वीमें वर्षा होती है।

शिष्यः—वत्सराभ्यन्तरे पृथिवीतो वाष्पाकारेणोर्द्ध्वं कियज्जलमुत्तिष्ठते ?

शिष्य—(एक) संवत् के अन्दर पृथ्वी से भाप के रूप में ऊपर कितना जल उड़ता है ?

गुरुः—त्रयोविंशत्यधिक शतसंख्यक यवविशेष परिमाणेन जलमुत्तिष्ठते ।

गुरु—एकसौतेईस यवपरिमाण विशेषजल पृथ्वीसे ऊपर जाताहै।

शिष्यः—शक्रधनुः कस्मादुत्पद्यते ?

शिष्य—इन्द्र धनुष किससे उत्पन्न होता है ?

गुरुः—यदा वृष्टिः पतति तदा तत् कणिकासु सूर्यरश्मयो लगन्ति तस्मादेव धनुराकृतिर्दृश्यते ।

गुरु—जब वर्षा पड़ती हैं तब उसकी कणिकाओं में सूर्य की किरण लग जाती है उसी से धनुषाकृति दिखाई देती है।

शिष्यः—तस्य धनुषो नानावर्णाः कस्मादुत्पद्यन्ते । ?

शिष्य—उस धनुष में विभिन्न रंग कैसे उत्पन्न होते हैं ?

गुरुः—सूर्यकिरणैरुत्पद्यन्ते यासु जलकणिकासु सूर्यरश्मयः प्रविश्य किंचिन् निःसरन्ति वा लोहितवर्णा दृश्यन्ते । यासु कणिकासुच सूर्यरश्मयः प्रविश्य अधिकं निर्गच्छन्ति ता नीलवर्णा दृश्यन्ते । अनेन च कणिका नानावर्णा जायन्ते ।

गुरु—सूर्य किरणों के उत्पन्न हो जाने पर जिन जलकणिकाओं में सूर्य की रश्मि प्रवेश करके कुछ निकल जाती है वे लोहित वर्ण की

अर्थात् लाल रंग की दिखाई देती है। जिन जल बिन्दुओं में सूर्यरश्मि प्रवेश करके अधिक निकल जाती हैं वे नीले रंग की दिखाई देती हैं। इसी प्रकार से जलकण नाना रंगों के हो जाते हैं।

शिष्यः—शीतं हिमञ्च केन प्रकारेण समागच्छति ?

शिष्य—शीत और हिम किस प्रकार आते हैं ?

गुरुः—शीतं हिमञ्च नानासमये समीरणादुत्पद्य समायाति। विशेषस्तु दक्षिणोत्तर केन्द्राभ्यां विचलिते वायौ तदुभयमधिकं भवति अपरञ्च यथा वायुर्वहति तथा शीतहिमे सम्भवतः।

गुरु—शीत एवं हिम विभिन्न समय में समीरण से उत्पन्न होने से आते हैं विशेष कर दक्षिण-उत्तर केन्द्रों से चलने वाली वायु में वे दोनों अधिक होते हैं और भी जैसी वायु बहती है वैसा ही शीत अथवा हिम होता है।

शिष्यः—हिमानी केन जायते ?

शिष्य—बर्फ किससे उत्पन्न होती है ?

गुरुः—शीताधिक्येन जायते यतः शीतेन जलं संकीर्णं कृत्वा कठिनत्वं नीयते।

गुरु—शीत की अधिकता से उत्पन्न होती है क्योंकि ठण्ड से जल सिकुड़ कर कठिनता को प्राप्त हो जाता है।

शिष्यः—किमधिक शीतेन प्रयोजनं ?

शिष्य—अधिक ठण्ड का क्या प्रयोजन (हेतु) है ?

गुरुः—शीतातिशयेन भवेन्महानुपकारः। पश्यहि स्थिरवायुं निर्मलं करोति मनुजानां सरसं शरीरं नीरसं विधाय सबलं विदधाति तथा भूमिविशेषं कोमलं फलजननयोग्यञ्च करोति

एवमशेष हिम्रक कीटान् विनाशं नयति एवमितरेतरोपकारोपि ततोजायते ।

गुरु—शीताधिक्य से महान् उपकार होता है । देखो स्थिर वायु को निर्मल करता है, मनुष्यों के सरस शरीर को नीरस बनाकर सबल बनाता है तथा भूमि को विशेष कोमल फल उत्पन्न करने योग्य बनाता है इसी प्रकार समस्त हिंसक कीटाणुओं का विनाश करता है इनसे भिन्न भी बहुत से उपकार उससे होते हैं ।

शिष्यः—‘वरफ’ इति लोकप्रसिद्धं वस्तु किं तस्माद्वा किं फलं जायते ?

शिष्य—‘वर्फ’ यह लोक प्रसिद्ध वस्तु क्या है, तथा उससे क्या फल मिलता है ?

गुरुः—तद्वस्तु केवलं विकृतीभूतं जलं शुक्लवर्णञ्च तच्चाकाशाच्चारुपतति यैरेव तद्दृष्टं तैरेव तथात्वमुच्यते । तत् फलञ्चेदं यन्नाना शस्यादिकं रक्षति येन चातिशय शीतभूमौ गत्वा वीजानां हानिं कर्त्तुं न शक्नोति मेषलोमवत् तस्य वर्णफले वेदितव्ये ।

गुरु—वह वस्तु केवल जल का विकार मात्र है और शुभ्र रंग की है तथा आकाश से गिरती है जो उसको जैसा देखते हैं वे उसे वैसा कहते हैं । उसका फल से है कि ये विभिन्न शस्यादिकों की रक्षा करती है जिससे ठण्डी भूमि में जाकर बीजों की हानि नहीं की जा सकती । मेष रोमवत् उसका फल जानना चाहिए ।

शिष्यः—यच्चाकाशमण्डलात् करकाकारेणपततितत् किं ?

शिष्य—जो आकाशमण्डल से ओले गिरते है वह क्या है ?

गुरुः—शीतेनाम्बुकणिकाः संकीर्णी भूय करका भवन्ति ।

गुरु—ठण्ड की बूंदे सिकुड़ कर ओला बन जाती है।

शिष्य:—वरफाख्य वस्तु करकयोः को विशेषोऽस्ति ?

शिष्य—वरफ नामक वस्तु एवं ओलों की क्या विशेषता है ?

गुरुः—शीतेन कणिकानां सम्वलनात् प्राक् योमेघः शीतेन कठिनतां याति स एव वरफाख्यतां लब्धा पतति परन्तु कणिकाः सम्भूय शीतेन कठिनतां प्राप्य करकाकारेण पतन्तीति।

गुरु—ठण्ड से जलकणिकाओं का सम्वल लेने पूर्व मेघ ठण्ड से कठिनता को प्राप्त हो जाता है वह ही वरफ, संज्ञा को प्राप्त कर गिरता है किन्तु जल कणिका एकत्र होकर ठण्ड से कठिनता को प्राप्त करके ओलों के आकार में गिरती है।

शिष्य:—कुञ्झटिकायाः किं फलं ?

शिष्य—नीहार का क्या फल है।

गुरुः—निर्जल समये क्षुद्रान् परिम्लानांश्च वृक्षान् तरुणान् विदधाति।

गुरु—जलरहित समयमें क्षुद्र एवं मलिनहुए वृक्षोंको तरुण बनाती है।

शिष्य:—कुञ्झरटिका केनरूपेण जायते ?

शिष.—नीहार कैसे बनता है ?

गुरुः—यानि वाष्पानि मृत्तिकाया उत्पद्यन्ते तानि शीतेन संकीर्णतां गत्वा कुञ्झरटिका भवन्ति।

गुरु—जो भाप मिट्टी से उत्पन्न होती है वह ठण्ड से सिकुड़ कर नीहार बनती है।

शिष्य:—हिमसमये कणिकाकारा याः शिलाः पतन्ति तत् कारणं किं ?

शिष्य—हिम के समय में कंकड़ के आकार की जो शिला (पत्थर) गिरती है उनका क्या कारण है ?

गुरु:--शीतेन वाष्पं काठिन्यं गत्वा वरफाकारेणाकाशात् चारुतया पतति तच्चावलोकन योग्यमस्ति ।

गुरु—ठण्ड से भाप कठोरता को प्राप्त होकर वरफ के आकार में आकाश से बड़े ही सुन्दर ढंग से गिरती है और वह (वस्तुत.) देखने योग्य है ।

शिष्य:—मेघतो विद्युद्गर्जनं केन प्रजायते ?

शिष्य— मेघ से बिजली का गर्जन किससे उत्पन्न होता है ?

गुरु:—मेघाभ्यन्तरे वह्निमयं वस्तु वर्त्तते यदा तद्वह्निमयं वस्तु ह्यकस्मामेघादपरमेघं प्रविशति तदा विद्युदुत्पद्यते एवं मेघान्तर प्रवेशमात्रेण गन्धक मुख्य वस्तुवत् प्रज्वल्य यन्महान्तं शब्दंकरोति तदेव मेघ गर्जनमित्यभिधीयते ।

गुरु—मेघों के भीतर अग्निमय वस्तु है जब वह अग्निमय वस्तु दूसरे एक मेघ में प्रवेश करती है तव बिजली उत्पन्न होती है इसी प्रकार दूसरे में प्रवेश मात्र से गन्धक मुख्य वस्तु के समान जलकर जो महान् शब्द करता है वही मेघ का गर्जन कहलाता है ।

शिष्य:—विद्युतोऽस्माकमुपकार: क: ?

शिष्य—-बिजली से हमारा क्या उपकार है ?

गुरु:—सा च मन्दतर वाष्पं विनाशयति समीरणश्चेतस्ततश्चालयति येन वायु निर्मल: स्यात् एवं वृष्टिमुत्पादयति ग्रीष्मस्य चाल्पत्वं विदधाति च ।

गुरु—वह धीमी भाप को विनष्ट करती है । समीरण को इधर

उधर सञ्चालित करती है जिससे वायु निर्मल होती है, इसी प्रकार वर्षा को उत्पन्न करती है, गर्मी कर देती है ।

शिष्यः—किं मेघगर्जनस्य कारणम् ?

शिष्य—मेघ की गर्जना का क्या कारण है ?

गुरुः—लवण विशेष गन्धकमयवस्तुनोर्वाष्पं सूर्यतापेन पृथिव्या उत्थाय यदा मेघेन युक्तं भवति तदा तस्मिन् मेघे ज्वलित्वा छिन्नभिन्नतां गते तद्गर्जनमुपजायते । कारणान्तरञ्च यदा विद्युद्भिः वायुमयं वस्तु छिन्नभिन्नतां याति तदा तेनापि मेघगर्जनं भवति ।

गुरु—लवण विशेष गन्धक मय वस्तु की भाप सूर्य की गर्मी से पृथ्वी से (उड़कर) उठकर जब मेघ से युक्त होती है तब उस मेघ में जलकर छिन्नभिन्न होजाने पर वह गर्जन उत्पन्न होताहै । दूसरा कारण यह हैकि जब बिजली वायुमय वस्तु छिन्न-भिन्न कर देती हैं तब उससे भी मेघ गर्जन होता है ।

शिष्यः—मेघगर्जनस्य कठोरत्वे किं कारणम् ?

शिष्य—मेघ गर्जन के कठोरपन का क्या कारण है ?

गुरुः—प्रतिध्वनिना कठोरत्वं तस्य जायते ।

गुरु—प्रतिध्वनि से उसकी कठोरता उत्पन्न होती है ।

शिष्यः—प्रतिध्वनिः केन जायते ?

शिष्य—प्रतिध्वनि किससे उत्पन्न होती हैं ?

गुरुः—वायोर्गत्या जायते यताहि यदि वायुरुच्चैर्नीचभित्ति पर्वतादीनामुपरि निपतति तदाऽसौ प्रतिध्वनिरुत्पद्यते ।

गुरु—वायु की गति से उत्पन्न होती है क्योंकि यदि वायु ऊँची नीची दीवारों अथवा पर्वतादिपर गिरतीहै तबसे प्रतिध्वनि उत्पन्न होती है।

शिष्यः—मेघगर्जनं यदि केवलं शब्दमात्रं वास्तवं तदा तस्मादस्माकं किं भयमुचित स्यात् ?

शिष्य—मेघ गर्जन यदि केवल वास्तव में शब्द है तो क्या उससे हमें भय करना उचित है ?

गुरुः—वाढं, तस्माद्भयसम्भावना का। तत्र च भयोत्पादिका विद्युत् परन्तु यदि विद्युद्दूरे भवति तदा ततोपि नहि भयसम्भावनाऽस्ति।

गुरु—उससे भय की सम्भावना क्या है ? और उसमें तो भय की हेतु बिजली है परन्तु यदि वह बिजली दूर होती है तब तो उससे भी भय की सम्भावना नहीं है।

शिष्यः—तडिदियं दूरे समीपे वेति मया केन निश्चेतव्यं?

शिष्य—बिजली दूर है अथवा समीप है मुझे किस प्रकार निश्चित करना चाहिये ?

गुरुः—विद्युद्दर्शनाऽनन्तरं मेघगर्जनात् प्राक् यदि कियानन्तरितः कालः स्यात्तदा तेन निर्णेतव्यं भवति। यदि च तत् कालाधिक्यमनुभूयते तदा विद्युद्दूरे भवति नाऽसौ भयजनिकेति वेदितव्यं स्यात्। यद्यल्पतर समयोऽनुभूयते यदा विद्युन्निकटवर्त्तिनी लघुभयजनिका चेतिमन्तव्यं।

गुरु—बिजली देखने के पश्चात् मेघ गर्जन से पूर्व कितना समय का तब अन्तर था उससे निर्णय होता है। और यदि वह समय

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अधिक है जब ऐसा अनुभव होता है तब बिजली दूर होती है, तब यह भय कारिणी नहीं है ऐसा जानना चाहिये। यदि समय (थोड़ा) प्रतीत हो तब बिजली समीप ही है तथा अल्पभय को उत्पन्न करने वाली है यह मानना चाहिये।

शिष्य:—यदि विद्युद्गर्जनञ्च एकस्मिन् काले जायते यदा विद्युति जातायां किञ्चिद्विलम्बे यद्गर्जनं भवति तद्बीजं किं ?

शिष्य—यदि बिजली और गर्जन (दोनों) एक ही समय में उत्पन्न होते हैं, जब बिजली के उत्पन्न होने पर कुछ बिलम्ब से जो गर्जन होता है उसका क्या हेतु है ?

गुरु:—अत्रैतद्बीजं यत: शब्दापेक्षया चालोकोऽतिशीघ्रगामी तेन हेतुना चास्माकं चक्षुषि पूर्वं तदालोक: स्पृशति पश्चात् श्रुतौ शब्दग्रहो जायते।

गुरु—इसका कारण है क्योंकि शब्द की अपेक्षा प्रकाश अति शीघ्रगामी होता है इसी कारण हमारी आखें पहले प्रकाश का स्पर्श करती हैं पश्चात् शब्द ग्रहण होता है।

शिष्य:—आकाशमण्डले शब्द: कियच्छीघ्रं चलति ?

शिष्य—आकाश मण्डल में शब्द कितनी शीघ्रता से चलता हैं ?

गुरु:—यदि कामपि बाधां न प्राप्नोति तदा निमेषैकेन त्रिपञ्चाशदधिक सप्तशत हस्तमित देशं स गच्छति आलोकस्तु तन्निमेषाभ्यन्तरे द्विलक्षक्रोशं चलति।

गुरु—यदि कोई बाधा न हो तो एक निमेष में सात सौ तिरेपन हाथ पर्यन्त दूरी तय कर लेता है प्रकाश तो उसी निमेष में दो लाख कोश चलता है।

शिष्यः—हे महाशय ! भवत्सकाशात् किं मया न श्रुतं यद्विद्युद्गर्जन समये वृक्षाधस्थल गमनमनुचितं ?

शिष्य—हे महानुभाव ! क्या मैंने आपसे यह नहीं सुना कि विजली एवं गर्जन के समय वृक्ष के नीचे स्थल पर गमन करना अनुचित है ?

गुरुः—अहो त्वामहमेतत् कथितवान् यतो वृक्षीयैका शक्तिर्विद्यते यथा विद्युदाकृष्यते । अतएव यदि तदानीं गृहादिकं न समीपवर्त्ति स्यात्तदा वृक्षाधधोगमनापेक्षया वरं पथिशून्य भूमौ गमनं श्रेयः स्यात् ।

गुरु—अहो तुम्हें मैंने यह बताया था कि वृक्ष की एक शक्ति होती है जो विजली को आकृष्ट करती है । अतएव यदि उस समय घर आदि समीप में न हो तो वृक्षों के नीचे गमन की अपेक्षा शून्य भूमि अथवा मार्ग पर जाना ही कल्याणकारी है ।

शिष्यः—झञ्झा पातसमये विद्युता गर्जनेन च यन्नाना मनुष्य पशु पक्षिणो विनाशमुपयान्ति तेषाञ्च हानिरपि यद्भवति तत् कारणं किं ?

शिष्य—झंझावात के समय बिजली एवं गर्जन से जो विभिन्न मनुष्य-पशु पक्षियों का विनाश होता है और उनकी जो हानि होती है उसका क्या कारण है ?

गुरुः—मेघाभ्यन्तरे यल्लवण विशेषगन्धकमयवस्तु विद्यते तद्यदि शुष्कं लघु च भवति तदातद्गुणोर्द्ध भागे समुत्तिष्ठते एवं तत्र तत् प्रज्वल्य विद्युद्भूत्वापि कामपि हानिं न करोति यदि च तद्वस्तु निविडतरं गुरु च भवति तदा पृथिव्याः सन्निधौ तिष्ठति एवं तत् तत्र प्रज्वल्य विद्युद्भूत्वा स्थिरवायुं तीक्ष्ण कुर्वन् निकटस्थान् प्राणिनो नाशयति समीपवर्त्तिनां वस्तूनामपि हानिं विदधाति ।

गुरु—मेघों के भीतर जो लवण विशेष गन्धकमय वस्तु विद्यमान है वह यदि शुष्क और लघु होती है तव वह आकाश के ऊर्द्ध भाग में (उठती है) ठहरती और इस प्रकार वहाँ वह जलकर बिजली होकर कुछ भी हानि नहीं करती और यदि वह वस्तु घनी एव भारी होती है तव पृथ्वी के समीप स्थित होती है और इस प्रकार वहाँ वह जलकर बिजली वनकर स्थिर वायु को तेज वनाती हुई निकटस्थ प्राणियों का नाश एवं समीपवर्ती सभी वस्तुओं को हानि पहुंचाती है।

अथ चतुर्थ कथोपकथनं

(जलमय मृण्मय भूमण्डल विषयकं)

शिष्यः पृच्छति--पृथ्वीयं कस्माद्धेतोर्विसृष्टाऽभूत् ?

शिष्य पूछता है—ये पृथ्वी किस लिये बनाई गई हैं ?

गुरुर्वदति—प्राणिनिवहनां निवासाऽर्थं निर्मिताऽभूत् । अतः पृथिव्या अभ्यन्तरे उपरि च कोटि कोटि प्राणिनो निवसन्ति तन्निवासेन ते सुखिनो भवन्ति।

गुरु कहते है—प्राणी वर्ग के निवास हेतु निर्मित हुई है । अतः (पृथिव्या) पृथ्वी के नीचे एवं ऊपर करोड़ों प्राणी निवास करते हैं और वे उन निवासों से (निवास स्थलों) सुखी होते हैं ।

शिष्य—पृथ्वी कस्मिन् संस्थापिताऽस्ति ?

शिष्य—पृथ्वी किस पर स्थित है ?

गुरु—नहि कस्यचिदुपरि पृथ्वी स्थापिताऽस्ति तथाचेत् केन प्रकारेण पृथिव्या गमनं सम्भवति अतोऽत्र प्राचीनैर्यदुक्तं तदवधीयतां शून्य प्रदेशे पृथिवीयं परमेश्वरेण स्थापितेति ।

गूरु—पृथ्वी किसी के ऊपर स्थित नहीं है यदि वैसा होता अर्थात् पृथ्वी किसी पर स्थित होती तो किस प्रकार पृथ्वी का गमन सम्भव (सूर्य की परिक्रमा रूप गमन) होता अतः इस सम्बन्ध में जो कुछ प्राचीनों (विद्वानों) ने कहा है उसे ध्यान से सुनो—शून्य प्रदेश में परमेश्वर ने इस पृथ्वी को स्थापित किया ।

शिष्यः—यस्यां वयं निवसामः सेयं पृथिवी किं सदा शून्य प्रदेशे स्थित्वा भ्रमति ?

शिष्य—जिस पर हम निवास करते हैं वही ये पृथ्वी क्या सदैव शून्य प्रदेश में स्थित होकर घूमती है ?

गुरुः—तत् सत्यं इयं पृथिवी ग्रहादयश्च शून्यप्रदेशे स्थित्वा भ्रमन्ति ।

गुरु—ये सत्य है कि ये पृथ्वी एवं ग्रहादि शून्य भागमें स्थित होकर घूमते हैं ।

शिष्यः—यथाशक्त्या कृत्स्नमिदं सृष्टमभूत् एवं प्रथमावधि चालितं सदेतत्काल पर्यन्तं स्वस्व वर्त्मनि संरक्षितमस्ति सा शक्तिः कीदृगाश्चर्य्याऽस्ति ?

शिष्य—जिस शक्तिसे इसका निर्माण हुआ और इस प्रकार प्रथम वार चलाये जाने पर (अव तक) इस काल पर्यन्त अपने-अपने मार्ग पर संरक्षित है, वह शक्ति कैसी आश्चर्यमय है ?

गुरुः—परमेश्वरोऽयं स्वशक्त्या पृथ्वीमिमां सृष्टवान् एवं निजवुद्धि कौशल्येन जगदिदं जगदीश्वरः स्थापितवान् एवमाकाशमपि विस्तारयामास ।

गुरु—परमेश्वर ने अपनी इस शक्ति से इस पृथ्वी को रचा है और अपनी बुद्धि के कौशल से (चातुर्य से) इस संसार को जगत्पति ने स्थापित किया है इसी प्रकार से आकाश का विस्तार किया ।

शिष्यः—अस्याः पृथिव्याः कतिभागाः सन्ति ?

शिष्य—इस पृथ्वी के कितने भाग हैं ?

गुरुः—तस्या द्वौ भागौ एकस्तु जलमयो द्वितीयो मृन्मय इति ।

गुरु—उसके दो भाग हैं—एक तो जलयुक्त दूसरा मिट्टी से युक्त।

शिष्यः—यदीयं कृत्स्ना पृथ्वी पर्वतोपपर्वतादिभिर्विहीना सती समानाकारेण विस्तृतासीत्तदा किमधिक सौन्दर्यं तस्या नासीत् किमेतैः पर्वतादिभिः तस्याः सौन्दर्य न्यूनता न स्यात् ?

शिष्य—जब यह पृथ्वी छोटे-बड़े पर्वतादिकों से रहित होने पर समआकार से विस्तृत की गई थी, तब क्या अधिक सौन्दर्य उसका (पृथ्वी) नहीं था, क्या इन पर्वतादिकों से उसके सौन्दर्य में कमी नहीं हुई है ?

गुरुः—मैवं एभिः क्षुद्रभूतैः पर्वतादिभिः पृथिव्याः सौन्दर्य-हानिर्भवतीति किमेषा बुद्धिस्ते भवति। पश्य यथा कृत्रिम भूगोलोपरि धूलिकणिका नारङ्ग फलावयवे च निम्नोन्नता च त्वक् तथा पृथिव्यां पर्वतादयः सन्ति। यदि पर्वतादयो नाऽभवन् तदा नदी नद निर्झरादयोऽपि नाऽभवन्। यतः वाष्प वृष्टि प्रभृतयः पर्वताभ्यन्तरे प्रविशन्ति तेनैव च नदी नदादयो जायन्ते। एवं पर्वतेभ्यो धातु मणि श्वेतप्रस्तरादयोपि जायन्ते। परन्त्वेतादृशी शक्तिः पर्वतस्याऽस्ति यया मेघान् आकर्षति। एवं निज समीपस्थां निम्नभूमिं हिम वातादवरक्षति च।

गुरु—ऐसा नहीं है। इन छोटे पर्वतादिकों से पृथ्वी का सौन्दर्य नष्ट होता है ये तुम्हारी बुद्धि को क्या हो गया है। देखो जैसे—बनावटी भूगोल पर धूलि-कण एवं नारंगी फल के अवयव पर जैसे नीची ऊँची त्वचा (छिलका) होती है वैसे ही पृथ्वी पर पर्वतादि हैं। यदि पर्वत आदि न होते तो नदी, नद, झरने आदि भी नहीं होते क्योंकि भापवृष्टि आदि पर्वतों के भीतर प्रविष्ट हो जाती हैं और उसीसे नदी, नाले आदि उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार पर्वतोंसे धातु, मणि, श्वेत पत्थर आदि भी प्राप्त होते हैं। परन्तु (वे) ऐसी शक्ति पर्वतों की है जो मेघों को आकृष्ट

करती है इसी प्रकार अपनी समीपस्थ नीची भूमि की हिम एवं वायु से रक्षा करते हैं।

शिष्यः—वालुकामय पर्वताः सन्ति येभ्यः किमपि कार्यं न जायते तैः किं फलं भवति ?

शिष्य—वालुकामय अर्थात् रेतीले पर्वतों का क्या फल है ?

गुरुः—तेषु फलं विद्यत एव यतस्तैः सामुद्रीय तरङ्गा निम्नभूमिं गन्तुं न शक्नुवन्ति। एतदस्माकं विवेचनायोग्यं भवति यद्यपि वालुका ईदृशीक्षुद्रा यदस्माभिः फुत्कारेण चालयितुं शक्यते तथापि ताः सम्भूयेदृक् कठिन पर्वतो भवति यत्र सामुद्रे तरङ्गे वेगेन समायातेऽपि कापि न तद्धानिर्भवति। एवं समुत्थितोऽपि समुद्रस्तं लङ्घयितुं न शक्नोति।

गुरु—उनमें फल विद्यमान ही है क्योंकि उनके कारण समुद्री लहरें निचली भूमि पर नहीं जा सकतीं। ये हमारे लिये विवेचना का विषय है यद्यपि बालू इतनी क्षुद्र (सूक्ष्म) होती है कि हमारी फूँक से चल सकती है तथापि वे एकत्र होकर इतनी कठोर पर्वत हो जाती है जहां कि समुद्री तरङ्ग वेगपूर्वक आने पर भी उनकी कोई हानि नहीं होती। इसी प्रकार समुद्र उछलकर भी उसे लांघ नहीं सकता।

शिष्यः—पृथिव्याआभ्यन्तर भाग वाह्य भागौसमानौ नवा ?

शिष्य—पृथ्वी का भीतरी एवं बाहरी भाग समान है अथवा नहीं ?

गुरुः—वस्तुतः नैकरूपत्वं तयोः यतः पृथिव्या अभ्यन्तरे स्वर्णरजत-ताम्रसीसक-लौह-प्रभृतयो नानाधातव वर्त्तन्ते।

गुरु—वस्तुतः वे दोनों एक समान नहीं हैं क्योंकि पृथ्वी के भीतर सोना, चांदी, ताँबा, सीसक, लोहा आदि अनेक प्रकार की धातुएँ विद्यमान हैं।

शिष्यः—मृत्तिकाभ्यन्तरे कथमेते धातवस्तिष्ठन्ति ?

शिष्य—मिट्टी के अन्दर ये धातु क्यों रहती हैं ?

गुरुः—कृषि कर्मणां कापि बाधा यथा न जायते एतस्मादेवमृत्तिकामध्ये ते तिष्ठन्ति ।

गुरु—कृषि कार्य में कोई बाधा उत्पन्न नहीं होती इसी कारण से ही ये मिट्टी के मध्य में रहती हैं ।

शिष्यः—धातुभ्योऽन्यत् किमपि मूल्यवद्वस्तु पृथिव्यां विद्यते ?

शिष्य—धातुओं के अतिरिक्त कोई और मूल्यवान् वस्तु पृथ्वीमें है?

गुरुः—आं, अनेकं वस्तु विद्यते पश्य, पारद-कठिनी-गन्धक चूर्ण-लवण इष्टका-काच-मृत्तिका प्रभृति वस्तु एवं प्रस्तर-श्वेत-प्रस्तर स्फाटिक हीरक-चुम्बक-पाषाणादिकं तस्माज्जायते येन चुम्बक प्रस्तरेण समुद्र गमने महानुपकारः स्यात् ।

गुरु—हां अनेक वस्तु हैं । देखो पारस पत्थर, गन्धक, चूर्ण, लवण, ईंट, कांच, मिट्टी आदि वस्तु और इसी प्रकार सफेद पत्थर, स्फटिक पत्थर, हीरा आदि चुम्बक पत्थर से समुद्र गमन में महान् सहायता मिलती है ।

शिष्यः—पृथिवी विषयकमेतत् सर्वं श्रुतवान् यदि भवान् मामनुगृह्णातितदा सामुद्रीयं विवेचनायोग्यं यद्यद्भवति तत् किञ्चिज्ज्ञातुमिच्छामि ।

शिष्य—पृथ्वी विषयक ये सब कुछ सुना यदि आप मुझ पर कृपा रखते हैं तो सामुद्रिक अर्थात् समुद्र सम्बन्धी जो भी विवेचना योग्य है वह कुछ जानने का मैं इच्छुक हूं ।

गुरुः—समुद्रस्य विवेच्यगुणास्तु विस्तारवत्ता गाम्भीर्यं लवणाक्तता, वृद्धिह्रासौ परिखा च ।

गुरु—समुद्र का विवेचनीय तत्व तो उसकी विस्तृतता, उसकी गंभीरता, उसका लवणपन, वृद्धि एवं ह्रास और परिधि है ।

शिष्यः—ईदृशी विस्तारवत्ता तस्य कथमभूत् ?

शिष्य—इतनी विस्तृतता उसकी कैसे हुई ?

गुरुः—अस्मिन्नुचितं कारणमास्ते । तत्र सन्देहो नास्ति यतः सर्वजलाधारभूतस्य समुद्रस्य प्रचण्डकर-करतापतो लक्षलक्ष कुम्भमितामेघा उत्पद्यन्ते तेषां मेघानां वर्षणतो निखिलदेशीय लोकानां स्नानपानादि कर्म निर्वहति ।

गुरु—इसका (कोई) उचित कारण नहीं है (किन्तु) इसमें सन्देह नहीं है क्योंकि समस्त जल के आधार भूत समुद्र के प्रचण्ड हाथों के ताप से लाखों-लाखों घड़े सदृश मेघ उत्पन्न होते हैं उन मेघों के बरसने से समस्त भूमण्डलीय लोगों के स्नान एवं पानादि कर्मों का निर्वाह होता है ।

शिष्यः—शरीरिणां शरीरेषु यथा प्रकृति भावो जायते तथासर्वेषु वस्तुषुतादृग्विद्यते न वा ?

शिष्य—शरीरी व्यक्तियों के शरीर में जैसे प्रकृति विकृति भाव (जनक और जन्य भाव) होता है वैसे समस्त वस्तुओं में उसी प्रकार का भाव है अथवा नहीं ?

गुरुः—आमेवं पश्य, वृष्टितो जलोद्गारि गर्त्तो जायते ततो नदी, नदीतः समुद्रोपचयः, समुद्रात् वाष्पं वाष्पात् मेघो जायते, मेघात् वृष्टिर्भवति । अनेनैव प्रकारेण प्रकृति विकृति भावः प्रथमावधि शेषान्तं वेदितव्य इति ।

गुरु—हां ऐसा ही है । देखो, वर्षा मे जलधारी गड्ढे उत्पन्न होते हैं; तब नदी, नदी से समुद्र संचित होता है, समुद्र से भाप, भाप से

मेघ, और मेघ से वर्षा होती है । इसी प्रकार से प्रकृति विकृति भाव प्रथम से लेकर शेष पर्यन्त जानना चाहिये ।

शिष्यः—अपरापर वस्तुतो यः प्रस्तरो जायते तद्बीज किं ?

शिष्य—एक पर एक वस्तु जो पत्थर उत्पन्न होते हैं उनका क्या हेतु है ?

गुरुः—गम्भीर नीरान्तरे प्रस्तर-ताम्रादि विद्यते । तस्मिन्नुदके यदन्यत् किमपि वस्तु वहुकालं तिष्ठति तत्तत् पाषाण ताम्रादि गुण सम्वन्धात् तद्रूपेण परिणमति ।

गुरु—गम्भीर जल के अन्दर पत्थर तांबा आदि विद्यमान है । उस जल में जो अन्य कोई भी वस्तु बहुत समय रहती है वही वही पत्थर, तांबा आदि गुण के सम्बन्ध से उसी रूप में परिणत हो जाती है ।

शिष्यः—हे गुरो ! हे महाशय मां प्रत्यनुग्रहं विधाय त्वया विशेषयित्वा वक्तव्यं नदी केन रूपेणाविर्भवतीति ?

शिष्य—हे गुरुदेव ! हे महामहिम ! मुझ पर कृपा करके आप विशेषतः यह बतलाइये नदी किस रूप में प्रकट होती है ?

गुरुः—पर्वताभ्यन्तरे स्थलविशेषे स्फाटितं वर्त्तते तस्मिन्नुदधि नदीमम्वुधि वाष्पीय जलं प्रविश्य जलोद्गारि गर्त्तो जायते प्रथमं वाष्पीय जलं गिरौ निपत्य स्फाटित रन्ध्रेणाभ्यन्तरे प्रविश्य यावत् कठोरं पाषाणमयं वा स्थलं न लभते तावदभ्यन्तरे तत् प्रविशतिकिन्तु तद्रूपं स्थलं प्राप्य तत्र क्रमेण वृद्धि लब्धा यदेकतो भित्वा वहिः निर्गच्छति तेन च कतिचित् स्रोतांसि मिलित्वा नदीं प्रावर्त्तयन्ति ।

गुरु—पर्वतों के भीतर स्थल विशेष में दरारें होती हैं उनमें जल नदी को लांघकर वाष्पीय (भाप के) जल प्रवेश करके जल युक्त गड्ढे

उत्पन्न होते हैं। सर्वप्रथम भाप का जल पर्वतों पर गिरकर दरारों के छिद्रों के भीतर प्रवेश करके जब तक कठोर पत्थरयुक्त स्थल को प्राप्त नहीं कर लेता तब तक उसके भीतर प्रविष्ट होता जाता है, किन्तु अपने अनुरूप स्थान को प्राप्त करके वहाँ क्रमशः वृद्धि को प्राप्त कर एक ओर से भेदकर (छिद्र करके) बाहर निकल आता है और उससे कुछ स्रोत मिलकर नदी बना लेते हैं।

शिष्यः—समुद्रस्य वृद्धिह्रासावर्थात् 'गोयारभाटेति' लोकप्रसिद्धौ कस्माद् भवतः तत् किं महाशय मामनुगृह्य वक्ष्यसि ?

शिष्य—समुद्र की वृद्धि एवं ह्रास अर्थात् 'ज्वार भाटा' लोकप्रसिद्ध (ये दोनों) कैसे होते हैं क्या महोदय मुझ पर अनुग्रह करके बतलायेंगे ?

गुरुः—प्रतिदिनं प्रहरद्वय पर्यन्तमसावनिर्वाच्य निखिल जलाधार नदी नदपति समुद्रो यद्वृद्धिं प्राप्नोति तल्लोकैर्जोयारेति प्रोच्यते। तदनन्तरं तस्य यो ह्रासस्तन्नाम 'भाटेति' प्रसिद्धं। अनेन प्रकारेण दक्षिणतः प्रारभ्योत्तरस्यां प्रतिदिनं स्रोतो गच्छति। वृद्धो पूर्णियां दण्डार्द्धानन्तरमुत्तरतो दक्षिणस्यां गच्छति अनेन च ह्रासे परिसमाप्ते दण्डार्द्धानन्तरं पुनरुत्तरस्यां गच्छति।

गुरु—प्रतिदिन दोप्रहर पर्यन्त अथाह जल को धारण करने वाले नदी, नद अर्थात् समुद्र जिस वृद्धि को प्राप्त करता है उसे लोग 'ज्वार' कहते हैं। उसके पश्चात् उसका जो ह्रास होता है उसका नाम 'भाटा' यह प्रसिद्ध है। इस प्रकार से दक्षिण से प्रारम्भ होकर उत्तर दिशा में प्रतिदिन जल प्रवाहित होता है। वृद्धि होने पर पूर्णिमा में आधे दण्ड के पश्चात् उत्तर से दक्षिण की ओर जाता है। इस प्रकार ह्रास की समाप्ति होने पर आधे दण्ड के पश्चात् फिर उत्तर की ओर जाता है।

शिष्यः—सामुद्रीय जलाकर्षणे चन्द्रसूर्ययोर्मध्ये कस्याऽधिका शक्तिः ?

शिष्य—समुद्री जल के आकर्षण में चन्द्र और सूर्य में से किसकी शक्ति अधिक है ?

गुरुः—सूर्यात्रिगुणा शक्तिश्चन्द्रस्येति लोकैरनुमीयते ।

गुरु—सूर्य से तिगुनी शक्ति चन्द्रमा की है, लोग ऐसा अनुमान लगाते हैं ।

शिष्यः—समय विशेषे समुद्रस्य ह्रासवृद्धौन्यूनाधिक्ये यत् कारणं तत् किमनुग्रहं विधाय मा प्रति वक्ष्यसि ?

शिष्य—समय विशेष में समुद्र का ह्रास एवं वृद्धि तथा कमी एवं अधिकता का जो कारण है उसे क्या आप कृपा करके मुझे बतलायेंगे ?

गुरुः—यदा चन्द्रः परिपूर्णो नूतनो वा भवति तस्मिन् काले सूर्य्याचन्द्रमसौ सन्निकर्षेण विप्रकर्षेण वा एकस्यां रेखायां स्थित्वा पृथिवीं समाकर्षतः तदा वृद्धेर्बाहुल्यं भवति परन्तु यदा तौ चन्द्र-सूर्य्यौ विषमे भागे तिष्ठत स्तदा एकस्यां चन्द्रीयाकर्षणतोऽपस्यां दिनकराकर्षणतो ह्रासाधिक्यं भवति । चन्द्रीय चतुर्थं कलावधि द्वादश कलापर्यन्तं मेतादृशं ह्रासाधिक्यं वेदितव्यं ।

गुरु—जब चन्द्रमा पूर्ण अथवा नवीन होता है उस समय सूर्य और चन्द्र सन्निकर्ष अथवा विप्रकर्ष से एक रेखा पर स्थित होकर पृथ्वी को अपनी ओर आकर्षित करते हैं तब वृद्धि की बहुलता होती है, परन्तु जब वे दोनों चन्द्रमा और सूर्य विषम भाग में स्थित होते हैं, तब एक ओर चन्द्रमा द्वारा आकर्षित किया जाता हुआ दूसरी ओर सूर्य द्वारा आकर्षित किये जाने पर ह्रास की अधिकता होती है । चन्द्रमा द्वारा चौथी कला की अवधि से बारह कला पर्यन्त इस प्रकार से ह्रास की अधिकता जाननी चाहिये ।

शिष्यः—पयसामेतादृगामनागमने किं फलमस्ति ?

शिष्य—जल के इस प्रकार से गमन एवं आगमन (आवागमन) का क्या फल है ?

गुरु:—त्वया हि श्रुतं यत् सूर्याचन्द्रमसोराकर्षणे न पयसां वृद्धि ह्रासौ जायते तच्च वायोर्बाहुल्यं गतेन त्वया सम्यग्वेदितव्यं। पयसां गतागतैर्जलीयाविलचयः प्रणश्यति यतोहि गतागताभ्यामन्तरेण जलं मलिनतरं भूत्वा पूतिगन्धाकुलं भवति एवं वणिजां वाणिज्य कर्मणि वृहन्नौभिर्गमनागमनं दुःसाध्यं भवति।

गुरु—तुमने सुना है कि सूर्य चन्द्रमा द्वारा आकर्षण किये जाने से जल की वृद्धि एवं ह्रास होता है और वह वायु की बहुलता पूर्वक गति से यह तुम्हें भलीभाँति जान लेना चाहिये। जल के आवागमन से जल का संचय नष्ट हो जाता है क्योंकि आवागमन के बिना जल मलिनतर होकर दुर्गन्धपूर्ण हो जाता है और इस प्रकार व्यापारियों के व्यापार कार्य में बड़ी-बड़ी नौकाओं के आवागमन को दुःसाध्य बनाता है।

शिष्यः—याश्च नद्यः समुद्रे प्रविशन्ति ताभिः समुद्रोपचयः कथं न स्यात् ?

शिष्य—जो नदियां समुद्र में प्रविष्ट होती हैं क्या उनसे समुद्र का उपचय नहीं होता ?

गुरुः—तत्रैतत् कारणं नदीनां यावज्जलं समुद्रे प्रविशति तदीय तावज्जलं प्रचण्डकरकरकलाप तापबाष्पाकारेणोद्ध्वें समुत्तिष्ठते।

गुरु—उसका कारण है, नदियों का जल जब तक समुद्र में प्रवेश करता है, तब तक ये जल प्रचण्ड करों (किरण) वाले सूर्य की किरण समूहों के ताप (गर्मी) से भाप के रूप में ऊपर उड़ जाता है।

शिष्यः—किं समुद्रस्य गाम्भीर्यमति वृहन्न ?

शिष्य—क्या समुद्र की गम्भीरता अत्यधिक नहीं है ?

गुरुः—तस्य सर्वत्र न समानं गाम्भीर्यं परन्तु क्वचित् क्वचिदेतादृग्गाम्भीर्यं वर्त्तते यत् षष्ट्यधिक पञ्चशतोत्तर सहस्रहस्तमितयारज्वापि मृत्तिका स्पर्शो न भवति ।

गुरु—उसकी सभी जगह समान गहराई नहीं है, परन्तु कहीं-कहीं इतनी गम्भीरता है कि पांचसौ से हजार हाथ की रस्सी से भी मिट्टी का (धरातल, निचली सतह का) स्पर्श नहीं होता ।

शिष्यः—समुद्रस्यैतादृग्गाम्भीर्यं कस्मादभूत् ?

शिष्य—समुद्र की इतनी गहराई कैसे हुई ?

गुरुः—निज बोधानुसारेण परमेश्वरः समुचितरूपेण जलं भूमिञ्च स्थापयामास न चात्र सन्देहोऽस्ति । तस्य परमेश्वरस्यैतादृशीच्छाऽभवत् समुद्रोऽयं महागंभीरो भवत्विति । स तु महागंभीरभावेनाऽशेष जलं धारयति तेन हेतुना पृथिव्याः कृत्स्नमंशं न प्लावयितुं शक्नोति । एतस्मादेवाऽनेक शुष्का भूमिर्दृश्यते ।

गुरु—अपनी बुद्धि के अनुसार परमेश्वर ने समुचित रूप से जल और भूमि की स्थापना का इसमें सन्देह नहीं है । उस परमेश्वर की वैसी इच्छा हुई कि समुद्र महान् गम्भीर हो जाये । वह तो महागम्भीर (भाविन) भाव से ही अशेष अर्थात् सम्पूर्ण जलराशि को धारण करता है । इसी कारण पृथ्वी के भाग को गीला नहीं कर सकता । यही कारण है कि भूमि बहुत सूखी दिखाई देती है ।

शिष्यः—कथं समुद्रस्य जलमीदृक् लवणमयं भवति ?

शिष्य—समुद्र का जल इतना खारी क्यों होता है ?

गुरुः—अत्रैतत् कारणमस्ति लवणाक्तत्वेन तस्मिन् जले दुर्गन्धो न जायते । एवं सामुद्रेण लवणेन लोकानां महोपकारोपि भवति।

गुरु—इसका कारण है लवण की युक्तता से उसके जल में दुर्गन्ध उत्पन्न नहीं होती। इसी प्रकार समुद्री लवण से लोगों का उपकार भी होता है।

शिष्य:—किमहो समुद्रात् लवणं जायते।?
शिष्य—समुद्र से लवण (नमक) क्यों उत्पन्न होता है ?

गुरु:—सामुद्रेभ्यो जलेभ्यो लोकैर्बहुतरं लवणमुत्पाद्यते यतः समुद्रतीरे बहुशो विपुलान् गर्त्तान् खनित्वा तेषु लवणाक्तं नीरं प्रवेशयति। अनन्तरं किरणमालिनः किरणकलापैस्तस्मिन्नीरे शुष्के सति तदवशिष्ट भागैः सैन्धवाख्य लवणं भवति।

गुरु—समुद्री जल से लोग बहुत सा नमक उत्पन्न करते हैं क्योंकि समुद्र के किनारे बहुत बड़े-बड़े गड्ढे खोदकर उनमें नमकयुक्त जल प्रविष्ट करा देते हैं। पश्चात् सूर्य की किरण जाल से उस जल के सूख जाने पर उसके बचे हुए भाग से सैंधा नामक बन जाता है।

शिष्य:—मनुष्याणां सम्बन्धे समुद्रः कीदृग्गुणकारी भवति ?
शिष्य—मनुष्योंके सम्बन्धमे समुद्र किस प्रकारसे उपकारी होता है?

गुरु:—त्वया किं न ज्ञायते समुद्रजैर्मत्स्यैर्मनुष्याणां यदुपकारो भवति सागराभ्यन्तरेऽसंख्यकाः क्षुद्रा ब्रहन्तश्च मत्स्याः सन्ति ये च मत्स्या भक्षणानर्हास्तेह्यपरापर कर्मसूपयुक्ता भवन्ति। त्वया किमेतत् न श्रुतं यत् समुद्रो वाणिज्यकर्मसु महोपकारी यतः समुद्रयानेनाऽतिदूरदेशं गत्वा वणिकैर्वाणिज्यं कर्मक्रियते एवमेतस्मिन् कर्मणि वृहन्नौकानिर्मातारो नाविकाश्च महोपकारं लभन्ते।

गुरु—क्या तुम नहीं जानते समुद्र में उत्पन्न मछलियों से मनुष्यों का जो उपकार होता है। सागर के मध्य में अगणित छोटे-बड़े मत्स्य

(मछली) हैं। और जो मछली खाने योग्य नहीं हैं वे अन्य कर्मों में उपयुक्त होती हैं। क्या तुमने यह नहीं सुना, समुद्र व्यापार कार्य में बहुत सहायक है। क्योंकि समुद्रीयान से अति दूर देश जाकर व्यापारी व्यापार करते हैं। इस प्रकार इस कार्य में बड़ी-बड़ी नौकाओं के निर्माता नाविकों का भी (समुद्र) महान् उपकारी अर्थात् लाभकारी है।

शिष्यः—समुद्रः कथमात्मपरिखाभ्यन्तरे सततं तिष्ठति ?

शिष्य—समुद्र अपनी परिधि (सीमा) के अन्दर निरन्तर कैसे स्थित रहता है ?

गुरुः—सृष्टिकाले चेट्टगिच्छया परमेश्वरोति भीषण समुद्रायाज्ञामिमां दत्तवान् त्वयैतत् सीमा पर्यन्तमेव गन्तव्यं परिखावाह्यं क्वचिदपि न गन्तव्यं एवमत्र ते महातरङ्गावाधां गमिष्यन्ति सीमातिक्रमणे तत्ताशक्या भविष्यन्तीति।

गुरु—सृष्टि के समय ही इस इच्छा से परमेश्वर ने अति भीषण समुद्र को यह आज्ञा दी कि तुम्हें इसी सीमा के अन्तर्गत ही जाना चाहिये परिधि से बाहर कहीं भी नहीं जाना चाहिये। इस प्रकार से तेरी महातरंगें वाधा रहित होकर गमन करेंगी अन्यथा सीमा का उल्लंघन करने पर वे शक्ति रहित हो जायेंगी।

शिष्यः—सर्वेषां देशानां जलोद्गारि गर्तानां विपुलनदीनाञ्च समुत्पादने समुद्रादसंख्यं वाष्पमुत्तिष्ठते एवमहं श्रुतवान् यदि समीरणतोजलं गुरुतरं तदा केन रूपेणोद्ध्वं तदुत्तिष्ठते।

शिष्य—सभी देशों के जलमय गड्ढों का, बड़ी-बड़ी नदियों के गिरने से समुद्र से असंख्य (अपरिमित) भाप उठती है ऐसा मैंने सुना है यदि जल समीरण से भारी हो तो किस रूप में वह ऊपर उड़ता है ?

गुरुः—एतद्विवेचनं तवातियोग्यं। पूर्वं मयोक्तं स्थिरवायुतोपि जलं गुरुतरांतथापि तस्यैतादृग्गुणोऽस्ति यद्वाष्पयुतोजलं लघु भवि-

तुमर्हति । तस्माद्रूद्ध्वें समुत्तिष्ठते । त्वया किं पाकसमये नावलोकितं कतिजलानि वाष्पानि भूत्वा ऊद्ध्वें समुत्तिष्ठन्ते इति अतएवैतत् साधारण दृष्टान्तेन त्वया बोद्धव्यं यथा वियति जलमुत्तिष्ठते विज्ञतमैरेवमुच्यते विन्दुमात्र जलं तापेन दशगुणं भवितुमर्हतीति त्वयैतदवलोकितं किन्तु दृष्टवतोऽपि ते वोधो नाऽभवत् । पश्य बालकैरेरण्डक्षीरं केणयित्वा तृणादीनां वर्त्तु लाकारं यन्त्र निर्माय तत् सम्पर्कवशात् फुत्कारेणोद्ध्वें विम्वाकारैरुत्क्षिप्यते केणश्चोद्ध्वें समुत्तिष्ठते यस्मात्तदा वायुतोपि स लघुर्भवति ।

गुरु—इसकी विवेचना तुम्हारे अति योग्य है । पहिले मैंने कहा था कि स्थिरवायु से भी जल भारी होता हैं तथापि उसका ऐसा गुण है कि वह (जल) वायु से लघु अर्थात् हल्का हो सकता है । इसी कारण वह ऊपर उड़ जाता है । क्या तुमने (भोजन) पकाते समय नहीं देखा कि कितना जल भाप बनकर ऊपर उड़ जाता है । इसलिये इसी साधारण दृष्टान्त से तुम्हें समझ लेना चाहिये कि जैसे ही आकाश में जल उड़ता है, विज्ञों ने ऐसा कहा है कि बिन्दु (बूँद) मात्र जल को ताप द्वारा दसगुणा कर लिया जाता है । तुमने यह (प्रक्रिया) देखी है, किन्तु देखते हुए भी तुम्हें इसका बोध नहीं । देखो, बालक एरण्ड के दुग्ध को फेन बनाकर तिनके आदि वर्तु लाकार यन्त्र का निर्माण करके उसके सम्पर्क से फूँक से ऊपर विम्ब के आकार में उड़ जाता है फेन भी ऊपर उठ जाता है जैसे वैसे ही वायु से भी वह लघु (हल्का) हो जाता है ।

शिष्यः—समुद्राद्रूद्ध्वें यद्वाष्पमुत्तिष्ठते तत् कारणं किं ?

शिष्य—समुद्र से जो भाप ऊपर उठती है उसका क्या कारण है ?

गुरुः—मार्त्त ण्डीय प्रचण्डतरतापैरुत्तप्त जले तस्माद्वाष्पमुत्तिष्ठते ।

गुरु—सूर्य की भीषण गर्मी से जलके सन्तप्त होने पर भाप उठती है।

शिष्यः—यदि समुद्राद्वाष्पमुत्थाय मेघो जायते तस्माच्च मेघात् वृष्टिः भवति तदा तद्दृष्टेर्जलं कथं लवणमयं न स्यात् ?

शिष्य—यदि समुद्र से भाप उड़कर मेघ बन जाता है उस मेघ से वर्षा होती है, तब उस वर्षा का जल क्यों नमक युक्त(खारी)नहीं होता?

गुरुः—समुद्रस्य लवणीय जलीय परमाणुरति लघुरेतस्मादेव चण्डभानु प्रचण्डतरतापेन जलीयलघुपरमाणुर्वाष्पं भूत्वोर्द्ध्वं व्रजति।

गुरु—समुद्र के लवणयुक्त जल के परमाणुओं में जल के परमाणु अति हल्के होते हैं। इसी कारण प्रचण्ड सूर्य की प्रचण्ड गर्मी से जल के छोटे (हल्के) अणु भाप बनकर ऊपर जाते हैं।

शिष्यः—जलमध्ये यद्गुरु द्रव्यं निमज्जति लघुद्रव्यश्चोपरि तरति तत् कारणं किं ?

शिष्य—जल में जो भारी वस्तु है वह डूब जाती है और हल्की वस्तु ऊपर तैरती है उसका क्या कारण है ?

गुरुः—अत्रैतत् कारणं द्रव्यं द्रव्याधार जलञ्चेत्युभयं परिमाय यदि जलाद्द्रव्यं गुरुभवति तदा तस्मिन्जले तद्द्रव्यं निमज्जति यदि च द्रव्याद्द्रव्याधार जलमधिकं भवति तदा तद्द्रव्यं तस्मिन्जलेतरति ! यदि तदुभयं परिमाणतः समं भवति तदा तत्र तद्द्रव्यं न निमज्जति न च तरति किन्तु मध्य एवाऽवतिष्ठते।

गुरु—इसका कारण है, द्रव्य को और द्रव्य के आधार जल को इन दोनों को मापकर यदि जल से द्रव्य (वस्तु, पदार्थ) भारी होता है, तब उस जल में वह वस्तु डूब जाती है और यदि वस्तु से वस्तु का आधार जल अधिक होता है तो वह वस्तु उस जल में तैरती है। यदि

वे दोनों अर्थात् वस्तु एवं जल परिमाण (भार में) में समान होता है, तब वहाँ वह वस्तु न तो डूबती है और न तैरती है प्रत्युत् बीच में ही रहती है।

शिष्यः—हे महाशय ! मामनुग्रहं विधाय त्वं कथय किमग्नि विषये श्रीमन्जानासि ?

शिष्य—हे महोदय ! मुझ पर कृपा करके आप बतलाइये कि क्या आप अग्नि के विषय में भी जानते हैं ?

गुरुः—वायुर्जलञ्च यथा लोकानामावश्यकं महोपकारकञ्चाऽस्ति तद्वदग्निः तया वेदितव्यः।

गुरु—वायु और जल जैसे लोकों के लिये (पक्षान्तर में मनुष्यों के लिये) महान् उपकारी एवं परमाश्यक हैं वैसे ही अग्नि जाननी चाहिये।

शिष्यः—अग्निः केनरूपेणलभ्यो भवति ?

शिष्य—अग्नि किस रूप में प्राप्त होती है ?

गुरुः—आवश्यकतया प्रायः सर्वेषु वस्तुषु वह्निर्विद्यते। यदा तिरोभावेन तिष्ठति तदाऽसौ गुप्ततापः प्रोच्यते यदा बाह्ये प्रकाशितः स्यात्तदा वह्नि रूपेण सर्वत्र व्याप्नोति। परन्तु समीरणतोऽपि वह्निर्लघुरित्यस्मादेव हुताशनीया-शिखा सत्वरमेवोर्द्ध उत्तिष्ठत इति दृश्यते। पश्य च सर्वे कठिनीभूता धातवो द्रवतां यान्ति। जलञ्च वाष्पाकीरेण परिणमति खाद्यञ्च पक्वतां व्रजति। शीते च गृहस्थापित वह्ने रुष्णतया महानुपकारो जायते। यदि वह्निर्नाऽभवत् तदा रात्रौ ज्वलित दीपादिर्नाऽभवत् एवमालोक उष्णता च नाऽभवदिति।

गुरु—आवश्यकतया प्रायः सभी वस्तुओं में अग्नि विद्यमान हैं। जब तिरोहित (छिपकर) होकर रहती है, तब यह 'गुप्तताप' कहलाती

है, जब बाहर प्रकाशित होती है, तब वह्निरूप में सर्वत्र व्याप्त होती है । परन्तु वायु से भी वह्नि हल्की है, इसी कारण हुताशनीय शिखा (अग्नि की लौ) शीघ्र ही ऊपर उठती दिखाई देती है । और देखो, सभी कठोर भूत धातुएँ द्रवता (तरलता) को प्राप्त हो जाती हैं । जल भाप में वदल जाता है, खाद्यान्न पक जाता है । जाड़ों में घर में स्थित अग्नि की उष्णता से परम उपकार होता है । यदि अग्नि व होती तो रात्रि में जलते हुए दीपक न होते इसी प्रकार प्रकाश एवं गर्मी न होती ।

अथ पंचम कथोपकथनम्

(मनुष्य विषयकं)

शिष्यो वदति--अस्मिन्जगति परमेश्वरीय सृष्टौ प्रधानतया कः सृष्टः ?

शिष्य कहता है--इस संसार में परमेश्वरीय सृष्ट वस्तुओं में प्रधानतः कौनसी वस्तु बनायी गई है ?

गुरुर्वदति—सृष्टेषु मध्ये प्रधानोहि सृष्टो मनुष्य मनुष्याणां विशेषज्ञानशालितया क्षौणीतले तान् सर्वाध्यक्षान् विधाय परमेश्वरोऽयं स्थापितवान् । मनुष्यास्तु मुखसौन्दर्येण वाक्कौशलेनाऽवस्थान सौष्ठवेन च तथा प्रज्ञाशीलेनात्मना च सर्व प्राणिभ्यः श्रेष्ठा अभवन् । परमानुग्रहं विधाय परमेश्वरोऽयमपर प्राणिभ्यो मनुष्यानधिकं शिक्षयामास । एवं गगनचारिभ्यः पक्षिभ्योऽपि तान् ज्ञानवतः कृतवान् ।

गुरुदेव बतलाते हैं—रचे गये प्राणियों के मध्य में प्रधानतः मनुष्य बनाया गया है । मनुष्यों की विशिष्ट ज्ञानशालीनता के कारण पृथ्वी तल पर उन्हें सभी का अध्यक्ष बनाकर परमेश्वर ने स्थापित किया । मनुष्य तो मुख के सौन्दर्य से, वाणी की कुशलता से, अवस्थान की सौष्ठवता से और अपनी बुद्धिशीलता से सभी प्राणियों से श्रेष्ठ हुआ । अति कृपा करके परमेश्वर ने दूसरे प्राणियों से मनुष्य को अधिक शिक्षित किया । इसी प्रकार गगनचारी पक्षियों से उन्हें ज्ञानवान् बनाया ।

शिष्यः—हे महाशय ! परमानुग्रहं विधाय किं मानव शरीर विषयान् मां शिक्षयिष्यसि ?

शिष्य—हे महामना ! आप परम अनुग्रह करके क्या मुझे मानव शरीर के विषय में वतलायेंगे ?

गुरुः—मानवशरीरे प्रधानमङ्गं मुखं तस्मिन् परमेश्वरस्य परमाश्चर्य कौशलं प्रकाशते। पश्य, प्रत्येक मानवसुखे ईदृक् प्रभेदः स्थापितः यदनायासेन तेन ज्ञातुं शक्यते सर्वैः। यद्यपीदृग्विशेषो न कृतः स्यात्तदा सज्जना अपि वहुधा दुर्जनदण्डभागिनोऽभवन् ।

गुरु—मानव शरीर में प्रधान अङ्ग मुख हैं, उसमें परमेश्वर का परम आश्चर्यजनक कौशल दिखाई देता है। देखो, प्रत्येक मनुष्य के मुख में इस प्रकार भेद स्थापित किया है कि जिससे अनायास ही सभी जान सकते हैं। यदि इस प्रकार की विशेषता न की होती तो प्रायः सज्जन भी दुर्जनों के दण्ड के भागी वनते ।

शिष्यः—मन्मनसि पुरैषा कथा नासीत् किन्तु सम्प्रति मामनुग्रहं विधाय कथय मनुष्यस्य सर्वाऽवयवापेक्षया कथं मस्तकमति कठिनं भवतीति।

शिष्य—मेरे मन में पहले यह बात नहीं थी, किन्तु अब मुझ पर अनुग्रह करके वतलाइये कि मनुष्य के सभी अवयवों की अपेक्षा मस्तक अति कठोर क्यों होता है ?

गुरुः—मस्तकाऽभ्यन्तरे मज्जातिकोमलं वस्तु यस्मिन्नवस्थितं ज्ञानं प्रतिभाति। येन तद्धानिर्नभवतीत्यस्मादेव कपालांशमति कठोरं कृतवान्।

गुरु—मस्तक के अन्दर मज्जा से भी कोमल वस्तु जिसमें ज्ञान प्रतिभासित होता है, जिससे उसकी हानि न हो, इसी कारण से कपाल (खोपड़ी, मस्तक) का भाग अति कठोर बनाया।

शिष्यः—मस्तकस्थाः केशाः किमहो शोभार्थं केवलमभवन् ?

शिष्य—मस्तक पर केश क्या शोभाके लिये ही केवल बनाये गये हैं।

गुरुः—न केवलं ते शोभार्थं परन्तु मस्तकमुष्णं विधाय रक्षन्ति च एवं स्वगतरन्ध्रेणापि स्वेदं निर्गमयन्ति एवं कपाल भागमाघाताद् रक्षन्ति च।

गुरु—न केवल वे शोभा के निमित्त हैं, किन्तु मस्तक को गर्म रख कर रक्षा करते हैं और अपने छिद्रों से भी स्वेद (पसीना) निकालते हैं, इसी प्रकार कपाल भाग की आघात (चोट) से भी रक्षा करते हैं।

शिष्यः—प्रत्येक केशाभ्यन्तरे किं छिद्रमस्ति ?

शिष्य—क्या प्रत्येक केश के भीतर छिद्र है ?

गुरुः—आमतिसूक्ष्मं छिद्रमस्ति तच्चलघुना दूरदर्शन यन्त्रेण दृष्टं भवति।

गुरु—हाँ अति सूक्ष्म छिद्र है और वह लघु होने के कारण दूरदर्शन यन्त्र से दिखाई देते हैं।

शिष्यः—हे महाशय ! चक्षुर्विषये त्वया किमुच्यते ?

शिष्य—हे महोदय ! आँखों (नेत्रों) के विषय में आपका क्या विचार है ?

गुरुः—सर्वाङ्गतोऽप्यति कौशलेन परमेश्वरेण चक्षुर्निर्मितमभूत् किन्तु तन्मध्ये कीदृक् निर्माणं तच्चावच्छेदविद्भिरेवोक्तं अतस्तदनभिधायमयैतदुच्यते। तथाहि चक्षुः स्वस्थाने स्थित्वापि

गमनशीलमस्ति इत्यस्मादेवाऽस्माभिः मस्तकावर्त्तनमन्तरेणदिक् त्रयमीक्षितुं शक्यते । ईदृगुत्तमस्थाने चक्षुः स्थापितमभूत् येन प्रकर्षेण तद्रक्षा भवति यदाऽधिका दीप्तिः स्वस्मिंल्लगति तदा स्वीय तारकां स्वयं संकोचयितुं शक्नोति येन च तद्धानयेऽधिका दीप्तिर्न प्रवेष्टुं शक्नोति यदाचाल्पा दीप्तिर्लगति तदा तां विस्तारयितुं शक्नोति यस्मादुपयुक्तां दीप्तिं गृह्णाति ।

गुरु—सभी अङ्गों से भी अति कुशलता से परमेश्वर ने चक्षुओं का निर्माण किया, किन्तु उसके मध्य में कैसी वनावट है यह काटने वालों ने कही है । अतः उसे न बतलाकर मैं यह कहता हूँ—चक्षु अपने स्थान पर स्थित होकर भी गमनशील है । हम विना मस्तक घुमाये तीनों दिशाओं को देख सकते हैं । इतने अच्छे स्थान पर उसकी रचना है, जिससे उसकी रक्षा स्वतः अच्छी भांति हो जाती है, जव प्रकाश सामने अधिक आता है तो अपनी तारा को चक्षु स्वयं मींच लेती है, जिससे तारा की हानि को अधिक तेज प्रकाश प्रवेश न कर सके । कम प्रकाश में वह ताराको विस्तृत भी करताहै जिससे उचित प्रकाश लिया जासके।

शिष्यः—नयनस्य पक्ष्मणा किं प्रयोजनमस्ति ?

शिष्य—नेत्रों के रोम (पलकों में जो छोटे बाल अथवा रोम हैं) का क्या प्रयोजन है ?

गुरुः—प्रचण्डतर किरणयोर्नयनं रक्षति एवं क्षुद्रतर कीटपतनं निवारयति ।

गुरु—भीषण किरण से (गर्मी से) नेत्रों की संरक्षण एवं क्षुद्रतर कीटपतन को (कीटाणुओं का गिरना) निवारण करते हैं ।

शिष्यः—अक्षिपुटेन किं प्रयोजनम् ?

शिष्य—पलकों का क्या प्रयोजन है ?

गुरुः—अक्षिपुटन्तु नयनस्यावरण विशेषः। तथाहि तिरस्करिणीवत् दिनागमे वयमुत्तोलयितुं तत् शक्नुमः। निशागमे तु तदुभयं समावृत्य निर्विघ्नेन निद्रां भजामश्चेत्यनेनोन्मीलन निमीलने प्रभवत इति।

गुरु—पलक तो नयन के आवरण विशेष हैं। परदे की भाँति हम उसे दिन में उठाते हैं। रात्रि में दोनों पलकों को गिराकर निर्विघ्न निद्रा प्राप्त करते हैं। इस प्रकार बन्द करना--खोलना उनसे किया जाता है।

शिष्यः—भ्रुवा किं प्रयोजनमस्ति ?

शिष्य—भ्रू (भृकुटि) का क्या प्रयोजन है अर्थात् किस निमित्त बनाई गई हैं ?

गुरुः—सा च धूलितो घर्म्मोदकतोपि नयनं रक्षति यतोहि धूलिः स्वेदोदकम्वा नयने प्रविश्य चक्षुषो यन्त्रणां दृष्टिव्याघातञ्च विदधाति एवं प्रकारेण तस्य फलद्वयं सम्भवति। एकदा नयनं संरक्षति अन्यदा च तस्य नैर्म्मल्यं करोति च।

गुरु—वह धूल एवं धूप से भी नेत्रों की रक्षा करती है, क्योंकि धूलि और पसीने का जल नेत्रों में प्रवेश करके नेत्रों को तकलीफ अथवा देखने में व्याघात उत्पन्न करता है। इस प्रकार उसके दो फल हैं—एक तो नेत्रों की रक्षा करती हैं दूसरे उसको निर्मल करती हैं।

शिष्यः—चक्षुषो जलं केनोत्पद्यते ?

शिष्य—नेत्रों में जल कैसे उत्पन्न होता है ?

गुरुः—चक्षुषः कोमलत्व निर्मलत्व विधानमुचितमित्यस्मात् तद्ग्रन्थिना चक्षुषि सर्वदा जलसञ्चयो भवति। यज्जलं चक्षुषो नोपयोगितज्जलं नासिकास्थिगतच्छिद्रेण नासिकायां प्रविशति

प्रविश्य च तत्र विस्तृतं भवति अनन्तरं निश्वासप्रश्वास तापेन शुष्कं भवति।

गुरु—नेत्रों का कोमलत्व एवं निर्मलत्व सर्वथा उचित ही है इसीलिये उसकी ग्रन्थि से नेत्रों में सर्वदा जल का संग्रह होता है। जो जल नेत्रों के लिये लाभकारी नहीं (होता) वह जल नाक के छिद्र से नाक में प्रवेश करता है और प्रवेश करके वहाँ अधिक हो जाता है, पश्चात् निश्वास प्रश्वास (श्वसन क्रिया से) की गर्मी से सूख जाता है।

शिष्यः—ईदृगाश्चर्यरूपेण किं कर्णावपि निर्मितावास्तां ?

शिष्य—क्या इसी प्रकार आश्चर्यमय दोनों कानों का निर्माण किया ?

गुरुः—तन्निर्माणमत्याश्चर्य्यमितिसत्यं किन्तु वयोवाहुल्ये न भवता सम्यग्वेदितव्यं सम्प्रति मया यदुच्यते तज्ज्ञानेन ते प्रयोजनमस्ति। तथाहि केवलं चर्मणैव कर्णौ विनिर्मितौ तथापि तौचेदृक् कठिनौयत् स्वस्थाने दण्डायमानौ शब्दग्रहं कुरुतः। एवं तदीय रन्ध्रेण मस्तकाऽभ्यन्तरे शब्दः प्रविशति।

गुरु—उनका निर्माण अति आश्चर्यमय है यह सत्य है, किन्तु अवस्थाधिक्य मे आप इसे ठीक समझ सकते हैं—इस समय मैं जो कह रहा हूं उसे समझने से प्रयोजन है। केवल चमड़े से ही कानों का निर्माण हुआ है तथापि वे दोनों इतने कठोर हैं कि अपने स्थान पर खड़े हुए ही शब्दों को ग्रहण करते हैं। इसी प्रकार उनके छिद्रों से मस्तक के अन्दर शब्द प्रवेश कर जाता है।

शिष्यः—परस्परं कथोपकथन—कालेऽस्माभिः केनरूपेण तं बोद्धुं शक्यते ?

शिष्य—परस्पर वार्तालाप के समय हमारे द्वारा किस प्रकार से उसे समझा जा सकता है ?

गुरुः—अस्मान् सर्वाः कथास्तूर्ण बोधयितुं परमेश्वरेणानुग्रहं विधायेदृशी शब्दीय क्षिप्रगतिर्विहिता ध्वनिकृदाग्नेय शस्त्रस्य अर्थात् वन्दुकइति लोकप्रसिद्धस्य वर्त्तुलापेक्षया शब्दो हि द्वैगुण्येन शीघ्रं चलति।

गुरु—हमको सभी वार्ता को चुपचाप समझने के लिये परमेश्वर ने कृपा करके ऐसी शब्द की तीव्रगति बनाई ध्वनि करने वाले अग्निमय शस्त्र की अर्थात् बन्दूक नाम से संसार में प्रसिद्ध वर्तुल की अपेक्षा शब्द दुगुनी गति से चलता है।

शिष्यः—एतत परमाश्चर्यं परन्तु भवता पूर्वमाघ्राण विषयकं किमपिनोक्तं अतः सम्प्रति तज्ज्ञातुमहमिच्छामि।

शिष्य—ये परम आश्चर्य है किन्तु आपने पहिले घ्राण के विषय में कुछ भी नहीं कहा, अतः अब उसे जानना चाहता हूं।

गुरुः—प्रज्ञावान् सृष्टाऽस्माकं हितार्थं वदनस्योपरि भागे घ्राणेन्द्रियं स्थापितवान् येन च वयं भोजनात् प्रागेव द्रव्याणामुत्तमाधम भावं गन्धेन बोद्धुं शक्या स्मः। नासारन्ध्रम स्माकं किमाश्चर्य कौशलेन निर्मितमभूत् यतोहि तदधोभागः प्रशस्तः सन् गन्ध ग्रहण योग्योऽभूत। एवं शिरोऽवस्थितश्लेष्मजातं तच्छिद्रवर्त्तनानिर्गच्छति च। एवं भोजनकाले यदा मुखतो वायुं निर्गमयितुं न शक्यते तदाऽनेनच्छिद्रेण निश्वास प्रश्वासाकारेण वायुर्निःसरति।

गुरु—बुद्धिमान् निर्माणकर्ता (परमेश्वर) ने हमारे हितार्थ मुख के ऊपरी भाग में नासिका को स्थापित किया, जिससे हम भोजन के पूर्व ही द्रव्यों की (खाद्यान्नों की) उत्तमता एवं अनुत्तमता को गन्ध द्वारा (सूघने की प्रक्रिया से) जानने में सक्षम हो जाते हैं। नासिका के छिद्र वस्तुतः कितने आश्चर्यमय कौशल (चातुर्य्य) से बनाये गये हैं, क्योंकि

उसके निचले हिस्से प्रशस्त हुए (मुक्त रूप से) गन्ध ग्रहण करने हुए। इसी प्रकार मस्तक में अवस्थित लेशमात्र जो उत्पन्न हो जाये वह उसके छिद्रों के मार्ग से निकल जाता है। इसी प्रकार भोजन के समय जब मुख से वायु निकल नहीं सकती, तब इन्हीं छिद्रों से निश्वास के रूप में वायु निकल जाती है।

शिष्य:—आस्वाद ग्रहस्पर्श विषये भवान् किमुच्यते ?

शिष्य—स्वाद ग्रहण; स्पर्श के विषय में आपका क्या विचार है ?

गुरु:—आस्वाद ग्रहेणाऽस्माभि: खाद्यवस्तुनो ह्युत्तमाधमतां निर्णेतुं शक्यते तेनाऽस्माकं सुखमुपजायते। अपरेषामिन्द्रियाणां स्थानं मस्तकं परन्तु स्पर्शेन्द्रियं सर्वाङ्ग व्यापीति।

गुरु—आस्वाद ग्रहण से हमें खाद्य पदार्थों की उत्तमता अथवा अधमता का निर्णय हो सकता है, उससे हमको सुख की अनुभूति होती है। दूसरी इन सभी इन्द्रियों का स्थान मस्तक है, किन्तु स्पर्शेन्द्रिय सर्वाङ्ग व्यापिनी है।

शिष्य:—इन्द्रियाणां मुख्या शक्ति: कुत्र तिष्ठति ?

शिष्य—इन्द्रियों की मुख्य शक्ति कहाँ रहती है ?

गुरु:—यस्य तत् सततं प्रयोजनार्ह स्थानं तत्रैव सा तिष्ठति। पश्य जिह्वाग्रभागे आस्वादन शक्तिरंगुल्यग्रे चाधिका स्पर्शशक्तिर्विद्यते अनेन च सर्वेन्द्रियाणां विशेषस्थानं वेदितव्यं अस्माकं रक्षार्थं परमेश्वरेण सर्वाणीन्द्रियाणि दत्तानि यदि कस्यचिदिन्द्रियस्य हानिर्जायते तदाऽपरेन्द्रियस्य शक्तिर्वृद्धिर्भवति एतत् प्रमाणऽमन्धानां विषये त्वया वेदितव्यं यतस्तेषां श्रवण स्पर्शन शक्तिरधिका भवति।

गुरु—जिसका जो निरन्तर प्रयोजन योग्य स्थान है वह वहीं रहता

है। देखो, जिह्वा के अग्रभाग में आस्वादन शक्ति और अँगुली के अग्रभाग में अधिक स्पर्श शक्ति रहती है और सभी इन्द्रियों के इसी प्रकार स्थान विशेष जानने चाहिये। हमारी रक्षार्थ परमेश्वर ने सभी इन्द्रियां (हमें) प्रदान की है यदि किसी इन्द्रिय की हानि हो जाये अर्थात् यदि कोई इन्द्रिय नष्ट हो जाये तो दूसरी इन्द्रिय की शक्ति की वृद्धि हो जाती है। इसके प्रमाण स्वरूप अन्धे व्यक्तियों के सम्बन्ध में तुम्हें जान लेना चाहिये कि उनकी श्रवण (सुनने की) एवं स्पर्शेन्द्रिय शक्ति अधिक होती है।

शिष्यः—मस्तक विषयेऽन्यत् किमपि वक्तव्यमस्ति ?

शिष्य—मस्तक के विषय से अन्य कुछ भी कहने योग्य है ?

गुरुः—पश्य जिह्वा हि वाग्विषये परमाश्चर्येन्द्रियं यतस्तस्मादिन्द्रियदस्माकं महत् सुखमुपजायते यतोहि खाद्यवस्तु चर्वणार्थं मुक्तवस्तु परिपाकार्थश्च मुखजरसवितरणे खाद्यवस्तु गलाधोनयने च जिह्वा महोपकारिणी भवति। न चेत् जिह्वा वचनरचना सङ्गीतोक्त रागरागिण्यादिकश्च न स्यादिति।

गुरु—देखो, जिह्वा वाणी के विषय में परम आश्चर्यवान् इन्द्रिय है क्योंकि उस इन्द्रिय से हमें महान् सुख प्राप्त होता है, क्योंकि जैसे कि—खाद्य पदार्थ के चर्वण के लिये, खाई हुई वस्तु के परिपाक के लिये मुख में उत्पन्न रस (लाड़) के वितरण में, खाद्य वस्तु को गले से नीचे ले जाने में जिह्वा महत्वपूर्ण उपकारी करने वाली होती है, यदि जिह्वा न होती तो वाक् रचना सङ्गीत में कही गई राग-रागिनी आदि न होतीं।

शिष्यः—दन्तानां प्रयोजनमहं जानामि। एतस्मादेव कारणान्नतत् पृच्छामि परन्तु प्रत्यहं भोजनकाले चर्वणतः कथं दन्ता न क्षीयन्ते।?

शिष्य—दांतों का प्रयोजन मैं जानता हूं इसीलिये उसका कारण

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नहीं पूछता हूं, परन्तु प्रतिदिन भोजन के समय में चर्वण करते हुए क्या दांत क्षीण (नष्ट होना, घिसना) नहीं होते ?

गुरुः—दन्तीय सम्मुख भागस्तु महाकठिनः। यावत् कालं कठिनांशस्तिष्ठति तावत् शनैः क्षीयन्ते किन्तु क्रमशस्तत् समग्रे क्षीणे सति दन्तानां वेदना जायते सत्वरञ्च ते प्रणश्यन्ति च दन्तास्तु केवलं चर्वणार्थं न अपितु वाक्य प्रयोगे च परमोपयोगिनो भवन्ति। अतएव येषां वहवो दन्ताः प्रणष्टास्तेषां हि वाक्यं नहि सुस्पष्टं भवति। एवमोष्ठाधरावपि वाक्यप्रयोगे परमोपकारकौ स्यातां एतस्मादेव कतिचिदक्षराणि विद्वद्भिरोष्ठ्यानि प्रोच्यन्ते।

गुरु—दांतों का सामने का भाग तो बहुत कठोर होता है। जब तक कठोर अंश बना रहता है, तब तक धीरे-धीरे क्षीण होता हैं, किन्तु क्रमशः उस (कठोर भाग) समग्र भाग के क्षीण (नष्ट) हो जाने पर दांतों को वेदना होती है और वे शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। दांत तो केवल चर्वण हेतु ही नहीं होते प्रत्युत् वाक्य प्रयोग में परम उपयोगी होते हैं। अतएव जिनके बहुत से दांत नष्ट हो जाते हैं निश्चय ही उनके (द्वारा प्रयुक्त) वाक्य सुस्पष्ट नहीं होते। इसी प्रकार ओष्ठ एवं अधरों का भी वाक्य प्रयोग में परम उपयोग है यही कारण है कि कुछ अक्षरों को विद्वान् ओष्ठ से बोलने वाले कहते हैं।

शिष्यः—गुरो ! गलविषये किञ्चित् कथयिष्यसि ?

शिष्य—गुरुदेव ! गले के विषय में कुछ कहेंगे ?

गुरुः—गलमध्ये छिद्रमेकमस्ति तस्मिन् नल्याकारतया नलीति प्रसिद्धाङ्गं विद्यते ययाऽस्माभिर्निश्वास प्रश्वासादिकं त्यज्यते। एवं नल्याः पश्चाद्भागेप्येकं छिद्रमस्ति येन च वस्तुउदरं प्रविशति।

गुरु—गले के मध्य में एक छिद्र है उसमें नली आकार होने के कारण 'नली' इस नाम से प्रसिद्ध अङ्ग है जिसके द्वारा हम निश्वास प्रश्वास छोड़ते हैं, अर्थात् श्वसन प्रक्रिया करते हैं। इसी प्रकार नली के पिछले भाग में भी एक छेद है, जिससे वस्तु (भोज्य पदार्थ) उदर में प्रवेश करती है।

शिष्य:—खाद्यं वस्तु किं नल्युपरिभागे न याति यदि च याति तर्हि किं नाशङ्का जायते मध्येवेदं पतेदिति ?

शिष्य—खाई हुई वस्तु क्या नली के ऊपरी भाग में नहीं जाती जाती है तो क्या यह आशङ्का उत्पन्न नहीं होती कि यह बीच में ही गिर जायेगी ।?

गुरु:—यत्तवैतादृग्बोधो भवति तत्राहं नाश्चर्य्यं मन्ये यस्माद्धि सर्वेषामेवेदृग्बोधो भवितुमर्हति परन्तु तत्रैकः प्रतिबन्धो वर्त्तते यतो जिह्वामूल एकश्चर्म विशेषो विद्यते यदाऽस्माभिः खाद्यं वस्तु गिल्यते तदा नल्या उपरि तत् चर्म विस्तृतं भवति । यथा सेतुना समुत्तरन्ति लोकास्तथैव खाद्यं वस्तु तेनैव चर्मविशेषेणोदरस्थं भवति ।

गुरु—जब तुम्हें इतना बोध हो रहा है तो इसमें आश्चर्य नहीं कि सभी को इसी प्रकार बोध हो सकता है, परन्तु वहाँ एक प्रतिबन्ध है, क्योंकि जिह्वा मूल एक चर्म विशेष होता है, जब हम खाद्य पदार्थ निगलते हैं, तब नली के ऊपर वह चर्म विस्तृत हो जाता है। जैसे पुल द्वारा लोग पार हो जाते हैं वैसे ही खाद्य पदार्थ उसी चर्म विशेष से उदरस्थ हो जाता है।

शिष्य:—भोजन काले कदाचित् खाद्यवस्तु कणिका यदस्माकं गलाऽभ्यन्तरे प्रविश्याऽस्मान् पीड़यति तत् कारणं किं ?

शिष्य—भोजन के समय कभी-कभी खाद्य वस्तु के कण जो हमारे गले के भीतर प्रवेश करके हमें कष्ट देते हैं उसका कारण क्या है ?

गुरुः—यदि सा कणिका नलीमध्ये पतति तर्हि क्लेशकारिणी भवति यदा मुखाऽभ्यन्तरे ग्रासं कुर्वन् हास्यं कथोपकथनम्वा करोति यदा तथैव भवितुमर्हति नान्यदा तत् सततं भवतीति । गलनिर्माणे किमाश्चर्यं कौशलं नाना सन्धिस्थानं गले विद्यते येनाऽस्माभिः शरीरमचालयित्वा मूर्द्धानं परिवर्त्तयितुं शक्यते । एवं गलप्रदेशेऽप्यति कठिनमस्थि विद्यते येन च मूर्द्धा दण्डायमानस्तिष्ठति । यद्येतादृक् नाऽभवत् तर्हि नृणां शोभासौन्दर्यं ह्रस्वतां गच्छेताम् ।

गुरु—यदि वह कणिका नली के बीच में गिरती है, तब क्लेशदायी होती है, जब मुख के भीतर ग्रास डालते हुए हँसने से अथवा वार्तालाप करते हैं, तभी हो सकता है वह निरन्तर नहीं होता । गला बनाने में क्या आश्चर्यमयी कुशलता है नाना अर्थात् अनेक सन्धिस्थल गले में विद्यमान हैं जिससे शरीर को बिना चलाये हुए ही मूर्द्धा को हमारे द्वारा परिवर्त्तित किया जा सकता है, गले के भाग में भी अति कठोर हड्डी विद्यमान है जिससे मूर्द्धा (मस्तक) सीधा खड़ा है। यदि इस प्रकार का (मस्तक) न होता तो मनुष्यों की शोभा सौन्दर्य में कमी आ जाती ।

मस्तक गलयोर्विषयं कृत्स्नमुक्त्वा सम्प्रति शरीरस्थाऽपरभाग विषयं कथयामि तथाहि यथागृहाभ्यन्तरे स्तम्भास्तिष्ठन्ति तद्वत् शरीरमध्ये वृहदस्थि वर्त्तते । एवं रज्जुवत्तत्र मांसपेशी विस्तृताऽस्ति सा हि सर्वानाकृष्य चालयति । शरीरस्यारक्तवहा नाडी च स्वास्थ्यरूपा स्त्रोतस्वती जीवनात्मक जलोद्गारी गर्त्तश्चाऽभवन् ।

मस्तक और गले के विषय में कहकर अब शरीर के दूसरे भागों के विषय में कहता हूं। जैसे—घर के भीतर स्तम्भ (खम्भ) होते हैं वैसे ही शरीर के मध्य में बड़ी हड्डी है और रस्सी की भांति मांसपेशी फैली हुई है। वह सबको आकृष्ट करके चलाती है। शरीर के रक्त को धारण करने वाली नाड़ी स्वास्थ्य रूपिणी नदी अथवा जीवनदायक जलोद्गारी जलदायक गड्ढे की तरह हैं।

जलोद्गारी गर्त्तवत् कर्मयोग्यं यन्त्र विशेषवद्वाऽन्तःकरणमभ्यन्तरे वर्त्तते तस्मादेव रक्तप्रवहया नाड्या शरीराऽभ्यन्तरे रक्तं प्रविशति। पुनरपि रक्तवध्या नाड्या प्रत्यावृत्य रक्तं समागच्छति। एवमन्तःकरणस्य चाञ्चल्येन सर्वदा शोणितं प्रचलति वक्षःस्थले च फुस्फुसाख्यं विद्यते तस्य च द्वे कर्मणी विद्यते। आद्यन्तु निर्मलं वायुं गृह्णाति यतो रक्तं सुशीतलं निर्मलञ्च भवति।

जल प्रदायक गर्त्तवत् अथवा कर्मयोग्य यन्त्र विशेषवत् अन्तःकरण के भीतर विद्यमान है इसीलिये रक्त प्रवाहिनी नाड़ी से शरीर के अन्दर रक्त प्रवेश करता है। पुनः रक्तवाहिनी नाड़ी द्वारा लौटकर रक्त आ जाता हैं। इस प्रकार अन्तःकरण की चञ्चलता से सर्वदा (सदैव) रक्त चलता रहता है और वक्षस्थल पर फेफड़े विद्यमान हैं उसके दो कार्य हैं—प्रथम तो निर्मल वायु को ग्रहण करता है क्योंकि रक्त शीतल एवं निर्मल हो जाता है।

द्वितीयन्तु समीरण कर्मणि समाप्ते सति तस्मादसार वायुं परित्यजति शरीरमध्ये आमाशयरूपैका कर्मशाला विद्यते यस्यां हि शरीर स्वास्थ्यार्थं सर्वमावश्यकं वस्तु प्रस्तौति। शरीरमस्माकं वाटी स्वरूपं भवति। तद्रक्षकाश्च वाहुकरांगुल्यो भवन्ति जीवन रक्षार्थं ते सर्वमुचितं कुर्वन्ति। एतस्मादेवांगुल्यो

नानासन्धिभिः कठिन मांसपेशीभिश्च निर्मितत्वेन व्यापारविषयेऽधिक तत्पराः सन्ति ।

द्वितीय तो समीरण (वायु) कार्य के समाप्त होने पर (उसमें से) उस असार वायु को छोड देती है। शरीर में आमाशय रूप एक कार्यशाला (प्रयोगशाला) है जिसमें शरीर के स्वास्थ्य के लिये सभी आवश्यक वस्तुओं को प्रस्तुत कर देता है। शरीर हमारा वगीचा स्वरूप है उसकी रक्षक भुजाओं के हाथों की अँगुली हैं। जीवन की रक्षा के लिये वे सर्व उचित कर्म करती हैं। यही कारण है कि अँगुलियां विभिन्न (अनेक) सन्धियों से, कठोर माँस पेशियों से निर्मित होने के कारण व्यापार विषय में अधिक तत्पर रहती हैं।

शिष्यः—वामहस्तात् किं दक्षिण हस्ते मांसपेशी ह्यधिका किमहो काठिन्याधिक्यञ्च विद्यते ?

शिष्य—बाएँ हाथ की अपेक्षा दाहिने हाथ में क्या मांसपेशी अधिक और क्या कठोरता की अधिकता है ?

गुरुः—मैवं तर्हि तद्दक्षिण हस्तेन वयं कृत्स्नं कर्म कुर्मस्तत् केवलं अभ्यासवशादेवेति वेदितव्यं यतो बाल्यावधि दक्षिणेनैव हस्तेनाऽस्माभिः कर्माणि क्रियन्ते ।

गुरु—ऐसा नहीं है। दाहिने हाथ से जो हम कार्य करते है, वह केवल अभ्यास के योग से ही जानना चाहिये क्योंकि बाल्यकाल से ही दाहिने ही हाथ से हम कार्यों को करते हैं।

शिष्यः—एतद्विषयेऽपरं किञ्चित् कथयिष्यसि ?

शिष्य—इससे अतिरिक्त कुछ कहेंगे ?

गुरुः—अत्राऽपर एकविषयो विवेचनार्हो विद्यते तथाहि-नैत्यिक कर्माचरणे यथाऽस्माकं करसंक्षयो न भवेत् तदर्थं तदीयं

चर्म क्रमशः कठिनं स्थूलञ्चभवति परन्तु तादृक् काठिन्यं तस्य न भवति येन स्पर्श गुणस्याऽतिशय हानिर्भवति। एवं चरणद्वय विषये सर्वमेवं वेदितव्यं। पश्य वृद्धांगुष्ठमीदृशस्थाने स्थापितमस्ति येन चापरांगुल्यः शक्तियुक्ता भवन्ति। एवं साधुतया सर्वं धारयितुर्ममहन्ति एवञ्च ताभिः पञ्चभिरंगुलीभिर्लेखनं चित्रकर्म करणं यन्त्रादि वादनश्च निष्पन्नं भवति। एतद्व्यतिरिक्तं सर्वाऽवयव पूरणार्थं सर्वेष्वऽवयवेषु परमाश्चर्यतयासुनिर्मितमखण्डवस्तवदेकं सूक्ष्मं चर्म समावृत्तमास्ते तन्मध्ये चाऽसंख्यकाः क्षुद्रच्छिद्राकाश लोमकूपाः सन्ति।

गुरु—यहां दूसरा एक विषय विवेचन योग्य हैं। उदाहरणतः नित्य कर्म के करने में जिससे हमारे हाथों का नाश न हो उसके लिये उसकी चमड़ी क्रमशः कठिन (कठोर) और स्थूल होती है, परन्तु वैसी कठोरता उसकी नहीं होती जिससे स्पर्शगुण की अतिशय हानि होती है। इसी प्रकार दोनों चरणों (पैरों) के विषय में जानना चाहिये। देखो; वह अँगूठा ऐसे स्थान पर है जिससे अन्य अँगुलियाँ शक्तियुक्त होती हैं। इस प्रकार ठीक तरह से सब कुछ धारण करने में समर्थ हैं और उन पाँचों अँगुलियों से लिखने का कार्य; चित्र बनाना, (वाद्य) वाद्य यन्त्रादिकों का वादन कार्यादि सम्पन्न होते हैं। इनके अतिरिक्त सभी अवयवों की पूर्णता के लिये सभी अवयवों में परम आश्चर्यमय सुनिर्मित अखण्ड वस्तुतः एक सूक्ष्म चर्म (चमड़ी) समावृत्त अर्थात् ढकी हुई है। उसके मध्य में (त्वचा में) असंख्य छोटे-छोटे छिद्र के आकार के रोमकूप हैं।

शिष्यः—लोमकूपैः किं प्रयोजनमस्ति ?

शिष्य—रोमकूपों से क्या प्रयोजन (उद्देश्य की प्राप्ति) है ?

गुरुः—अस्माल्लोमकूपात् शरीरस्था दुष्ट स्वेदा वहिर्निगच्छन्ति। इमं स्वेदं धर्म्मं वदन्ति। अस्माकं शरीरस्वास्थ्यार्थं हाम्र्मा-

णां निःसरणं सर्वदैव करणीयं । यतोहि धर्म्म श्वेत् शरीरे बद्धस्तिष्ठति तर्हि मनुष्याणां ज्वरादि रोगा जायन्ते तैरपि बहूनां मृत्युर्भवति अतोऽस्माकं धर्म्म निःसारणार्थं कर्मासक्तत्वं परिष्कृतत्वञ्चोचितं भवति ।

गुरु—हमारे रोमकूपों से शरीर में स्थित (व्याप्त) पसीना बाहर निकलता है । इस स्वेद (पसीने) को धर्म्म कहते हैं । हमारे शरीर के स्वास्थ्य के लिये धर्मों का निर्गमन सदैव करना चाहिये क्योंकि धर्म्म स्वेद शरीर से चिपका रहता है, तब मनुष्यों को ज्वरादि रोग हो जाते हैं उसी से बहुत सों की मृत्यु हो जाती है । अतः हमें धर्म के निकालने हेतु (निरन्तर) कार्यरत रहना एवं (स्वच्छता) सफाई रखना उचित है ।

शिष्यः—अस्माकं शरीरतो यः सर्वदा स्वेदो निःसरति स केन वेदितव्यः स्यात् ?

शिष्य—हमारे शरीर से जो सदैव स्वेद निकलता है वह किस प्रकार जाना जा सकता है ।

गुरुः—तस्य च बहूनि प्रमाणानि प्राप्यन्ते तानि चात्मन्येव त्वया साक्षाद्द्रष्टुं शक्यन्ते ।

गुरु—उसके बहुत से प्रमाण प्राप्त है उनसे तथा स्वयं तुम साक्षात् देख सकते हो ।

शिष्यः—यद्येवं भवति तदाऽतीव भद्रं ।

शिष्य—यदि ऐसा होता है तो अति कल्याण की बात है ।

गुरुः—यदि ग्रीष्मकाले निर्मलं किमपि स्वच्छञ्च धातुद्रव्यं स्वाङ्गे स्थापयसि तदा तत्प्रमाणं सुस्पष्टं एव प्राप्तुमर्हसि । एवञ्च यदि निर्मले विशुष्के महति च स्वच्छ काचपात्रे वस्त्र शून्यं करं किञ्चित् कालं स्थापयसि तदा तस्माद्यो धर्म्मो निःसरति

सहि तस्मिन् पात्रे वाष्पाकारेण निःसृतो दृष्टो भवति यदि च किञ्चिदधिक कालं तत्र हस्तयारोपयसि तदा जलरेखावद्दुक्ष्यसीति ।

गुरु—यदि ग्रीष्म समय में निर्मल किसी स्वच्छ धातु द्रव्य को अपने अङ्ग पर रखोगे, तब उसका प्रमाण सुस्पष्ट ही प्राप्त कर लोगे । इसी प्रकार यदि निर्मल, शुष्क और बड़े ही स्वच्छ काँच के बर्तन में वस्त्र अथवा सूने हाथ को कुछ समय पर्यन्त रखोगे, तब उसमें से जो धर्म्म निकलती है वह ही उस पात्र में भाप के आकार में निकलती दिखाई देती है और यदि कुछ अधिक समय तक वहाँ हाथ रखोगे तो जल की रेखा के समान देखोगे ।

(पंचम कथोपकथनीयो द्वितीयोभागः)

शिष्यो वदति—हे महाशय ! यद्यनुग्रहं विधायाऽन्तर्गतानामदृश्यानामङ्गानां विषयान् सुस्पष्टतया मां वेदयसि तदाऽहं परमाह्लादवान् भवामि।

शिष्य कहता है—हे महोदय ! यदि अनुग्रह करके आन्तरिक अदृश्य अङ्गों के विषय में सुस्पष्टतया मुझे बतायें तो मुझे परमखुशी होगी, अर्थात् मैं प्रसन्नता का अनुभव करूँगा।

गुरुर्वदति—अन्तर्गताङ्गमध्ये प्रधानमङ्गमामाशय स्थानं। यत्र च भुक्तं कृत्स्नं वस्तु परिपाकं गच्छति। स्वाभाविक परिपाकार्थं पित्तकोषादामाशय-कोष्ठे नित्यं पित्तरसः प्रविशति। द्वितीय कुक्षिनाड़ी चामाशयतः परिपाकं गत्वा यत्र च भुक्तं कृत्स्नं वस्तु प्रवेशयति प्रविष्टे भूनेऽनन्तरं यद्वस्तु कोमलं तदधोगच्छति यच्च रसमयं तत्तु शोषणाख्यायां नाड्यां पतित्वा शुष्यति एतस्याः शोषण नाट्या विशेषाख्या दुग्धवृन्नाड़ीति इयन्तु नाडी कुक्षि मध्ये परमाश्चर्यं रूपेण निर्मिताऽस्ति। कुक्षिनाड़िका च दैर्घ्येण प्रायः षष्टि हस्तमिता किन्तु वेष्टित भावनाल्पस्थाने तिष्ठति।

गुरुदेव बतलाते हैं—आन्तरिक अङ्गों में प्रधान अङ्ग आमाशय है, जहाँ खाये हुए खाद्य पदार्थ का परिपाक (पाचन क्रिया) होता है। स्वाभाविक पाचन क्रिया के लिये पित्तकोश से आमाशय कोष्ठ में प्रति दिन पित्तरस प्रवेश करता है। दूसरी कुक्षि नाड़ी (आंत) आमाशय से

पच जाने पर, जहाँ खाये हुए भोज्य पदार्थ को प्रवेश कराती है प्रविष्ट होने के बाद जो वस्तु कोमल होती है वह नीचे जाती है और जो रसमय वस्तु है वह तो शोषण नामक नाड़ी में गिरकर सूख जाती है। ये शोषण नाड़ी विशेषतः दुग्धघृत की नाड़ी है, ये नाड़ी कुक्षि के बीच में परम आश्चर्य के साथ बनी हुई है। कुक्षि नाड़ी (आँत) प्रायः नाप में ९ हाथ होगी, किन्तु मण्डलाकार में रहने के कारण थोड़े ही स्थान पर स्थित है।

शिष्यः—भुक्त द्रव्यतः केन रूपेण शरीरं रक्षितं भवति ?

शिष्य—भुक्त (खाये हुए) द्रव्य से किस प्रकार शरीर की रक्षा होती हैं ?

गुरुः—भुक्त द्रव्यतः स्निग्धरसो जायते यन्नामखल्वऽन्नरसः। सतु वक्षस्यया प्रणाल्या अन्तःकरणे प्रविश्य रक्ताकारेण परिणमति।

गुरु—खाये हुए भोज्य पदार्थ से एक कोमल रस बनता है जिसका नाम अन्नरस है वह वक्ष की प्रणाली (नली से) अन्तःकरण में प्रवेश करके रक्तरूप में परिवर्त्तित हो जाता है।

शिष्यः—एतत् केनरूपेण निष्पद्यते ?

शिष्य—ये किस रूप से उत्पन्न होता है ?

गुरुः—अन्तःकरणन्तु तमन्नरसं गृहीत्वा फुस्फुस् इति प्रसिद्धस्थाने प्रेरयति फुप्फुप तस्तावान् रसो रक्तं भवति। नलिकया फुप्फुप स्थाने यो वायुः प्रविशति स एवाऽजपाख्यया तल्लोहितं परिष्कृत्य पुनरप्यन्तःकरणं प्रेरयति अनेन च रक्तं समीचीनं भवति भूत्वा च शरीरं संरक्षति।

गुरु—अन्तःकरण तो उस रस को लेकर फेफड़ा इस प्रसिद्ध स्थान पर भेज देता है, फेफड़े में वह रस रक्त बन जाता है। नली से फेफड़े

में जो वायु प्रवेश करती है वह ही उस रक्त को साफ कर पुनः अन्तः करण (हृदय) में भेज देती है और इस प्रकार रक्त ठीक हो जाता है और बनकर शरीर का संरक्षण करता है।

शिष्यः—केनरूपेण रक्तस्यगतिर्भवति ?

शिष्य—किस रूप से रक्त की गति होती है ?

गुरुः—अस्मिन् विषयेजीवन रक्षाया महती सारकथा विद्यते। अन्तः करणस्येदृशी शक्तिरेकास्ति यया निजरन्ध्रं प्रकाशयितुं संरोद्धुञ्च शक्नोति एतयोः कर्मणोः क्रमेणान्तःकरणस्य विस्तारिता संकोचता च नाम्नी प्रोच्यते। अन्तःकरणस्यैतत् कर्मद्वयं यावन्निर्वहति तावद्वयं जीवामः। तदीय विस्तारतया चान्तःकरणे रक्तमानीतं भवति संकोचतया च रक्त प्रवहाख्यायां नाड्यां रक्तं प्रेरितं भवति किञ्च निद्रितस्य जागरितस्य वाऽभिनव शिशोरन्तःकरणे सार्द्ध दण्ड द्वयाभ्यन्तरे षट्सहस्त्रधा नाड़ीगतिर्भवतीति सद्भिरनुमितं तावत् काले च यूनां चतुः सहस्त्रवारान् तद्गतिर्भवति।

गुरु—इस विषय में जीवन रक्षा की बहुत बड़ी सार कथा है। अन्तःकरण की एक ऐसी शक्ति है जो अपने छिद्रों को प्रकट करने (विस्तार) और रोकने में (संकोच) सक्षम है। इन दोनों कार्यों को क्रमशः अन्तःकरण की विस्तारता और संकोचता नाम से कहते हैं। अन्तःकरण के इन दोनों कार्यों का जब तक निर्वाह होता है, तब तक हम जीवित रहते हैं। उसकी विस्तार की प्रक्रिया से अन्तःकरण में रक्त लाया जाता है और संकोच क्रिया से रक्त प्रवाहिनी नामक नाड़ी में रक्त को भेजा जाता है। और भी, सोये हुए अथवा जागे हुए अभिनव शिशु के अन्तःकरण में ढाई दण्ड में छः हजार (बार) नाड़ी की गति होती है सज्जन ऐसा अनुमान लगाते हैं कि उतने ही समय में युवकों की चार हजार बार की उसकी गति होती है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शिष्यः—रक्तस्य गति विषयमहं कृत्स्नं ज्ञातवान्नवेति तत्र मे सन्देहो वर्त्तते।

शिष्य—रक्त की गति के विषय को मैंने जान लिया है अथवा नहीं ये मुझे सन्देह है।

गुरुः—रक्तस्य गतिकथनेन रक्तस्य या या गतिः फुसफुप् स्थाने रक्त प्रवहायां नाड्यां रक्तवहायां नाड्यां च वर्त्तते तासां कृत्स्नं वेदितव्य भवति। एवं रक्तस्य यथोक्तागतिर्वक्तुं शक्यते च यतोहि शरीरमध्ये गतागतैः सततमेव रक्तं भ्रमति।

गुरु—रक्त की गति कथन से रक्त की जो-जो गति फेफड़े में रक्त प्रवाहिनी नाड़ी एवं रक्तवाहिनी नाड़ी में होती है, उसी को जानना चाहिये। इस प्रकार रक्त उपर्युक्त गति कह सकते हो। क्योंकि शरीर में जाते आते निरन्तर ही रक्त घूमता है।

शिष्यः—किं भवता नोक्तं यदन्नजरसादेव रक्तं जायत इति।

शिष्य—आपने यही बताया न कि जो अन्न से उत्पन्न रस है उसी से रक्त बनता है।

गुरुः—तस्माद्रक्तं भवतीति सत्यं परन्तु भुक्त द्रव्यं क्रमशो नाना विकारं गत्वा चरमे रसो भवति तस्मादेव रसान्नवीनं रक्तं जायते अनन्तरं वक्षः प्रणाल्यां तत् प्रविशति ततोपि रक्तवहायां नाड्यां गच्छति अनन्तरं पूर्वजं रक्तं यदा गच्छति तेन सार्द्ध-मन्तःकरणे तन्नवीन रक्तं प्रविशति अन्तःकरणादपि फुप्फुपे याति फुप्फुषितोपि पुनरन्तःकरणे समागच्छति।

गुरु—उससे रक्त बनता है यह सत्य है किन्तु खाये हुए द्रव्य को क्रमशः अनेक विकारों में बदलकर अन्त में रस बनता है, उसी से रस से नया रक्त बनता है पश्चात् वक्ष की प्रणाली में वह प्रवेश करता है।

वहाँ से भी रक्तवाहिनी नाड़ी में जाता है पश्चात् पहले बना रक्त अब जाता है, उसके साथ अन्त:करण में वह नवीन रक्त प्रवेश करता है। अन्त:करण से भी फेफड़े में जाता है, फेफड़ों से भी पुन: अन्त:करण में आता है।

शिष्य:—अनन्तरं किं भवति ?

शिष्य—तत्पश्चात् क्या होता है ?

गुरु:—यद्रक्तं फुप्फुष वर्त्मनाऽन्त:करणे प्रविष्टं सदन्त:करणत: सर्वाऽवयवं तद्व्याप्नोति सर्वाऽवयवीयाग्र भागे च रक्तवहाख्या नाड़ी वर्त्तते यया पुनरन्त:करणे तद्रक्तमायाति।

गुरु—जो रक्त फेफड़े के मार्ग से अन्त:करण में प्रविष्ट होते ही अन्त:करण के सभी अवयवों को वह व्याप्त कर लेता है। सभी अवयवों के अगले भाग में रक्तवहा नामक नाड़ी रहती है, जिससे रक्त पुन: अन्त:करण में आ जाता है।

शिष्य:—यावद्वारं शरीरे च रक्तं भ्रमति तावद्वारं रक्तवहाया नाड्या: फुप्फुषे तद्गच्छति तस्यावश्यकता किमस्ति ?

शिष्य—जितनी बार शरीर में रक्त घूमता है उतनी बार रक्तवहा नाड़ी फेफड़े में जाती है उसकी क्या आवश्यकता है ?

गुरु:—यस्य यस्य रक्तस्य कापि गुणहानिर्भवति तत्तद्रक्तं फुप्फुषस्थ वायुना शुद्धं कर्मयोग्यश्च भवति।

गुरु—जिस-जिस रक्त की कोई गुण हानि होती है, उस-उस रक्त को फेफड़े की वायु से शुद्ध और कर्मयोग्य बनती है।

शिष्य:—एतदाश्चर्यं मत्वाऽहं चमत्कृतो भवामि।

शिष्य—इस आश्चर्य को मानकर मैं आश्चर्यान्वित हो गया हूं।

गुरु:—अहो परमेश्वरस्य प्रशंसावादं कुरु योहि परमाश्चर्यं

रूपेणस्मान् समसृजत् । अत्रान्या वक्तव्य कथाऽस्ति यत्र ते मनोनिवेशस्यावश्यकताऽस्ति एवं यया ते महानाश्चर्य वोधो भविष्यति तां कथयामि अवधीयतां । सर्वाऽवयवेभ्यो यद्रक्तमन्तःकरणाऽभ्यन्तरे रक्तवहया नाड्या प्रविशति यदि तत्तनिकटीभूय तत्राऽप्रविश्य चाधोगतं भवति तदा वयं तत्क्षणादेव म्रियामहे किन्त्वेवं कदापि माभूत् परन्तु तत्रैकः प्रतिबन्धो विद्यते यतो रक्तवहायां नाड्यामेककवाटविशेषोऽस्ति येन च तद्रक्तमुपरिभागे गत्वाऽधोगन्तुं न शक्नोति ।

गुरु—परमेश्वर का गुणानुवाद करो जिसने परम आश्चर्य ढंग से हमको बनाया । यहाँ अन्य कहने योग्य बात रह गई जहाँ तुम्हारे मन के निवेश की आवश्यकता है और जिससे तुम्हें महान् आश्चर्य का बोध होगा उसे कहता हूं सुनो । सभी अवयवों से जो रक्त अन्तःकरण के भीतर रक्तवहा नाड़ी में प्रवेश करता है यदि वह समीप होकर उसमें प्रवेश न करके नीचे की ओर चला जाता है तो हम तत्क्षण ही मर जाएँ (मर जाते हैं) किन्तु ऐसा कभी न होगा, परन्तु वहाँ एक प्रतिबन्ध विद्यमान है कि रक्तवहा नाड़ी में एक कपाट विशेष है जिससे वह रक्त ऊपरी भाग में जाकर नीचे नहीं जा सकता ।

⁂

(अथपंचम कथोपकथनीयस्तृतीयभागः)

शिष्यो वदति—हे महाशय त्वया वाह्याऽभ्यन्तरीय शरीर विषयः कथितः सम्प्रति मामनुग्रहं विधाय भवान्नात्मविषयं किंचित् कथयिष्यसि ?

शिष्य कहता है—हे महाशय ! वाह्य एवं आन्तरिक शरीर विषयक वार्ता आपने बतलाई । इस समय मुझ पर अनुग्रह करके आप क्या आत्मा के विषय कुछ नहीं बतलायेंगे ?

गुरुर्वदति—श्रूयतां श्रेष्ठतया परमेश्वरेण च शरीरमपेक्ष्यात्मा परमोत्कृष्टः यतो हि तस्मै परमेश्वरो ज्ञानरूपगुणममरत्वञ्च दत्तवान् ।

गुरुदेव बतलाते हैं—सुनो श्रेष्ठता की दृष्टि से परमेश्वर ने शरीर की अपेक्षा आत्मा को परम उत्कृष्ट बनाया है, क्योंकि उसको (आत्मा को) परमेश्वर ने ज्ञानरूप गुण और प्रदान किया ।

शिष्यः—कस्तावज्ज्ञानरूप गुणः ।

शिष्य— तो ज्ञान रूप गुण क्या है ?

बोधो वितर्कोविवेचनमिच्छाच येनास्माकं भवति तदन्यत् स्मृतिरनुभवश्चेतिगुणद्वयं तस्मिन् विद्यते ।

गुरु—बोध (समझना) तर्क एवं विवेचन की इच्छा जिससे हमको होती है उसके अतिरिक्त स्मृति और अनुभव ये दो गुण उसमें विद्यमान हैं।

शिष्यः—आत्मनो रोगादिर्विद्यते न वा ?

शिष्य—आत्मा में रोग आदि हैं अथवा नहीं ?

गुरुः—विद्यते च यतोऽस्माकं तस्मादेवात्मन आनन्द प्रेमाऽभिलाष लोभ प्रत्याशाऽभिमानाः संजायन्ते एवं च तत्र दयानुग्रहौ विद्येते एव लज्जा-भय-शोक-क्रोधादयो नाना गुणाश्च तत्र निवसन्ति ।

गुरु—विद्यमान हैं क्योंकि हमें उसी आत्मा से आनन्द, प्रेम की इच्छा, लोभ, प्रत्याशा और अभिमान (उत्पन्न) होता है और इसीप्रकार वहाँ (आत्मा में) दया, कृपा आदि विद्यमान हैं । इसी प्रकार लज्जा, भय, शोक, क्रोधादि अनेक गुण वहाँ निवास करते हैं ।

शिष्यः—एतेरोगज गुणाः किमस्माकं हिताय भवन्ति ।?

शिष्य—ये रोग से उत्पन्न (रजोवृत्तियुक्त) गुण क्या हमारे हित के लिये होते हैं ?

गुरुः—तत् सत्यं तत्रसन्देहो नास्ति । यदि रागादीन् वशीकृत्य वयं सम्यक् कर्त्तु शक्नुमस्तदाऽस्मान् सन्मार्गगान् कारयितु ते वाञ्छन्ति यदि तान् वशीभूतानऽविधाय वयं तेषां वशगा भवामस्तदाऽस्मान् गर्हित वर्त्मगान् कृत्वा तैरस्माकं अनिष्टाचरणमाचर्यते । अतएव ये स्वात्मगुणान् प्रत्यध्यक्षतां नाचरन्ति ते हि भग्न प्राचीरक शून्यनगरवद्भवन्ति ।

गुरु—ये सत्य है, इसमें सन्देह नहीं है यदि रागादिकों को वश में करके हम उन्हें ठीक करने में सक्षम होते हैं तो वे हमको सन्मार्ग पर प्रेरित करना चाहते है, यदि उनको वशीभूत न करके हम उनके अनुगामी अर्थात् वश में हो जाते हैं, तब हमको निन्दनीय मार्गगामी बना कर वे हमारे प्रति अनिष्ट का आचरण करते हैं । अतएव जो अपने

गुणों के प्रति अध्यक्षता नहीं करता, अर्थात् उनके साथ सावधानी से कार्य नहीं लेता है, तो वे निश्चय ही टूटे हुए प्राचीर भाग वाले शून्य नगर की तरह होते हैं।

शिष्यः—शरीरात्मनोः केन योगो भवति ?

शिष्य—शरीर और आत्मा का किससे योग होता है ?

गुरुः—अति विद्वांसोपि तन्निर्णेतु न शक्नुवन्ति किन्त्वात्मनः स्थानं ब्रह्मरन्ध्रमिति तैरनुमीयते ।

गुरु—अति विद्वान् भी अर्थात् बड़े-बड़े विज्ञजन भी इसका निश्चय नहीं कर सकते, किन्तु आत्मा के स्थान पर ब्रह्मछिद्र है यह अनुमान लगाते हैं।

शिष्यः—प्रत्यहं यल्लोकाः म्रियन्ते तत्र कथं नाऽस्माकं भीतिर्भवति यत् क्रमशो जगत् शून्यं भविष्यतीति बुद्ध्वा ।

शिष्य—प्रतिदिन जो लोग मरते हैं, तो हमें भय क्यों नहीं होता है कि क्रमशः संसार शून्य हो जायेगा यह सोचकर ।

गुरुः—तस्मिन् भीतिर्नास्ति यतः षष्टि निमेषेण जगति षष्टि संख्यका मनुष्याः प्रजायन्ते इत्यनुमीयते । एतद्देशीय पण्डितास्तु प्रत्यहं लक्षसंख्यक मनुष्याः प्रजायन्ते तावत् संख्यका म्रियन्ते च इति वदन्ति । यावन्तो मनुष्या जायन्ते तेषु पञ्चाधिकशत मानेन पुमांसः शतपरिमाणेन च स्त्रियो जायन्ते अर्थात् योषितां सहस्त्रे जाते पञ्चाशदधिक सहस्त्रमित पुमांसो जायन्ते । अनेन क्रमेण स्त्री पुंसोः पुमानऽतिरिच्यते । तद्बीजन्तु बाल्याऽवस्थायां संग्रामभूमौ च वहुशः पुरुषा एव म्रियन्ते इति ।

गुरु—उसमें डरने की कोई बात नहीं है क्योंकि साठ निमेष में (६०) संसार में ६० मनुष्य उत्पन्न होते हैं, यह अनुमान लगाया जाता

है। इस देश के पण्डित तो प्रतिदिन लाखों की संख्या में मनुष्य उत्पन्न होते हैं और उतनी ही संख्या में मरते हैं, यह कहते हैं। जितने मनुष्य उत्पन्न होते हैं, उनमें से (१०५) एकसौ पांच की संख्या में पुरुष और एकसौ (१००) की संख्या के परिमाण से स्त्रियां उत्पन्न होती हैं, अर्थात् स्त्रियों के (१०००) एकहजार उत्पन्न हो जाने पर (१०५०) एकहजार पचास के बराबर पुरुष उत्पन्न होते हैं। इस क्रम से स्त्री पुरुष में पुरुषों की अधिकता है, किन्तु उसका हेतु बाल्यावस्था में अथवा संग्राम भूमि में प्रायः पुरुष ही मरते हैं।

शिष्यः—पल्लीग्रामापेक्षया वृहन्नगरे किमधिक परिमाणेन लोका न म्रियन्ते ?

शिष्य—पल्ली ग्राम (गांव) की अपेक्षा बड़े नगर में क्या अधिक परिमाण में लोग नहीं मरते ?

गुरुः—सत्यं पल्लीग्रामे हि समीरणः शोभनं वहति वृहन्नगरे न तादृक्। सुतरां प्रश्वासार्थमसौ समीरणस्तादृङ् निर्मलो न भवति। तदन्यत् कारणमप्यस्ति यत्र वासश्रेणी घनासंकीर्णा च भवति तत्र जनताधिक्यात् यदि संसर्गात् कश्चिद्रोगः प्रजायते तदा हठात् तद्रोगो विसर्प्य वहूनां हानि विदधाति किन्तु वयं यत्र वसामः किं वृहन्नगरे किम्बाग्रामे तत्राऽपार कृपासागरस्य जगदीश्वरस्य करुणा समीरणं निषेवयामः। एवं तदीयां स्निग्धप्रभां भजामः। तथा तस्य वसुधा फलान्यऽश्नीमः। अतः सुतरामस्माकं यत् यत्किञ्चिद्विद्यते तत् सर्वं तस्माद्वयं प्राप्नुवन्तः। अतएवाऽस्माभिरेतन्नियतमेव कर्तव्यं यत् शरीरमात्मा चाऽस्माभिः परमेश्वराल्लब्धस्तेन तेन च तत् सेवायां सदा नियुक्ताः स्मः।

गुरु—यह सत्य है कि गांव में सुन्दर हवा बहती है। बड़े नगरों में वैसी नहीं (बहती) निरन्तर प्रश्वास के लिये यह वायु उतनी निर्मल

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नहीं होती। उसका और भी कारण है। जहाँ जनसंख्या (आवास) घनी और संकीर्ण होती हैं वहाँ जनाधिक्य के कारण यदि सम्पर्क वश कोई रोग हो जाता है तो सहसा ही वह रोग फैलकर बहुतों को हानि पहुंचाता है, किन्तु हम जहाँ रहते हैं चाहें बड़े नगर में अथवा गांव में वहाँ (ही) अपार कृपा सागर जगत्पति की करुणा वायु का सेवन करते हैं। इसी प्रकार उसकी स्निग्ध प्रभा (प्रकाश) का भी उपभोग करते हैं। वैसे ही उसकी पृथ्वी का फल प्राप्त करते हैं। अत: जो कुछ भी हमको प्राप्त है, अर्थात् हमारे पास है अथवा उपलब्ध है वह सब हमने उसी से प्राप्त किया है। अतएव हमारा यह कर्त्तव्य है क्योंकि शरीर और आत्मा दोनों परमेश्वर से ही प्राप्त हैं, अत: उसकी सेवा में नियुक्त होवें।

★

अथ षष्ठ कथोपकथनं

(जन्तु विषयकं)

शिष्यो वदति—हे महाशय इदानीमहं जन्तु विषयकं किञ्चित् श्रोतुमिच्छामि।

शिष्य कहता है—हे महाशय ! अब मैं जन्तुओं के विषय में कुछ सुनने का इच्छुक हूं।

गुरुर्वदति—जन्तःवस्तु लक्ष-लक्ष प्रकाराः सन्ति। कतिचन जलचराः कतिचिद्भूचराःकति वा भूजलचराश्च एते सामान्याकारेण भूचराः प्रोच्यन्ते तद्भिन्नाः ये ते खेचराः प्रोच्यन्ते। जलचरादयः सर्वेहि मनुष्याधीना ज्ञेयाः।

गुरुदेव कहते हैं—जन्तु तो लाखों प्रकार के हैं कुछ जलचारी हैं, कुछ पृथ्वीचर है अथवा कोई पृथ्वी और जल दोनों में विचरण करने वाले हैं इनमें सामान्य आकार वालों को भूचर (पृथ्वीचारी) कहा जाता है उनसे भिन्न जो है वे आकाशचारी (गगन में विचरण करने वाले) कहे जाते हैं। जलचर आदि सभी को मनुष्य के आधीन ही जानो।

शिष्यः—कथं ते मनुष्याधीना भवन्ति ?

शिष्य—वे मनुष्य के आधीन क्यों होते हैं।?

गुरुः—मनुष्याणां हिताय तेऽधीना भवन्ति न चेदधीनास्ते तेषामीदृक् शक्तिरस्ति वरं हिंसितुं प्रवृत्तास्युरिति।

गुरु—मनुष्य के हित के लिये वे आधीन होते हैं। यदि वे आधीन न हों तो उनकी ऐसी शक्ति है कि अच्छी प्रकार हिंसा करने में प्रवृत्त हो जायें।

शिष्यः—जन्तवः कतिभिरंशैर्विभक्ताः सन्ति ?

शिष्य—जन्तु कितने भागों में विभक्त हैं ?

गुरुः—षड्भिरंशैर्विभक्ताः सन्ति। षणामंशानां क्रमेण दुग्धपायी भूजलचरः पक्षी मत्स्यः पतङ्गः कीटश्चेति नामानि।

गुरु—छः अंशों में विभाजित हैं। छः अंशों के क्रमशः दुग्धपायी, भूजलचर पक्षी, मछली, पतङ्ग एवं कीट (कीटाणु) नाम हैं।

शिष्यः—मनुष्यवज्जन्तूनां किमिन्द्रियाणि सन्ति ?

शिष्य—क्या मनुष्य के समान जन्तुओं की इन्द्रियाँ हैं ?

गुरुः—चतुष्पदां जन्तूनान्तु मनुष्यवत् पञ्चेन्द्रियाणि सन्ति। तन्मध्ये केषाञ्चित् जन्तूनामिन्द्रियाणि मनुष्याऽपेक्षया प्रबलानि। यथाकुक्कुरस्य आघ्राणंनकुलस्य श्रवणं तयोस्तदुभयं मनुष्यऽपेक्षया प्रबलमिति वेदितव्यं।

गुरु—चारपाद वाले जन्तुओं के तो मनुष्य के समान पांच इन्द्रियाँ हैं। उनमें से कुछ जन्तुओं इन्द्रिय मनुष्य की अपेक्षा प्रबल है जैसे—कुत्ते की घ्राणेन्द्रिय और न्यौले की श्रवणेन्द्रिय उन दोनों की दोनों इन्द्रिय मनुष्य की अपेक्षा प्रबल हैं।

शिष्यः—एतेषां कोटि-कोटि जन्तूनां पोषण रक्षणञ्चकेन प्रकारेण निर्वहति ?

शिष्य—इन करोड़ों जन्तुओं का पालन एवं संरक्षण का किस प्रकार निर्वाह होता है।?

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गुरुः—परमेश्वरस्या चिन्त्य शक्त्या चैतेषां कृते खाद्यं वस्तु प्रस्तौति। परमेश्वरेण हृग्विहितं यावन्ति खाद्यानि विद्यन्ते तेषां कस्याप्यऽवशेषो न भवति।

गुरु—परमेश्वर की अचिन्त्य शक्ति से इनके लिये खाद्य पदार्थ प्रस्तुत हो जाता है। परमेश्वर ने ऐसा कर दिया है कि जब तक खाद्य पदार्थ विद्यमान हैं उनके लिये कुछ भी बाकी नहीं होता।

शिष्यः—अस्मिन् विषयेऽन्यत् किञ्चिद्वक्तव्यमस्ति ?

शिष्य—इस विषय में कुछ और वक्तव्य (बतलाने योग्य) हैं ?

गुरुः—आत्मरक्षार्थं सर्वेषां जन्तूनां शस्त्रं विद्यते। एवं यदा ते रोगिणो भवन्ति तदा ते बोद्धुं शक्नुवन्ति येन सुस्था भविष्यन्तीति। तेपि जानन्ति जले किं स्थले तैर्वस्तव्यमिति एवं स्वस्व खाद्याऽखाद्यं ते बोद्धुं शक्नुवन्ति। परन्तु तेषां वासस्थलं येन निर्मितं भवति तच्च ते जानन्ति। पश्य उद्राख्य जन्तुः प्रायो मानुषवत् निजवासं कुटीरवन्निर्माति। सर्वेहि जन्तवो निजशत्रून् ज्ञातुम् शक्नुवन्ति निज जाति खञ्च बोद्धुं शक्नुवन्ति।

गुरु—अपनी रक्षा के लिये सभी जन्तुओं का शस्त्र होता है। इसी प्रकार जब वे रोगग्रस्त होते हैं, तब वे (उसे) जान सकते हैं जिससे (वे) स्वस्थ होंगे। वे यह भी जानते हैं कि जल में क्या स्थल में उन्हें निवास करना चाहिये। इसी प्रकार अपने-अपने खाद्य-अखाद्य (खाने योग्य एवं न खाने योग्य) को वे जान सकते हैं। उनके वासस्थल (आवास) जिससे निर्मित होते हैं उसको भी वे जानते हैं। देखो नामक जन्तु प्रायः मनुष्यवत् अपने निवास को कुटीर (कुटिया) की तरह बनाता है। सभी जंन्तु अपने शत्रुओं को जान सकते हैं। अपनी जाति एवं शब्द को जान सकते हैं।

शिष्यः—यदि ते स्व स्व जातीयं रवं बोद्धुं शक्नुवन्ति तदा किं तेषां कापि विशेष भाषा विद्यते ?

शिष्य—यदि वे अपनी-अपनी जाति के शब्द को जान सकते हैं तो क्या उनकी कोई विशेष भाषा होती है ?

गुरुः—भाषा विशेषवत्तेषां रवो वेदितव्यः। तत् प्रमाणमवधेहि सिंह भल्लूक, शार्दूल, मृगादनघो, टकादयः समय विशेषे शब्द विशेषं कुर्वन्ति।

गुरु—भाषा विशेष के समान उनके शब्द को जानना चाहिये। उसका प्रमाण सुनो—सिंह, भालू, बाघ, घोड़ा आदि समय विशेष में शब्द विशेष करते हैं।

शिष्यः—मनुष्यवत्तेषां रागादिर्विद्यते ?

शिष्य—मनुष्यों की तरह उनके रागादि हैं ?

गुरुः—आं तेषां हि स्वाभाविक स्नेह आनन्द शोक दयाक्रोध जिघांसाऽसहिष्णुतादयोपि वर्त्तन्ते। अस्मिन् विषये मनोयोग योग्यपरमेकं विवेच्यमस्ति तथाहि प्रत्येक जन्तोः स्वभावजो गुणः सततमेकरूपोऽस्ति यथा तुरङ्गमाः सर्वदा हि तेजस्विनः प्रोद्दामवन्तश्च सन्ति। एवं मेष शिशावः सर्वदा मृदवोऽहिंसकाश्च भवन्ति। तथा शशकास्तु सततं भीरव भवन्ति। कुक्कुराश्च प्रभोहितार्थं सदा जागरूका विश्वस्ता च भवन्ति।

गुरु—हाँ उनके स्वाभाविक स्नेह, आनन्द, शोक, दया, क्रोध, मारने की वृत्ति, असहनशीलता आदि भी (गुण) हैं। इस विषय में मनोयोग पूर्वक जानने योग्य किन्तु एक बात विवेचन योग्य है। तथाहि प्रत्येक जन्तु का स्वाभाविक गुण निरन्तर एकरूप होता है जैसे—घोड़े आदि सर्वदा ही तेजस्वी एवं उद्दामवन्त होते हैं। इसी प्रकार मेष के

वच्चे सदैव सरल एवं अहिंसक होते हैं। वैसे ही खरगोश तो निरन्तर डरपोक होते हैं। कुत्ते स्वामी के हित के लिये सदैव जागरूक और विश्वस्त अर्थात् आश्वस्त होते हैं।

शिष्य:—अस्माकं सृष्टिकर्ता परमेश्वरो योहि सर्वान् जन्तूनऽस्माकमधीनान् कृतवान्। तस्य धन्यवाद कारणमस्माकं कीदृगुचितं ?

शिष्य—हमारा सृष्टिकर्ता परमेश्वर जिसने सभी जन्तुओं को हमारे आधीन किया उसका धन्यवाद अर्थात् साधुवाद हमें किस प्रकार करना उचित है ?

गुरु:—तदीय धन्यवाद करणे पूर्वतोप्याधिक्येनोचिता धीर्भविष्यति। यदि वयं मनसि दार्ढ्यं विदध्म यदेतन्निखिल जन्तुरस्माकं हितार्थमुत्पादितोऽस्तीति यदि हितार्थमेव तेऽभवन् तदा तेषां ताड़नमनुचितमेव। तेषामनर्थ ताड़ने कृते वयं परमेश्वरगोचरेऽकृतज्ञा भविष्यामः। किञ्च तेषां रक्षण पोषणार्थं च यद्यदावश्यकं भवति तेभ्यस्तत् प्रदानमस्माकमुचितमेव। अतएवायासाधिक्ये दुःसाध्य कर्मणि च तेषां नियोजनमयुक्तमिति अतोऽत्र धार्मिकैर्निज पशून् प्रत्यवश्यमेवाऽनुक्रोशः कर्तव्य इति।

गुरु—उसके धन्यवाद करने से पहले से भी अधिक बुद्धि बढ़ेगी। यदि हम मन में दृढ़ धारणा कर लें कि ये समस्त जन्तु हमारे हित के लिये उत्पन्न किये गये हैं और वे हित के लिये ही यदि हुए अर्थात् यदि वे हमारे हित के लिये सिद्ध हों तो उनको मारना फिर अनुचित ही है। उनको व्यर्थ में मारने से हम परमेश्वर की दृष्टि में अकृतज्ञ होंगे। और भी उनकी रक्षा एवं पोषण के लिये जो-जो आवश्यक होता है उनको वही प्रदान करना हमें उचित ही है। अतएव इन्हें जिस किसी दुःसाध्य कार्य में नियुक्त करना (लगा देना) अनुचित है, अतएव इस सम्बन्ध में धार्मिकों को अपने पशुओं के प्रति अनुग्रह रखना चाहिये।

शिष्यः—वन्यपशुतः किं प्रयोजनभम् ?

शिष्य—वन के पशुओं से क्या प्रयोजन है ?

गुरुः—तैरपि प्रयोजनमस्ति यस्मात्ते कतिपया भक्षार्थमभवन् । कतिचिद्वा वस्त्र विशेषार्थमभवन् । तैवन्य पशुभिरनेकेषां हिंस्र जन्तूनां वृद्धि हानिर्भवति । एवं तेभ्यो भयात् मानवैर्वनं प्रविश्य निजवन्धुवर्गान् स्वाभीष्ट कर्म च संत्यक्तु ं न शक्यते । तैरपि परमेश्वरीय कर्मणां महत्त्वमनिर्वचनीयत्वञ्च दृष्टं भवति । यतः क्षुद्र कीटावधि सिंह हस्ति खङ्गि प्रभृतयश्चोत्तरोत्तरं ये वृहज्जन्तवः सन्ति ते सर्वे प्रदृष्टाः स्युः । एवमेतदपि दृष्टं भवति यत् परमेश्वरो वन्य पशुभ्यः समुचित खाद्यं दत्वा तान् प्रति पालयतीति ।

गुरु—उनसे भी प्रयोजन है क्योंकि उनमें से कुछ भक्षण के लिये होते हैं अथवा कुछ वस्त्र विशेष के लिये बनाये गये हैं (पशुओं की खाल से वस्त्रों का निर्माण लोक प्रसिद्ध है ही) । उन वन्य पशुओं से अनेकों हिंसक जन्तुओं की बढ़ोत्तरी में कमी होती है । इसी प्रकार उनके भय से मानव वन में प्रवेश करके अपने वन्धुवर्ग को और अपने अभीष्ट कर्म को नहीं छोड़ सकता । उनसे (पशुओं से) भी परमेश्वर के कार्यों का महत्व और अनिर्वचनीयत्व दृष्टिगत होता है क्योंकि छोटे कीटाणु से लेकर शेर, हाथी, गेंड़ा आदि एक से बढ़कर एक जो बड़े जन्तु हैं वे सभी दृष्टिगत होते हैं । इसमें यह भी दिखाई देता है कि परमेश्वर वन के पशुओं को समुचित भोज्य (पदार्थ) देकर उनका पालन करता है ।

शिष्यः—जन्तूनां कति वर्गाः सन्ति ?

शिष्य—जन्तुओं के कितने वर्ग हैं ?

गुरुः—तेषां सप्तैव वर्गाः सन्ति । दन्तसंख्यया दन्तस्थानेन दन्ताकारेण च ते विभक्ता भवन्तीति ।

गुरु—उनके सात वर्ग हैं। दाँतों की संख्या से, दांतों के स्थान से तथा दांतों के आकार से वे विभक्त होते हैं।

शिष्यः—प्रथमवर्गीयाः केके जन्तवः ?

शिष्य—प्रथम वर्ग (अन्तर्गत) कौन-कौन से जन्तु हैं ?

गुरुः—प्रथम वर्गीयास्तु मनुष्य, वानर, वनमानुष, लिमर, चर्म्मचटिकादयः। एतेषां दशनोर्द्ध्व पंक्त्याश्चत्वारो दन्ताः समानाः। एवमेषां वक्षस्थलेस्तनद्वयमिति।

गुरु—प्रथम वर्गीय तो मनुष्य, बन्दर, वनमानुष, लिमर चर्मचटिका आदि हैं। इनके ऊपर की दन्तावली के ४ दांत समान होते हैं। वक्षस्थल पर दो स्तन होते हैं।

शिष्यः—एतेषां प्राणिनां कि मनुजदशनवद्दन्ता भवन्ति ?

शिष्य—इन प्राणियों के क्या मनुष्यके दांतों के समान दांत होतेहैं?

गुरुः—चर्मचटिका भिन्नानामेतेषां प्राणिनां दन्ता मनुष्यवदिति सत्यं।

गुरु—चर्मचटिका से भिन्न इन प्राणियों के दाँत मनुष्य के समान होते हैं यह सत्य है।

शिष्यः—एत्तु महद्दुःखं यत् पशूनां मध्ये मनुष्यो गण्यते ?

शिष्य—ये तो महान् दुःख की बात है कि पशुओं में मनुष्य की गणना है।

गुरुः—परन्तु पक्ष्म हस्त चरणांगुली नखादिभिरवयवैर्मनुष्या एतावद्भिस्तुल्याः।

गुरु—परन्तु बरौनियों; हाथ-पैरों की अँगुली, नखादि अवयवों से मनुष्य इनके समान ही है।

शिष्यः—किं तेषां पुरोर्वर्त्ति चरणद्वयं भवता हस्तद्वयमुच्यते?

शिष्य—फिर उनके अगले दोनों पैरोंको आप क्या दो हाथ कहतेहैं?

गुरुः—एवं अपर चतुष्पदापेक्षया एतेषां सम्मुखस्य चरणद्वयं मनुष्य हस्तवत् कार्यकारि भवतीति सत्यं, यतोहि ताभ्यां पुरोवर्त्तीपद्भ्यां ते वृक्षमारोहन्ति एवं फलान्यकृष्य धारयन्ति। एवं तेषां मध्ये केषाञ्चिलांगूल ईदृक् शक्तिमान् वर्तते येन च वृक्षशाखां वेष्टयित्वात्मानं ते रक्षन्ति।

गुरु—इस प्रकार दूसरे चार पैरों वाले जीवों की अपेक्षा इनके सामने के दोनों पैर मनुष्य के हाथ की तरह कार्य करने में सक्षम होते हैं सत्य ही है क्योंकि वे अपने पुरोवर्ती (सामने के पादद्वय) पैरों से वृक्ष पर चढ़ जाते हैं और फलों को खींचकर पकड़ लेते हैं। इसी प्रकार उनमें से किन्हीं की पूँछ इतनी शक्तिमान् होती है कि जिससे वृक्ष की शाखा को घेरकर वे अपनी रक्षा कर लेते है।

शिष्यः—द्वितीय वर्गीयाः कीदृशा भवन्ति ?

शिष्य—दूसरे वर्ग के कैसे होते हैं ?

गुरुः—तेषां मुख पुरोभागे दन्ता न सन्ति एवं तेषां पदेषु खुरवद्अतीक्ष्णाग्र कठिनानि नखानि सन्ति। एतस्मिन् वर्गे हस्ति, गण्डक, वराह, पिपीलिकाभूजगलसपदादयो वेदितव्याः।

गुरु—उनके मुख में सामने के हिस्से में दाँत नहीं होते और उनके पैरों में खुर के समान अतीक्ष्ण अग्रभाग वाले कठोर नख होते हैं। इस वर्ग में हाथी, गेंड़ा,सूअर, चेंटी भूगल अलस पद आदि समझने चाहिये।

शिष्यः—अलसपद पशुः किमति मन्दगामी न ?

शिष्य—अलसपद पशु को मन्दगामी क्यों नहीं कहा ?

गुरुः--अपरवर्गापेक्षया द्वितीय वर्गीयास्तावत् जन्तव एव मन्थरा इति सत्यं। आलस्यपाद जन्तुस्तु एकेन दिवसेन प्रायः शतहस्त मितं न गच्छति एवं वृक्षोपरि तिष्ठति एवं सदैव कातर-भावमापन्नोऽलस भावेन गच्छति किञ्च यदा वृक्षमारुह्य भ्रमति तदा किञ्चिच्छीघ्रं चलति। अस्य जन्तोः क्रन्दन ध्वनिरत्याश्चर्य स्तन्नेत्र जलं दृष्टं भवति।

गुरु—अन्य वर्गों की अपेक्षा द्वितीय वर्ग के जन्तु मन्थर (धीमी) गति वाले है यह सत्य है। आलस्यपाद जन्तु तो एक दिन में प्रायः सौ हाथ पर्यन्त भी नहीं चलता इसी प्रकार वृक्ष पर बैठा रहता है और हमेशा कायरता पूर्वक आलस्य भाव से चलता है और भी जब यह वृक्ष पर चढ़कर घूमता है, तब कुछ शीघ्र चलता है। इस जन्तु की रोने की ध्वनि अति आश्चर्यमय है उसके नेत्र का जल (अश्रुप्रपात) भी दृष्टि-गत होता है।

शिष्यः—तृतीय वर्गीयाः जन्तवः कथम्भूताः ?

शिष्य—तीसरे वर्ग के जन्तु किस प्रकार के है ?

गुरुः—तृतीय वर्गीयास्तु सर्वे हिंस्रा वेदितव्याः तेषां हि नखानि सुतीक्ष्णवक्राकाराणि भवन्ति सम्मुखस्था दन्ताश्च विकटाः जाज्वल्यमानं चक्षुश्च एवं पराक्रमो वेगश्च तेषामीदृक् हठादपर पशूनाक्रम्य धारयन्तीति।

गुरु—तृतीय वर्ग के तो सभी को हिंसक समझो। उनके नख तीक्ष्ण टेढ़े आकार के होते हैं। सामने के दाँत विकट (बड़े) जलते हुए नेत्र और पराक्रम तथा वेग उनमें इतना कि सहसा ही दूसरे पशुओं को घेर कर पकड़ लेते है।

शिष्यः—तेषाँ दन्तानां कोऽस्ति विशेष ?

शिष्य—उनके दाँतों की क्या विशेषता है ?

गुरुः—तेषां दशनोद्र्ध्वं पंक्तेर्मध्यदेशेदन्ताः षट् एकोहि दशनो वृहत् द्वयोर्दन्त पंक्तयोर्मध्ये द्वौ द्वौ दशनो कुक्कुर दन्तौतीक्ष्णौ विद्येते। एतद्वर्ग मध्ये कुक्कुर मार्जार भल्लूकोद्र गन्धमूषिक शल्लकी प्रभृतयो वेदितव्याः।

गुरु—उनके दांतों की ऊपर की पंक्ति के बीच में छै दांत होते हैं, एक दांत बड़ा होता हैं। दोनों दन्तपंक्तियों के मध्य में दो-दो दांत कुत्तों के अति तीक्ष्ण होते हैं। इस वर्ग में कुत्ते, बिल्ली, भालू।

शिष्यः—हे महाशय ! त्वं हि सिंह व्याघ्र चित्रक तरक्ष्वादीनां विषये किमपि नोक्तवान् ते च किमेत द्वर्गीया भवन्ति ?

शिष्य—हे महाशय ! आपने सिंह, वाघ, चित्रक, भालू आदि के विषय में कुछ भी नहीं कहा और क्या वे इसी वर्ग के होते हैं ?

गुरुः—सिंह व्याघ्र एतद्वयं विडालविशेषं वक्तुमर्हन्ति। चित्रकस्तरक्षुवेति द्वयं कुक्कुर विशेषं वक्तुमर्हन्तीति।

गुरु—शेर, वाघ इन दोनों को बिल्ली विशेष कहना उचित है। चित्रक-तरक्षु (व्याघ्र-तेंदुआ बाघ) को कुक्कुर विशेष कहा जाता है।

शिष्यः—चतुर्थवर्ग निर्णयः केन भवति तन्मध्ये वा कतिविधा जन्तवः ?

शिष्य—चौथे वर्ग का निर्णय किस रूप में होता है तथा उनमें किस प्रकार के जन्तु होते हैं ?

गुरुः—येषां दशन पंक्तिद्वय सम्मुखे द्वौद्वौ तीक्ष्णदशनौ विद्येते एतद्वर्गीया भवन्ति। एतस्मिन् वर्गे जलमार्जार मूषिक दारुविडाल शशक प्रभृतयो ज्ञातव्याः।

गुरु—जिनके दांत दोनों पंक्तियों में सामने दो-दो तीखे (पैने) दांत होते हैं वे इस वर्ग के (अन्तर्गत) होते हैं। इस वर्ग में जल की बिल्ली, चूहे, जंगली बिल्ली और खरगोश आदि जानने चाहिये।

शिष्यः—पञ्चम वर्गीयास्तु केके जन्तवः ?

शिष्य—पांचवें वर्ग के कौन-कौन से जन्तु हैं ?

गुरुः—ये वै द्विशफाः जन्तवस्तएवैतस्मिन् वर्गे गणिता भवन्ति। यथाहि गो, मेष, छाग, कृष्णसार, उद्र प्रभृतयः। एतद्वर्गीयासाधारण चिह्नन्तु दशनोद्धर्वपंक्तया सम्मुखे दशनाभावः किन्त्वधः पंक्त्याश्चाष्टौ दन्ताः। एवञ्च भोजनकाले प्रथममुदरस्थमकृत्वा गलकम्वलस्थं गिलितं वस्तूद्गिरण पूर्वकं विश्रामकाले चर्वयन्तीति।

गुरु—जो दो खुर वाले जन्तु हैं वे ही इस वर्ग में गिने जाते हैं, जैसे गाय, मेष, बकरी, काला मृग, ऊँट आदि। इस वर्ग की असाधारण पहिचान है। दांतों की ऊपर की पंक्ति में दांतों का अभाव किन्तु नीचे की पंक्ति में ८ दांत होते हैं और भोजन समय भोज्य पदार्थ को उदर में न रखकर गल कंवल में गिलित वस्तु को रोथकर विश्राम के समय चर्वण करते हैं।

शिष्यः—एतेषां पशूनां खुरः किं द्विखण्डो न ?

शिष्य—इन पशुओं के खुर क्या दो खण्डों में विभक्त नहीं हैं ?

गुरुः—द्विखण्ड इति सत्यं स्वभावतस्तेऽहिंस्राः परन्तु यदि कश्चिन्मारय तर्हि कठिन शृङ्गेण मूर्द्धा हिंसायै प्रवर्त्तन्ते।

गुरु—द्विखण्ड ये सत्य है। स्वभावतः वे अहिंसक हैं किन्तु यदि कोई (उन्हें) मारता है तो कठोर सींगों से मस्तिष्क (सिर) को हिंसा के लिये प्रवृत्त करते हैं।

शिष्यः—षष्ठवर्गीयाः कतिविधा जन्तवस्तेषाम्वा किमस्ति विशेषचिह्नं ?

शिष्य—छठवें वर्ग में किस प्रकार के जन्तु हैं अथवा उनके विशेष चिह्न क्या हैं ?

गुरुः—षष्ठवर्गे चत्वारोगणाः ते च घोटकः सिन्धु घोटकः पुण्ड्रशूकरः शूकरश्चेति। एतेषां चतुर्णां दन्तपंक्तिद्वये द्व्यधिका दन्ताः शृङ्ग विहीनाश्च।

गुरु—छठे वर्ग में चारगण हैं—घोड़ा, दरियायी घोड़ा, पुण्ड्र शूकर, शूकर। इन चारों की दोनों दांतों की पंक्ति में दो दांत अधिक होते हैं, सींग नहीं होते।

शिष्यः—सप्तम वर्गीयानां किमस्ति विशेष चिह्नं ?

शिष्य—सातवें वर्गान्तरीय जन्तुओं का क्या विशेष चिह्न है ?

गुरुः—सप्तम वर्गीयानामेतद्विशेष चिह्नं यत्तेषां चरणं नास्तीति एतस्मिन् वर्गे तिमि शिशुकादयो जलचराः।

गुरु—सप्तम वर्गीय जन्तुओं की विशेष पहचान यह है कि उनके चरण नहीं होते। इस वर्ग में—मच्छ, शिशुक आदि जलचर हैं।

शिष्यः—किमेते मत्स्या न ?

शिष्य—क्या ये मछली नहीं है ?

गुरुः—एते जलमध्ये वसन्त्यऽतोवाह्ये मत्स्यवत् प्रतिभान्ति अभ्यन्तरे च चतुष्पाद पशुवद्वर्तन्ते। ते च फुप्फुषेण निःश्वास प्रश्वासौ त्यजन्ति एवं स्वकीय स्तन्यदुग्धेन स्वशिशून् पुष्यन्ति।

गुरु—ये जल के मध्य में निवास करते हैं अतः बाहर से मछली के समान प्रतिभासित (प्रतीत) होते हैं और भीतर चार पैर वाले पशु के समान होते हैं। वे फेफड़े से निश्वास प्रश्वास छोड़ते हैं और अपने स्तनों के दूध से अपने बच्चों का पोषण करते हैं।

शिष्यः—हे महाशय ! यद्यनुग्रहं विधाय तिमि मत्स्य विषये किञ्चित् कथयसि तदा मे महानाह्लादो जायते।

शिष्य—हे महाशय यदि कृपा करके 'तिमि' मछली के विषय में कुछ बतलायेंगे तो मुझे बहुत खुशी होगी।

गुरुः—तिमिरति वृहत् दैर्घे च द्विपञ्चाशद्धस्त मितः औन्नत्ये द्वादश हस्तमितो वर्त्तते । एवमेतादृक् बलवान् पुच्छस्फालनेन नौकां नाशयितुमर्हतीति पुच्छेनैव जले भ्रमति । तिमिगणस्तु दक्षिणोत्तर केन्द्रीय सागरसमीपे निवसति । तेषां हि गमनकाले जलगतेदृशी धारायया वृहन्नौका जीविभिस्तत स्थानं निर्णेतुं शक्यते । तेषां मुखन्त्वति वृहत् किन्तु गलच्छिद्रमति क्षुद्रं दन्तोद्धर्वपंक्तौ दन्तोनास्ति । अस्ति च दन्तोद्भवस्थाने वृहदस्थि तदस्थि च गजदशनवत् मूल्यवत् । यदा ते निजमुखं व्यादाय वेगेन चलन्ति तदा विविध क्षुद्रमीनाः । तेषां मुखे पतन्ति ततस्ते मुखं संकुच्य तान् मत्स्यान् गिलन्ति तेषामनेनेवाहारो भवति । ते च फुप्फुषेण वायुं गृह्णन्ति एतस्मादेव जलेचोन्मज्य चिरं नावतिष्ठन्ति । एकस्मिन् दण्डे मुखमुत्तुल्य वारद्वयं उत्तिष्ठन्ति । तस्मिन्नेव समये तावदुदरस्थं जलं ग्रीवास्थ्यस्ति छिद्रेण वहिर्निक्षिपन्ति । यदि निःसारण समये कामपि वाधां लभन्ते तर्हि प्रायो झञ्झरामारुतवत् शब्दायन्ते । एष तिमिरति कोमलोमत्स्या अतः कारणात् क्षुद्रा अपि मीनाः कदाचित्तेषां दुःखं जनयन्ति । यदा ते प्रसूयन्ते तदा सन्तानमेकं जनयन्ति । परस्परं सन्तानं प्रति च तेषामीदृशं प्रेम यत् प्राणान्ते च न तेषां विच्छेदः ।

गुरु—तिमि अति बड़ी होती है दीर्घता (लम्बाई में) ५२ (बावन) हाथ पर्यन्त (लम्बी) और ऊँचाई में १२ हाथ के बराबर होती है। ये इतने शक्तिशाली हैं कि पूंछ के घर्षण से ही नौका को नष्ट करने में समर्थ हैं और पूंछ से ही जल में घूमती है। तिमिगण तो दक्षिणोत्तर केन्द्रीय सागर के समीप निवास करता है। उनके गमन के समय जल की धारा ऐसी होती है कि बड़ी-बडी नौकाओं से जीविका अर्जित करने वाले उस स्थान का निर्णय कर सकते हैं। उनके मुख बड़े किन्तु गले का छिद्र अति छोटा और दन्त की ऊपर की पंक्ति में दांत नहीं है।

दांतों के स्थान पर बड़ी अस्थि (हड्डी) है और वह अस्थि हाथी दांत के समान मूल्यवान् है । जब वे अपने मुख को फैलाकर वेग से चलती हैं तो अनेकों छोटी मछली उनके मुख में गिर जाती हैं तब वे मुख को सिकोड़कर उन मछलियों को निगल जाती हैं । इसी प्रकार से उनका आहार होता है । वे फेफड़ों से वायु ग्रहण करती हैं । इसी कारण जल में निमग्न होकर चिरकाल तक नहीं ठहरतीं । एक दण्ड में (क्षण में) मुख को उठाकर दो बार निकलती हैं । उसी समय में तब तक उदरस्थ जल को गले के छिद्र से बाहर निकाल देती हैं । यदि निकालते समय किसी भी प्रकार की बाधा प्राप्त होती है तो प्रायः झंझावात वायु (तूफान) के समान शब्द करती हैं । ये तिमि अति कोमल मछली है इसीलिये (यदि) कभी-कभी छोटी भी मछली उनको दुःख देती हैं । जब वे प्रसव करती हैं तो एक सन्तान को उत्पन्न करती हैं । परस्पर और सन्तान के प्रति इतना प्रेम है कि प्राणान्तमें भी उनका विच्छेद(वियोग) नहीं होता ।

शिष्यः—तर्हि केन प्रकारेण ते धार्यन्ते ?
शिष्य—तब उन्हें कैसे पकड़ा जाता है ?

गुरुः—बृहन्नौ चारिभि स्तेषां वासस्थानं निर्णीय समीपे गम्यते अनन्तरं रज्जुयुक्तं शूलं निःक्षिप्यते तेन विद्धः सन् स हि गभीरनीरे निमज्जति कियदनन्तरं निश्वासं त्यक्तुं पुनरप्युत्तिष्ठन्ति । तस्मिन् क्षणे पुनः शूलेन ताप्यते अनेनैव वहुतरं शोणित निःसृतौ प्राणांस्त्यक्त्वा तिमिरुन्मज्जति । अनेनैकस्मिन् वत्सरे तत् सहस्रद्वयं धृतमासीत् ।

गुरु—बड़ी-बड़ी नौका चालक उनके निवास का पता लगाकर समीप में जाते हैं । तत्पश्चात् रस्सीयुक्त कांटे को फेंकते हैं उससे घायल होकर वह गम्भीर जल में मग्न हो जाती है । कुछ देर पश्चात्

श्वास छोड़ने के लिये पुनः उठती है। उसी क्षण पुनः काँटे से मारा जाता है। इसी तरह बहुत रक्त निकलने पर प्राणों का त्याग करके तिमि डूब जाती है। इसी एक वत्सर में (संवत्सर वर्ष) वे दो हजार पकड़ी गई हैं।

शिष्यः—तिमितः किं प्रयोजनं भवति ?

शिष्य—तिमि से क्या प्रयोजन होता है ?

गुरुः—तेन च लोकानां महोपकारो भवति यस्मात्तन्मांसेन तैलविशेषे जायते। एवं तस्य दन्तस्थानजयस्थि नाना कर्मोपयोगि भवति। अतएवैकस्य तस्य मूल्यमयुत संख्यकमुद्रा भवितुमर्हति।

गुरु—उससे लोगों का बड़ा उपकार होता है क्योंकि उसके मांस से तेल विशेष उत्पन्न होता है और उसके दांतों के स्थान पर उत्पन्न अस्थि अनेक कार्यों में उपयोगी होती है। अतएव एक ही उसका मूल्य दस हजार (१०,०००) रुपये हो सकती है।

शिष्यः—एतदतिरिक्तः कश्चिदसाधारण जन्तुरस्ति ?

शिष्य—इसके अलावा कोई और असाधारण जन्तु है ?

गुरुः—भूजलचरगणस्तावदसाधारण जन्तुरस्ति। यतस्तेषां फुफ्फुषोऽपर जन्तुवत् साधारणो न यस्माच्चतुष्पाद जन्तु पक्षिभ्यां सदृशो न। तथा मत्स्येनापि सदृशो न भवति परन्त्वंशत स्तुदुभयवद्भवति। एतस्तयादेव चतुष्पादवत् भूमौ जीवितुं शक्नोति च जले मत्स्यवत् जीवितुमिति।

गुरु—भूजलचरगण असाधारण जन्तु है क्योंकि उनका फेफड़ा दूसरे जन्तुओं के समान साधारण नहीं है जिससे चतुष्पाद जन्तु पक्षि आदि के समान नहीं है तथा मछली के समान भी नहीं होता, किन्तु अंशतः वह दोनों के समान होता है। यही कारण है कि वह चतुष्पादों की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तरह भूमि पर जीवित रह सकता है और जल में मछली की तरह जीवित रह सकता है।

शिष्यः—भूजलचर जन्तूनां कतिवर्गाः सन्ति। तेषां वा किमस्ति चिह्नं ?

शिष्य—भूजलचारी जन्तुओं के कितने वर्ग हैं और उनकी क्या पहचान है ?

गुरुः—तेषां द्वौ वर्गौ भवतः आद्य गमनशील जन्तुरिति यथा कच्छप, मेक, गोधिका कुम्भीर प्रभृतयः। एतेषां चत्वारि चरणानि कर्णपत्राभाववत् कर्णरन्ध्रञ्च। द्वितीये सर्वगणस्तेषां चरणं नास्ति अण्डस्तु शृङ्खलवद् ग्रथितो भवति।

गुरु—उनके दो वर्ग होते हैं—प्रथम गमनशील जन्तु जैसे–कछुआ, मेंढक, गोह, मकर इनके चार चरण होते हैं। कर्णपत्र के अभाव में कर्णछिद्र होते हैं। दूसरे सर्वगण हैं इनके चरण नहीं होते हैं। अण्डा तो सांकर की भांति ग्रथित होता है।

卐

अथ सप्तम कथोपकथनं

(पक्षि विषयकं)

शिष्यः—हे महाशय ! सम्प्रत्यऽनुग्रहं विधाय मां प्रति पक्षिजातेर्विषयान् कथयिष्यसि यतस्तेषां मधुर शब्देन माम् महान् हर्षो जायते ।

शिष्य—हे महाशय ! अब कृपा करके मुझे पक्षि जाति के विषय में कहेंगे, क्योंकि उनके मधुर शब्द से मुझको अत्यधिक हर्ष होता है ।

गुरुः—यदि त सन्तोषमिच्छसि तर्हि निद्रां विधायाऽति प्रत्यूषे त्वं समुत्थास्यसि ।

गुरु—यदि उस सन्तोष को चाहते हो तो निद्रा को छोड़कर अति ऊषाकाल में उठोगे ?

शिष्यः—सुस्थ भावार्थं प्रत्यूषेऽहमुत्तिष्ठामि परन्तु केवलं सुस्थतार्थं न किन्तु हर्षार्थमपीति ।

शिष्य—स्वस्थ होने की भावना से अतिप्रातः मैं उठता हूं, किन्तु केवल स्वस्थ होने के लिये ही नहीं प्रत्युत् आनन्द हेतु भी ।

गुरुः—इच्छाम्यहं त्वं प्रत्यहं प्रत्यूषे गात्रोत्थानं करोषीति यस्माद्धि ध्यानाऽध्ययन विवेचनासूपयुक्तोऽयं कालः ।

गुरु—मैं चाहता हूं कि तुम प्रतिदिन उषाकाल में उठा करो, क्योंकि निश्चय ही ध्यान, अध्ययन और विवेचना के लिये यह समय उपयुक्त है ।

शिष्यः—अहमुत्थितुं यतिष्यामि सम्प्रत्यऽनुग्रहं विधाय कथयिष्यसि येन मया पक्षिगणो ज्ञायते ?

शिष्य—मैं उठने का प्रयास करूँगा इस समय अनुग्रह करके (आप) बतलायेंगे; जिससे मुझे पक्षिगण विषयक ज्ञान हो जायें ?

गुरुः—अण्डेन रोम्णा पक्षेण च ते ज्ञातव्या भवन्ति। पुरोर्वर्त्ति चरणद्वय परिवर्तेण तेषां पक्षद्वयमभूत।

गुरु—अण्डों से, रोम एवं पंखों से वे विज्ञापित (जाने जाते) होते हैं। सामने चरण द्वय परिवर्त से उनके दो पंख हुए।

शिष्यः—कतिभिर्वर्गैःपक्षिणो विभक्ताः सन्ति तेषाम्वा किमस्ति विशेष चिह्नं ?

शिष्य—कितने वर्गों (भागों) में पक्षिगण विभक्त हैं अथवा उनका क्या विशेष चिह्न है ?

गुरुः—तेषां वर्गाः षट् परन्तु चञ्चुपुटेन तद्विशेष बोधोभवति। प्रथमवर्ग्यास्तु हिंस्राः पक्षिणः येषां चञ्चुर्वक्राकृतिः तथाहि-गृध् चिल्ल श्येन प्रभृतयः।

द्वितीय वर्गीयास्ते येषां चञ्चुपुटमीषद्दृकं तथाहि काक, द्रोणकाक, शुकादयः।

तृतीय वर्ग्यास्तु येषां चञ्चूर्ध्वभागो निर्मलस्तदग्रदेशस्तु किञ्चित् स्थूल एवं त्वचा सम्वृत्तश्चेति तथाहि राजहंस हंस सारस प्रभृतयः।

चतुथ वर्गीयास्तु येषां चञ्चुः शलाकाकृतिः तथाहि वक काष्ठकुट्ट द्वन्द्वचारि प्रभृतयः।

पञ्चम वर्गीयास्तु येषां चञ्चुर्वक्रा एवमधश्चञ्चपेक्षया ऊर्द्ध्वं चञ्चु खण्डः किञ्चिद्दीर्घो वक्राकृतिश्च तथाहि-उष्ट्रपक्षि मयूर प्रभृतयः।

षष्ठवर्गीयास्तु येषां चञ्चुस्त्रिकोणाकृतिः यथा वनकपोत भारद्वाज क्रीडाविहङ्ग प्रभृतयः।

गुरु—उनके छः वर्ग हैं किन्तु चोंच से विशेषतः पहचाने जाते हैं। प्रथम वर्गीय तो हिंसक पक्षी हैं, जिनकी चोंच टेढ़ी आकृति की होती है जैसे—गिद्ध, चील, बाज आदि।

द्वितीय वर्गीय वे हैं जिनकी चोंच कुछ-कुछ टेढ़ी होती है जैसे, कौवा, द्रोण कौवा, तोता आदि।

तीसरे वर्गीय तो जिनकी चोंच का ऊपरी हिस्सा निर्मल और उस का अगला हिस्सा कुछ स्थूल और त्वचा से ढका होता है जैसे—राजहंस, हंस, सारस आदि।

चौथे वर्गीय तो जिनकी चोंच शलाका (सलाई) के आकार की है जैसे—बगुला, कठफोड़ा, चक्रवाक आदि।

पाँचवें वर्ग में तो जिनकी चोंच वक्र और निचली चोंच की अपेक्षा ऊपरी चोंच का हिस्सा कुछ लम्बा तथा टेढ़ा आकृति का है जैसे—उष्ट्रपक्षि और मोर आदि।

छठे वर्गीय तो जिनकी चोंच त्रिकोण आकृति वाली है जैसे—जंगली कबूतर, चकवा-क्रीडाविहङ्ग आदि।

शिष्यः—पक्षिणां जन्मन्याकार विषये च कापि विशेषोक्तिर्विद्यते या च विवेचनीया भवितुमर्हति ?

शिष्य—पक्षियों के जन्म एवं आकार विषयक कोई विशेष उक्ति है जो (वस्तुतः) विवेचन योग्य हो ?

गुरुः—अस्ति च पश्य चाण्डमध्यीय शस्येतेषां जन्म भवति। पक्षद्वयतापेनाखण्डस्य शस्ये जीव उत्पद्यते। पश्य पक्षिणामाकारः परमाश्चर्यः तत्र च परमेश्वरस्य कौशलं नैपुण्यञ्च कीदृशं भाति। उड्डनार्थं तेषामाकारः कीदृक् सुन्दरोऽभवत्। भूचर जन्तुभ्योपि

तेषां शरीरास्थि महासूक्ष्मं इत्यस्मादेव ते लघुतरा भूत्वाऽनायासेनाकाशमण्डले समुत्थितुं शक्नुवन्ति तेषां शरीरास्थि संघानां सूक्ष्मत्वेऽपि यथा ते दुर्बला न भवन्त्येतदर्थं तेषामस्थिगता सत्वा सबला कठिना चाभवत् ।

चञ्चग्रभागस्य सूक्ष्मतया ते हि गगन मण्डले क्षिप्रमेव गन्तुं शक्नुवन्ति । पक्षिविशेषेऽपरैका कथा विवेचनीयास्ति यथा तेप्यऽनायासेनोड्यितुं शक्नुवन्ति । तेषां मध्ये कतिचित् पक्षिणः परम वेगेनोड्डयितुं शक्नुवन्ति तदर्थं तेषां पक्षौ मनोज्ञतया सुनिर्मितौ स्तः । तेषाञ्चोड्डीनं सर्वदाऽस्माभिर्दृश्यते । अतः साधारण वस्तुवत् नाश्चर्यं मन्यते ।

गुरु—है देखो, अण्डे के मध्यवर्ती शस्य (पदार्थ विशेष) से उनका जन्म होता है । दोनों पंखों की गर्मी से अण्डस्थ शस्य से जीव उत्पन्न होता है । देखो, पक्षियों का आकार परम आश्चर्यमय है । उनमें परमेश्वर की कुशलता और निपुणता कैसी शोभित (प्रतिभासित) होती है । उड़ने के लिये उनका आकार कितना सुन्दर बनाया गया है । पृथ्वी चारी जन्तुओं से उनके शरीर की हड्डियाँ बहुत सूक्ष्म होती हैं । यही कारण है कि वे लघुतर अर्थात् हल्के होकर अनायास ही (लाघवता पूर्वक) आकाश मण्डल में उड़ सकते हैं, उनके शरीर के अस्थि संघ (हड्डी समूह) के सूक्ष्म होते हुए भी जिससे वे दुर्बल न हों एतदर्थ उनकी हड्डीगत सत्व (शक्ति) बलवती एवं कठोर बनी हुई है ।

चोंच के अग्रभाग की सूक्ष्मता से वे गगन मण्डल में शीघ्र ही जा सकते हैं । पक्षि विषयक एक और बात विवेचनाई है, जिससे वे अनायास (बिना प्रयास के) उड़ सकते हैं । उनमें से भी कुछ पक्षी तो बहुत वेग से उड़ सकते हैं, उसके लिये उनके दोनों पंख बड़े ही मनोवैज्ञानिकता से बने हुए हैं । उनका उड़ना हम सदैव देखते ही हैं । अतः साधारण वस्तु की तरह आश्चर्य नहीं मानते ।

शिष्यः—वयं यत् चिन्ताविहीनाः सन्त आयासं विना सर्वत्र गन्तुमागन्तुं च शक्नुमः तत्र परमेश्वरस्य परमकौशलं महामनुग्रहश्च देदीप्यते। एतदर्थमस्माभिराश्चर्य वोधः कर्तव्य एव। परन्त्वऽस्माकं गमनापेक्षया पक्षिणां गतिरत्याश्चर्या। तेषान्तु पक्षविषयकं यद्रूपेणाकाश मण्डले गमनं तत्र च तेषामवस्थानं चेतत् सर्वं त्वत्तोऽहं श्रोतुमिच्छामि।

शिष्य—हम जो चिन्ता रहित होकर परिश्रम बिना ही सर्वत्र आने जाने में सक्षम हैं, उसमें परमेश्वर का परम कौशल एवं महान कृपा प्रकाशित (द्योतित) अर्थात् सूचित होती है। इसलिये हमें आश्चर्य की अनुभूति करनी ही चाहिये, परन्तु हमारे गमन की अपेक्षा पक्षियों की गति अति आश्चर्यमयी है। उनका पंख विषयक, जिस रूप से आकाश मण्डल में गमन करते और वहाँ उनका रहना ये (सर्व) सब मैं आपसे सुनना चाहता हूं।

गुरुः—एतस्मिन्मे महानाह्लादो भवति यत्त्वया निजवुद्धिवृद्ध्यर्थं वाञ्छा क्रियते। परन्त्वेषां पूर्वत्रतुभ्यं या कथिता सापि त्वया वयोवाहुल्यं गतेन सम्यग्वोद्धुं शक्यते।

गुरु—मुझे इसमें महान् खुशी होती है कि तुम अपनी बुद्धि के विस्तार की इच्छा करते हो, परन्तु इनके विषय में पहले और अब जो कहा वह भी तुम उम्र के अधिक होने पर अच्छी प्रकार से जान सकते हो।

शिष्यः—तद्भवितुमर्हति सम्प्रत्यनुग्रहं प्रकाश्य मामन्यत् किञ्चित् कथयिष्यसि ?

शिष्य—वैसा हो सकता है किन्तु इस समय कृपा प्रकट करके मुझे और कुछ बतलायेंगे ?

गुरुः—त्वया यत् प्रागुक्त पक्षिणा ध्वनिभिर्महान् सन्तोषो जायत इति । एवमत्र किं तवाश्चर्यबुद्धिर्न भवति यत् पुंजातीनामति क्षुद्र जन्तूनां कोमलकण्ठतो नानाविध मनोहर मधुर ध्वनिर्निःसरति । महोक्षस्तु परं केवलं घोरतरं गभीरनादं नदन्ति । पक्षिविषयेऽपरैका कथाऽस्ति यद्वनमध्यत उड्डीयमानानामपि पक्षिणां कापि हानिर्न भवति । यतस्तेषां नेत्रोद्ध्र्वदेशे समावरण चर्म विद्यते यच्च मनुष्याणां नयने नास्ति ईदृक् चर्मणापि तेषां दृष्टिव्याघातो नास्ति यतो विविधाः पक्षिणो दूरदर्शिनो वर्त्तन्ते । तेषान्तु श्रवणं केवलं रन्ध्रमात्रं लोम्नासंवृत्तमास्ते येनोड्डीनादि समये वायुर्नो विघ्नयति ।

गुरु—तुमने जो पहले कहा कि पक्षियों की ध्वनि से बड़ा सन्तोष उत्पन्न होता है । क्या इसमें तुम्हारी बुद्धि आश्चर्यमय नहीं होती कि पक्षियों में अर्थात् पक्षी जाति के अति छोटे जन्तुओं के कोमल कंठ से अनेक प्रकार की मनोहर ध्वनि (आवाज) निकलती है । महोक्ष तो (बड़े-बड़े) केवल घोर गंभीर शब्द करते हैं । पक्षी विषयक एक और बात है कि वन के मध्य उड़ते हुए भी पक्षियों को कोई हानि नहीं होती, क्योंकि उनके नेत्र के ऊपरी भाग में आवरण चर्म (ढकने वाली त्वचा) होती है, जो मनुष्यों के नेत्र में नहीं है । ऐसी चमड़ी से भी उनकी दृष्टि (देखने की शक्ति) में व्याघात (बाधा) नहीं है । क्योंकि अनेकों पक्षी दूरदर्शी होते हैं । उनके कान केवल छिद्र मात्र रोम से ढके हुए हैं, जिससे उड़ते समय वायु विघ्न नहीं करती ।

शिष्यः—खाद्यवस्तु चर्वणार्थं पक्षिणां दन्तो नास्तीति मयैतद्दृष्टं ।

शिष्य—भोज्य पदार्थ को चबाने के लिये पक्षियों के दांत नहीं है, मैंने ये देखा है ।

गुरुः—तत् सत्यं किन्तु खाद्यवस्तु खण्डयितुं तेषां चञ्चुरस्ति। ये च पक्षिणो जलमध्ये भक्ष्यं लभन्ते चञ्चुस्तेषां दीर्घा वर्त्तते। ये च धान्यादि शस्यं भक्षयन्ति तेषां चञ्चुः खर्वा भवति वृहत् पक्षिणां चञ्चुर्लौहवत् कठिना।

गुरु—वह सत्य है किन्तु खाद्य पदार्थ को तोड़ने के लिये उनकी चोंच है और जो पक्षी जल में भक्ष्य (खाद्य पदार्थ) प्राप्त करते हैं उनकी चोंच लम्बी होती है और जो धान्यादि अन्न खाते हैं, उनकी चोंच खण्डन करने में सक्षम होती है। बड़े पक्षियों की चोंच लोहे के समान कठोर होती है।

शिष्यः—आहार विरहे कतिचित् पक्षिणः किं न म्रियन्ते ?

शिष्य—आहार के विरह में अर्थात् भोजन बिना क्या पक्षी मरते नहीं हैं ?

गुरुः—मयैतन्निश्चीयते विनाहारेण ते न म्रियन्त इति किन्तु समयविशेषे क्वचिदपि घटते। एतदपि विवेचनीयमस्ति ये ये पक्षिणः शीतसमयोपयोगार्थं भक्ष्यं न सञ्चिन्वन्ति तस्मिन् कालेपि ते भक्ष्यमुचितं लभन्ते यस्मात् परमेश्वरः क्षुद्रानपि चटकादीन् न विस्मरति। ये च पक्षिणो निजदेशे समुचित भक्ष्यं न लभन्ते ते च देशान्तरं गत्वा प्राणान् धारयन्ति एतेषामाख्या भ्रमणपक्षीति प्रोच्यते तत् प्रकारास्तु वक्र, सारस, कुररी, खञ्जनादयः। एते पक्षिणः समयानुसारे स्वदेशं विहाय समुचित देशान्तरं गच्छन्ति। समतीते तस्मिन् काले पुनः स्वदेशमायान्ति।

गुरु—मेरा ऐसा विचार है कि बिना आहार के वे नहीं मरते हैं, किन्तु समय विशेष में कभी घटित भी हो जाती है, अर्थात् मर जाते हैं। ये भी विवेचनीय है कि जो-जो पक्षी शीत समय के उपयोग के लिये भोज्य पदार्थ का संचय नहीं करते उस समय भी वे भोज्य उचित

रूप में प्राप्त करते हैं, क्योंकि परमेश्वर छोटे भी पक्षियों को नहीं भूलता है। जो पक्षी अपने देश में समुचित भोज्य प्राप्त नहीं करते वे दूसरे देश में जाकर प्राणों को धारण करते हैं (इसीलिये) इनको भ्रमणपक्षी कहते हैं। उस प्रकार के तो बगुला, सारस, कुररी और खञ्जन आदि हैं। ये पक्षी समयानुसार अपने देश को छोड़कर समुचित दूसरे देश को चले जाते हैं। उस समय के बीत जाने पर पुनः स्वदेश आ जाते हैं।

शिष्य:—एषा परमाश्चर्य कथा यन्महासमुद्रमुत्तीर्य केनरूपेण ते देशान्तरं गच्छन्ति ?

शिष्य—ये बड़े आश्चर्य की बात है कि बड़े समुद्र को पार करके वे दूसरे देश को किस प्रकार जाते हैं ?

गुरु:—तेषां स्वाभाविक एव बोधो विद्यते येन गमनकाले समुचितं वर्त्म विज्ञातुं शक्यते। पश्य गगनचारिणी बकश्रेणी निजगमनकालं निश्चिनोति एवं कुररी सारस निज प्रस्थानकालं प्रतीक्षन्ते।

गुरु—उनको स्वभावतः ज्ञान होता है जिससे गमन काल में उचित मार्ग जान सकते हैं। देखो आकाश विहारिणी बगुलियों की पंक्ति अपने गमनकाल (देशान्तर जाने का समय) का निश्चय कर लेती है और कुररी सारसादि अपने प्रस्थान काल की प्रतीक्षा करते हैं।

卐

अथाष्टम कथोपकथनं

(मत्स्य विषयकं)

शिष्यो वदति—हे महाशय ! सम्प्रति वयं किं विषयकं विवेचयामः ?

शिष्य कहता है—हे महोदय अब हम किससे संबधित विषय का विवेचन करें ?

गुरुर्वदति—यदि युष्माकमिच्छा जायते तर्हि जलजन्तुविषयकं वयं विवेचयामः। यस्मिञ्जले निमज्य संरुद्धवायवो वयं तत्-क्षणाद् प्राणांस्त्यजामस्तत्र च जले ते सर्वदा निवसन्ति। भूमौ यथा वयं वस्तु शक्नुमस्तथा ते वस्तु न शक्नुवन्ति एतादृक् मत्स्य विषये त्वया किं बुद्धं। किमेतदाश्चर्यं न भवति ? पश्य च कोटि कोटि मत्स्या जले निवसन्ति।

गुरुदेव बताते हैं—यदि तुम्हारी इच्छा है तो हम जलतन्तु विषयक विवेचन करें। जिस जल में डूबकर वायु के रुक जाने से हम तत्क्षण (अपने) प्राणों को छोड़ देते हैं, वहाँ वे सदैव निवास करते हैं। जैसे हम भूमि पर रह सकते हैं, वैसे वे नहीं रह सकते इस प्रकार के मत्स्य के सम्बन्ध में तुम्हें कुछ ज्ञात है। क्या ये आश्चर्य की बात नहीं है और फिर देखो, करोड़ों मछलियाँ जल में निवास करती हैं।

शिष्यः—मत्स्यगणः केनरूपेण निर्णीयते ?

शिष्य—मत्स्यगणों का किस रूप में (किस प्रकार) निर्णय किया जाता है ?

गुरुः—तेषां शरीरगतानुपक्षैरर्थात् कानुकेति धीवरजातिषु प्रसिद्धैस्ते निर्णीता भवन्ति विशेषस्थानाऽवस्थितैस्तैरनुपक्षैस्ते च विशेषाख्यां लभन्ते। यथा वक्षस्थलस्थानुपक्षोदरस्थानुपक्षः गुह्य देशस्थानुपक्ष पुच्छभाग स्थाननुपक्ष प्रभेदैः।

गुरु—उनका शरीरगत अनुपक्षों से कानुकों से जो धीवर जाति में प्रसिद्ध हैं उनसे निर्णय होता है। विशेष स्थान पर अवस्थित उन अनुपक्षों से उनकी विशेष संज्ञा पड़ जाती है। वक्षस्थल के अनुपक्ष-उदरस्थ-अनुपक्ष, गुह्यदेशस्थ अनुपक्ष पुच्छभागस्थ अनुपक्ष भेदों से विशेष नाम पड़ते हैं।

शिष्यः—पशूणां यथा चरणानि तथा किं मत्स्यानामनुपक्षा भवन्ति ?

शिष्य—पशुओं के जैसे पैर होते हैं वैसे ही क्या मछलियों के अनुपक्ष होते हैं ?

गुरुः—यथा पशूनां चरणं तथा मत्स्यानां गुह्य देशस्थपक्षोऽस्ति एवमनुपक्षस्थाने नाऽनुपक्ष विद्यमानत्वेन च मत्स्य जातेर्वर्गा विभक्ता भवन्ति।

गुरु—जैसे पशुओं के चरण वैसे मछलियों के गुप्तदेशीय पंख हैं। इस प्रकार अनुपक्षों के स्थान से अनुपक्षों की विद्यमानता के आधार पर मत्स्य जाति के वर्गों का विभाजन होता है।

शिष्यः—मत्स्य जातेः कतिवर्गाः सन्ति ?
शिष्य—मत्स्य जाति के कितने वर्ग हैं ?

गुरुः—मत्स्यानां वर्गाः षट् सन्ति।
गुरु—मत्स्यों के छै वर्ग हैं।

प्रथम वर्ग्यास्तु येषां वक्षस्थलेऽनुपक्षो नास्ति। यथा कुञ्च पंक्‍यादयः।

द्वितीय वर्ग्यास्तु येषामुदरस्थानुपक्षो वक्षस्थलस्थानुपक्षस्याग्रे तिष्ठति यथा गाध मत्स्यादयः।

तृतीय वर्ग्यास्तु येषामुदर प्रदेशस्थानुपक्षो वक्षस्थानुपक्षादधो तिष्ठति यथा क्षुद्रचन्द्र पारावतचन्द्र मत्स्यादयः।

चतुर्थ वर्ग्यास्तु येषामुदर वर्त्यनुपक्षो वक्षस्थल स्थानुपक्षात् पश्चात् भागे तिष्ठति यथा मृद्‌गिल क्षुद्रतदाकार मीनादयः। एतद्वर्गचतुष्टय भिन्नं वर्ग-द्वयन्तु येषां शरीर मध्येऽस्थि संघ परिवर्तेनोपास्थि संघो विद्यते एतद्वर्ग-द्वय मध्ये प्रथम वर्गस्योपक मत्स्यः। शेष वर्गा धङ्गरादयः।

प्रथम वर्गीय तो जिनके वक्षस्थल में अनुपक्ष नहीं है। जैसे—कुञ्चपङ्क्ती प्रभृति।

द्वितीय वर्ग के मत्स्य वे हैं जिनके उदरस्थ अनुपक्ष वक्षस्थल अनुपक्ष के आगे रहता है—जैसे गाध मत्स्य आदि।

तृतीय वर्ग के वे हैं जिनके उदर प्रदेश का अनुपक्ष वक्ष के अनुपक्ष के नीचे रहता है जैसे—क्षुद्र चन्द्र-पारावत चन्द्र मत्स्य आदि।

चतुर्थ वर्ग के वे हैं जिनके उदरवर्ती अनुपक्ष वक्षस्थित अनुपक्ष के पीछे के भाग में रहता है जैसे—मृद्‌गिल-क्षुद्र और वैसे अन्य मत्स्य इस चार वर्ग से भिन्न दो वर्ग में जिनके शरीर मध्य में अस्थि संघ परिवर्तनीय होता है इस वर्ग द्वय में प्रथम वर्ग का ऊपक मत्स्य है शेष वर्ग धङ्गरादि हैं।

शिष्यः—मत्स्य वर्गानां निर्मित विधौ काचिदसाधारण कथाऽस्ति?

शिष्य—मत्स्य वर्गों के निर्माण विधि के सम्बन्ध में क्या कोई असाधारण वार्ता है ?

गुरुः—वर्तते यथोड्डीनार्थं पक्षिणां निर्मितिराश्चर्य रूपेणाऽभवत् तथा मत्स्य गणार्थं न। पक्षिणो हि गगनमण्डलात् उड्डयिष्यन्ते मत्स्यास्तु जलमध्ये भ्रमिष्यन्तीत्येवार्थमूद्ध्र्वमधश्च गत्यर्थं पक्षिणां विशेष रूपेण सृष्टिरभवत्। यच्च शरीरं निर्मलं दीर्घाकारमग्रभागमारम्य पुच्छदेश पर्य्यन्तं क्रमेण सूक्ष्मञ्च तत् शरीरं जलमध्ये गन्तुं भद्रं भवति। इत्यस्मादेव मत्स्य जातेः शरीरं तथाकारमभूदिति।

गुरु—है जिस प्रकार से उड़ने के लिये पक्षियों की निर्मिति आश्चर्य रूप मे हुई। वैसे मत्स्यगणों की नहीं। पक्षी तो आकाश मण्डल में उड़ेंगे मत्स्य तो जल में घूमेंगे इसी निमित्त ऊपर और नीचे की गति के लिये पक्षियों की विशेष रूप से सृष्टि हुई और जो शरीर निर्मल तथा लम्बे आकार वाले अग्रभाग से लेकर पुच्छभाग पर्यन्त क्रमशः सूक्ष्म होता है, वह शरीर जल के मध्य में जाने योग्य होता है, इसीलिये मत्स्य जाति का शरीर उस आकार का बना।

शिष्यः—जलाऽभ्यन्तरे मत्स्यगणः केनरूपेण श्वास प्रश्वासौ त्यजति ?

शिष्य—जल के भीतर मत्स्यगण किस प्रकार श्वास-प्रश्वास छोड़ता है ?

गुरुः—नहि ते मनुष्यवद्भवन्ति परन्तु जलमध्ये यो वायुरस्ति स हि तेषां मुखविवरतः प्रविश्य चिवुकोद्ध्र्व विवरेण निर्गच्छति एतस्मादेव ते जीवन्ति।

गुरु—वे मनुष्य के समान नहीं होते हैं, परन्तु जल के मध्य में जो वायु है वह ही उनके मुख विवर (छिद्र) से प्रवेश करके चिवुक अर्थात्

टोड़ी के ऊपरी छिद्र से निकल जाती है, इसी प्रकार से ही वे जीवित रहते हैं।

शिष्य:—मत्स्यानां किमिन्द्रियमस्ति ?

शिष्य—क्या मछलियों की इन्द्रिय है ?

गुरु:—अस्ति तेषां नासिका, तस्मादस्माकं बोधो भवति यत्तेषां घ्राणेन्द्रियमस्ति एवं मनुष्य जातेः स्पर्शाऽपेक्षया तेषां स्पर्शः किञ्चिदधिकः यतो वायुगतो यः शीतत्वोष्णत्वगुणस्तं ते झटित्यऽनुभवन्ति । एवं जलमध्ये तेषां दृष्टिविघातो यथा न भवति तेनैव तेषां चक्षुर्विशेषेणाश्चर्य्यं निर्मितमभूत् ।

गुरु—उनकी नाक है अतः हमें ज्ञात होता है कि उनकी घ्राणेन्द्रिय है एवं मनुष्य जाति के स्पर्श की अपेक्षा उनका स्पर्श कुछ अधिक है, क्योंकि वायुगत जो शीतलत्व अथवा उष्णत्व गुण हैं, उनका वे शीघ्र ही अनुभव कर लेती हैं। तथा जल के बीच में उनकी देखने की शक्ति का जिससे नाश नहीं होता, उस प्रकार से ही उनके नेत्र विशेष आश्चर्य मय ढग से बनाये गये हैं।

शिष्य:—मत्स्यानां शरीरस्थेनामिषेण किं प्रयोजनम् ?

शिष्य—मछलियों के शरीरस्थ मांस से क्या प्रयोजन ?

गुरु:—जलगत गुरुत्वेन तेषां शरीरे यथा भारलग्नं न भवति एवं शीतेन ते यथा कातर्य्यं न व्रजन्त्येतस्मादेवामिषजातं निर्मितमभूत ।

गुरु—जलगत गुरुता (भारीपन) से उनके शरीर में जिससे भार प्रतीत नहीं होता और जिससे शीतकाल में वे कातरता को प्राप्त नहीं होतीं इसी निमित्त मांस से बनी ।

शिष्य:—केनरूपेण ते जलमध्ये वेगेन व्रजन्ति ?

शिष्य—वे जल में किस प्रकार से वेगपूर्वक चलती हैं ?

गुरुः—पुच्छेन व्रजन्ति यतः पुच्छचालनेन ते पुरोभागे स्वात्मानं चालयन्ति ।

गुरु—पूंछ से चलती हैं क्योंकि पूंछ के चलाने से वे आगे अपने को चलाती हैं ।

शिष्यः—तेषां कानुकेति लोकप्रसिद्धे नाऽवयवेन किं प्रयोजनमिति ?

शिष्य—उनके 'कानुक' इस लोक प्रसिद्ध अवयवसे क्या प्रयोजन है?

गुरुः—तेनेदं प्रयोजनं तेन च समानाभूत्वा तेऽधोमुखे गच्छन्ति एवमितस्ततो गन्तुं जलान्तरे च स्थिरा भूत्वा स्थातुं शक्नुवन्तीति ।

गुरु—उससे ये प्रयोजन है कि वे उससे समान (सम) होकर वे नीचे जाती हैं और इधर-उधर जाने के लिये, जल में स्थिर होकर बैठ (ठहरने) सकती हैं ।

शिष्यः—केनप्रकारेणोद्ध्वंमधश्च जले ते गच्छन्ति ?

शिष्य—वे किस प्रकार से जले में ऊपर नीचे चली जाती हैं ।?

गुरुः—तेषामुदरे पट्केति प्रसिद्धो योऽवयवो विद्यते तश्चते-स्वेच्छावशात् विस्तारयितुं सङ्कोचयितुं च शक्नुवन्ति ।

गुरु—उनके पेट में पट्का (नामक) इस प्रकार प्रसिद्ध जो अवयव है उसको वे अपनी इच्छा से विस्तृत और सिकोड सकती हैं ।

शिष्यः—तेन पट्काख्याऽवयवेन तैः केनरूपेणोद्ध्वंमधश्च गन्तुं शक्यते ?

शिष्य—उस पट्का नामक अवयव (अङ्ग विशेष) से वे किस प्रकार ऊपर नीचे जा सकती हैं ?

गुरुः—यदा ते स्वोदरस्थं पट्काख्याऽवयवं विस्तारयन्ति तदा नीरादपि लघवोभूत्वोद्ध्र्वं देशं गच्छन्ति यदा तं सङ्कोचयन्ति तदा गुरुतां प्राप्याऽधो गच्छन्ति।

गुरु—जब वे अपने उदर में स्थित पट्का नामक अङ्ग को विस्तृत करती हैं, तब जल से भी हल्की होकर ऊपरी भाग में चली जाती हैं और जब उसको संकुचित कर लेती हैं, तब भारीपन को प्राप्त होकर नीचे चली जाती हैं।

शिष्यः—मत्स्याः किं भुक्त्वा जीवन्ति ?
शिष्य—मछली क्या खाकर जीवित रहती हैं ?

गुरुः—कीटान् मक्षिकां जलज नवीन वृक्षांश्च भक्षयित्वा जीवन्ति एवं महान्तो मत्स्याः क्षुद्रान् मीनान् भक्षयन्ति क्षुद्रमत्स्यास्त्वसंख्येया जायन्ते।

गुरु—कीट (कीड़े) मक्खी और जल में उत्पन्न होने वाले नवीन (नये) वृक्षों को खाकर जीवित रहती है और बड़ी मछलियाँ छोटी-छोटी मछलियों का भक्षण करती हैं। छोटी मछलियाँ तो असंख्य उत्पन्न होती हैं।

शिष्यः—कस्य कस्य मत्स्यस्य वहून्यण्डानि जायन्ते ?
शिष्य—किस-किस मछली के बहुत से अण्डे उत्पन्न होते हैं ?

गुरुः—एकस्य वालुकाख्य मत्स्योदरे सार्द्ध द्विसहस्त्र जीवजनकान्यण्डानि जायन्ते। एवमेकस्य सङ्कराख्य मत्स्यस्योदरमध्ये सार्द्धैक कोटि जीवजनकान्यण्डानि संजायन्ते तथैकस्य गाधमत्स्यस्य गर्भे नवकोटि जीवजनकान्यण्डानि प्रजायन्ते। एवमेकस्येल्लीशेति प्रसिद्धस्य मत्स्य राजस्येदृगेवाण्डं भवतीत्थमनुमीयतेऽस्माभिरिति।

गुरु—बालुक नाम के मत्स्य के उदर में २५०० जीवजनक अण्डा होते हैं। मङ्कर मत्स्य के डेढ़ करोड़ अण्डा और गाध मत्स्य के गर्भ में ९ करोड़ अण्ड होते हैं। 'इव्लीश' नामक मत्स्य के भी इतने ही अण्ड होते हैं।

शिष्यः—यथासमयविशेषे पक्षिणोदेशान्तरं भ्रमन्ति तथा किं मत्स्यगणो न ?

शिष्य—जैसे समय विशेष में पक्षिगण देशान्तर को जाते हैं क्या वैसे मत्स्यगण नहीं ?

गुरुः—पापदमेकटेव्लीशतपखि प्रभृतयो मत्स्यास्तद्रूपं भ्रमन्ति कियन्तो वा समुद्रात् नदीषु समागच्छन्ति कियन्तो वा समय-विशेष समुद्रमध्येप्येकत्र मिलन्ति एवन्ते स्वकीय स्वभाववशादीदृशं भ्रमन्ति।

गुरु—पापद-मेकट-इव्लीश····आदि मछलियाँ उस प्रकार घूमती हैं कितनी तो समुद्र से नदियों में आ जाती हैं कितनी समय विशेष में समुद्र में एक स्थान पर मिलती हैं। इस प्रकार वे अपने स्वभाववश ही इस प्रकार घूमती हैं।

शिष्यः—मनुष्यार्थं कीदृशमसंख्यं खाद्यं वस्तु परमेश्वरेण प्रस्तूयतेस्म ?

शिष्य—मनुष्यों के लिये किस प्रकार असंख्य खाद्य वस्तु परमेश्वर ने प्रस्तुत कीं ?

गुरुः—त्वया तद्दृश्यते च परमेश्वरोऽस्मान् प्रति कीदृग्दयालु रनुग्रहशीलश्च विद्यते स एवाऽस्माकं सर्वं दत्तवान्। यावन्तोमेषा गावश्च विद्यन्ते तृणभूमिषु यावन्तः पशवः सन्ति विदन्ति च यावान् पक्षिगणोऽस्ति जलेषु च यावन्तो मत्स्याः सन्ति तान् सर्वानेवाऽस्माकं परमेश्वरो दत्तवान्।

गुरु—तुम देखते हो परमेश्वर ने जो हमारे प्रति परमदयालु है उसने ही हमको सब दिया जितनी गाय हैं तृणभूमि में जितने पशु हैं, आकाश में जितने पक्षी हैं और जल में जितनी मछलियाँ हैं, वे सब परमेश्वर ने हमको प्रदान किया।

⁂

अथ नवम कथोपकथनम्

(पतङ्ग विषयकं)

गुरुर्वदति—वयमिदानीं क्षुद्रजन्तु विषयकं विवेचयामः । त्वया पतङ्ग विषयकं किमपि बुद्धं ?

गुरु कहते हैं—अब हम छोटे जन्तुओं के विषय में विवेचन करते हैं । तुम पतङ्गों के विषय में कुछ जानते हो ?

शिष्योवदति—मया पतङ्ग विषयकं अल्पमालोचितमतः सम्यक् ज्ञातुमशक्तं ।

शिष्य कहता है—मैंने पतङ्गों के विषय में थोड़ा विचार किया है, अतः भली प्रकार जानने में असमर्थ हूं ।

गुरुः—परमेश्वरीय विसृष्टा क्षुद्रानपि जन्तूनवज्ञातुमुचितमिति ।

गुरु—परमेश्वर द्वारा रचे गये छोटे भी जन्तुओं को जानना उचित है ।

शिष्यः—तर्हि मामनुग्रहं विधाय त्वं कथयिष्यसि सन्ति कति वर्गाः पतङ्गस्येति ?

शिष्य—तो मुझ पर कृपा करके आप बतलायेंगे कि पतङ्गों के कितने वर्ग हैं ?

गुरुः—तेषां सप्तैव वर्गाः सन्ति ।

गुरु—उनके सात ही वर्ग हैं ।

शिष्य:—ते च केन प्रकारेण विभक्ता भवन्ति ?

शिष्य—और वे किस प्रकार से विभक्त होते हैं ?

गुरु:—पक्षस्य संख्यया गुणेन च तथा पक्षस्याऽसत्वया च ते विभक्ता भवन्ति ।

गुरु—पंखों की संख्या से, गुण से तथा पंखों के न होने से वे विभक्त होते हैं ।

शिष्य:—एतेषां वर्गाणां विवृतिस्त्वया किं कथयिष्यते ?

शिष्य—इन वर्गों के बारे में आप क्या बतलायेंगे ? (बतलाने की कृपा करेंगे ?)

गुरु:—ईदृशोऽयं प्रथमवर्ग: येषां पक्ष: शृङ्गवत् कठिन: यथा गोमय कीटादि: । एतेषां पक्षाश्चत्वार: द्वौ तूपरिस्थौ पक्षौ केवलमावरणार्थकौ द्वौ चापरौ प्रकृतौ वस्त्रविशेषापेक्षया सूक्ष्मतरौ ।

द्वितीय वर्गस्तु येषां पार्श्वद्वये चावरणार्थ पक्षद्वयं यथाशलभ वादूं ल पतङ्गादि ।

तृतीय वर्गस्तु येषां पक्ष: खगलोमाकारो धूलिवर्णश्चन्द्रकेन व्याप्तश्च भवति । यथा स्वनाम प्रसिद्ध प्रजापति प्रभृति: ।

चतुर्थ वर्गश्च येषां पक्ष आदर्शवत् स्वच्छोऽतिसूक्ष्म चर्माकारश्च भवति एवं तेषां शूको नास्ति यथा झिल्वीति नाम्ना प्रसिद्धादि: ।

पञ्चम वर्गस्तु येषां पक्ष: सूक्ष्म चर्माकृतिरेवं ते शूकविशिष्टा: यथा वरटा, भ्रमर, पिपीलिका विशेषादय: ।

षष्ठ वर्गस्तु येषां द्वौ पक्षौ यथा मक्षिका मशकादय: ।

सप्तम वर्गश्च येषां पक्षो नास्ति यथा कर्कट घुणा कीटादयः। अस्मिन् सप्तम वर्गे कर्कट; चिङ्गड, वृहच्चिङ्गड; कर्कट वृश्चिकादयो वेदितव्याः।

गुरु—यह प्रथम वर्ग इस प्रकार का है जिनके पंख सींग के समान कठोर हैं, जैसे गोमय कीटादि। इनके चार पंख हैं दो ऊपरस्थित पंख केवल आवरण (ढकने) हेतु और दूसरे दो प्रकृत (स्वाभाविक) वस्त्र विशेष की अपेक्षा सूक्ष्मतर होते हैं।

दूसरे वर्गीय तो (वे हैं) जिनके दोनों ओर आवरण के लिये दो पंख हैं जैसे—पतङ्गा।

तृतीय वर्गीय तो वे हैं जिनके पंख पक्षियों के रोम के आकार के होते हैं धूलि वर्ण से व्याप्त होते हैं जैसे प्रजापति।

चतुर्थ वर्गीय जिनके पंख दर्पण के समान स्वच्छ; अति सूक्ष्म और चर्माकार होते हैं जैसे झिल्ली आदि।

पञ्चम वर्गीय तो वे हैं जिनके पंख सूक्ष्म चर्माकृति के हैं वे शूक विशिष्ट हैं जैसे वरटा-भ्रमर-पिपीलिका विशेष।

षष्ठ वर्गीय तो जिनके दो पंख हैं जैसे—मक्खी मच्छर आदि।

सातवें में वे हैं जिनके पंख नहीं हैं—जैसे—कर्कट-घुण आदि इस सातवें वर्ग में कर्कट-चिङ्गड-वृहच्चिङ्गड, कर्कट-बिच्छू आदि जानने चाहिये।

शिष्यः—एतेषां पतङ्गवर्गाणां जीवद्दशायां न किं नानाविकारा जायन्ते?

शिष्य—इन पतङ्ग वर्गों के जीवन के दशा में क्या अनेकों विकार उत्पन्न नहीं होते?

गुरुः—येऽप्यण्डाज्जायन्ते ते च जीवद्दशायां चतुरो विकारान् प्राप्नुवन्ति आदावण्डं जायतेऽनन्तरं शूककीटो भवति ततोगुटिका

बध्नाति तस्मिन् काले निष्पन्दः सन्तिष्ठति। ततः सम्पूर्णे समये सम्पूर्ण पतङ्गो जायते।

गुरु—जो अण्ड से उत्पन्न होते हैं जीवित दशा में चार विकारों को प्राप्त करते हैं। पहले अण्डा फिर शूककीट होता है, तब गोली बांधता है, उस काल में निष्पन्द रूप में वह रहता है तदनन्तर सम्पूर्ण पतंग होता है।

शिष्यः—कस्मिन् कस्मिस्थाने पतङ्गास्तिष्ठन्ति ?

शिष्य—किस-किस स्थान पर पतंगे रहते हैं ?

गुरुः—ते च सर्वत्र तिष्ठन्ति पश्य च आकाशे पृथिव्यां जले काष्ठे पाषाणे शंखे वालुकायाञ्चेति सर्वत्रैव ते तिष्ठन्ति।

गुरु—वे सब जगह रहते हैं 'देखो' आकाश में, पृथ्वी पर, जल में, काठ (लकड़ी) में; पत्थर में, शंख में और बालू में इस प्रकार वे सर्वत्र रहते हैं।

शिष्यः—किं भक्षयन्ति पतङ्गाः ?

शिष्य—पतंगे क्या खाते हैं ?

गुरुः—ते प्रायः सर्वाणि वस्तूनि भक्षयन्ति। पश्य हि मांस मत्स्य, पुष्प, शाक, कर्दम जलीयाविलान्येतानि सर्वाणि ते भक्षयन्ति।

गुरु—वे प्रायः सभी वस्तु खाते हैं। देखो मांस, मछली, फूल, सब्जी, कन्द, जल में उत्पन्न पदार्थ आदि सब वे खाते हैं।

शिष्यः—तेषां शरीरे कतिचिदङ्गान्याश्चर्य भूतानि सन्ति ?

शिष्य—उनके शरीर में कुछ अंग आश्चर्यमय बने हुए हैं ?

गुरुः—तेषां चक्षुः पक्षो वर्णश्च येन वा ते दशन्ति रक्षन्ति चात्मानमेतानि सर्वान्यङ्गान्याश्चर्यभूतानि सन्ति। यदि त्वं

सूक्ष्मेण दूरदर्शन यन्त्रेण निरीक्षसे तर्हि तत् द्रष्टुं शक्नोसि पक्षोपरि प्रजापतेर्यदस्माभिर्धूलिवत् बुध्यते तत् सर्वं तेषामति सुन्दरं लोमजातमनुक्रमेण विद्यते तेषां चरणमपि विवेचनीयमस्ति पश्य मक्षिका गणोगवाक्षदण्डादौ दण्डायमान उत्तिष्ठते एवं प्रासादादि भित्तावूर्द्ध्व मुखेन गन्तुं शक्नोति ।

गुरु—उनके नेत्र, पङ्ख और वर्ण अथवा जिससे वे काटते हैं, और अपने आप की रक्षा करते हैं, ये सभी अंग आश्चर्यमय हैं। यदि तुम सूक्ष्म दूरदर्शन यन्त्र से निरीक्षण करोगे तो उसे देख सकते हो कि प्रजापति के पङ्ख के ऊपर जिसे हम धूलि समझते हैं, वह सब उनके अति सुन्दर रोम हैं। उनके चरण भी विवेचनीय हैं, देखो मक्खी आदि का गण गवाक्षदण्ड आदि में दण्डायमान उठता है और मकान की भीतों पर ऊँचा मुख करके भी चल सकता है।

शिष्यः—ते च केन प्रकारेणैतादृशं गन्तुं शक्नुवन्ति ?

शिष्य—वे किस प्रकार से अर्थात् कैसे इस तरह जा सकते हैं ?

गुरुः—तेषां चरणे श्लिष्ट निर्जासवत् किमपि वस्तु वर्तते येन च तद्रूपेण धर्तुं ते शक्नुवन्ति। अपरञ्च यत् किमपि वस्त्वऽस्माकं गोचरे समानं सुनिर्मलं चिक्कणञ्च भाति तत्तु तेषां गोचरे ईष्टककर्कशरूपं भाति यत्ते क्षुद्रेण कोमल चरणेनानायासैराकर्षितुं तत् शक्नुवन्ति ।

गुरु—उनके पैर में लगी हुई कोई वस्तु है जिससे वे उस प्रकार से पकड़ सकते हैं। और भी, जो कोई वस्तु हमारी दृष्टि में सम, स्वच्छ और चिकनी शोभित होती है (दीख पड़ती है) वह तो उनकी दृष्टि में ऐसी कठोर मालुम होती है कि वे छोटे कोमल चरण से बिना प्रयास के ही उसे आकृष्ट (खींच) कर सकते हैं।

शिष्यः—तेषां जन्म केन प्रकारेण भवति ?

शिष्य—उनका जन्म किस प्रकार से होता है ?

गुरु:—अण्डाज्जन्म भवति तेषामण्डानि चासंख्येयानि जायन्ते। प्रस्फोटनात् प्राक् निभृतदेशेऽण्डानि रक्षन्ति।

गुरु—अण्डा से जन्म होता है और उनके अण्डे असंख्य उत्पन्न होते हैं। फूटने से अर्थात् अण्डों के फटने से पूर्व एकान्त में रक्षा करते हैं।

शिष्य:—न किं वहव: पतङ्गा हिंस्रा: सन्ति ?

शिष्य—क्या बहुत से पतंगे हिंसक नहीं है ?

गुरु:—सन्तीति सत्यं तत्र संशयो नास्ति शलभेति प्रसिद्धं शस्यभुक् पतङ्गवृन्दं शूककीटश्चेव मादयो हिंस्रा वेदितव्या:। तेभ्योऽधिका हानिर्यथा न भवेत् तदर्थं पक्षिगणस्तान् भक्षयन्ति परन्तु वयं यं गुटिका कीटं हिंस्रं कथयाम: तस्मान्महत् प्रयोजनमस्माकं एवं मनसि मे चेदृक् निश्चयोऽस्ति अपरापरेभ्योऽपि कीटेभ्य उपकारो भवति फलतस्तदस्माभिर्न ज्ञायते। प्रायश: पतङ्गजातयो महाकर्मशीला भवन्ति। पश्य मधुमक्षिकाणां प्रयत्नाद् अस्माभिर्मधु मधून् सृष्टञ्च लभ्यते उष्णमधु चक्राभ्यन्तरे मधुतिष्ठति।

गुरु—है, यह सत्य है। इसमें संशय नहीं है, शलभ इस नाम से प्रसिद्ध शस्य खाने वाला पतंग समूह, शूक कीट को हिंसक जानना चाहिये। उनसे अधिक हानि न हो उसी कारण पक्षीगण उनको खाते हैं, परन्तु हम जिस गुटिका कीट को हिंसक कहते हैं, उससे हमको महान् प्रयोजन है, इस प्रकार मन में सोचता हूं और ऐसा निश्चय है, अर्थात् यह भी निश्चित है कि अन्य दूसरे कीटों से भी उपकार होता है, फलत: वह हमारे द्वारा ज्ञात नहीं है। प्राय: पतंग जाति के बहुत कर्मशील होते हैं। देखो, मधुमक्खियों के प्रयास से हमें शहद और शहद का छत्ता मिलता है गर्म मधु (ताजा शहद) चक्र के भीतर रहता है।

शिष्यः—यन्न मनुष्यैः कर्तुं शक्यते तत् किं मधुमक्षिकाभिः क्रियते ताभिर्वा केन प्रकारेण मधून्युत्पाद्यते ?

शिष्य—जो मनुष्य नहीं कर सकते वह क्या मधुमक्खियों द्वारा किया जाता है अथवा वे किस प्रकार से शहद बनाती हैं ?

गुरुः—परितो नानास्थाने बंभ्रमित्वा ताभिः शूकाग्रेण क्षेत्राद्वनादुपवनाच्च पुष्परसः क्रमेणाहृत्य चक्रमध्ये संगृह्यते ।

गुरु—चारों ओर अनेक स्थानों में घूमकर वे शूक के अग्रभाग से खेतों से, वन से और उद्यान से फूलों का रस क्रम से लाकर चक्र में एकत्र करती हैं ।

शिष्यः—ताभिरात्मनिर्मित चक्रं किं ज्ञातुं शक्यते तत्र किं ताः सर्वदा तिष्ठन्ति ।

शिष्य—स्वयं निर्मित चक्र को वे कैसे जान सकती है वहाँ क्या वे हमेशा रहती हैं ?

गुरुः—मधुमक्षिकास्तु सुशासित प्रजावत् जन्तवः तासां मध्ये चैकाराज्ञी विद्यते तदधीनास्ताः सर्वास्तिष्ठन्ति । एताः कर्मशीला मक्षिका यादृशो नियमादेशौ लभन्ते तं तं गृहीत्वा पालयन्ति । आत्मीय वर्ग हितार्थं ताः सर्वा यतन्ति एवं परस्परोपकाराय ताश्चेष्टयन्ति । ताभिश्च वयं वह्वनुपदेशान् प्राप्तुं शक्नुमः । पश्य च यदि ताः पुञ्जीभूय मधुचक्रं प्रति धावन्ति तर्हि तूर्णं वृष्टि सम्भावनाऽनुमीयते ।

गुरु—मधुमक्खी तो सुशासित प्रजा के समान जन्तु हैं । उनके मध्य एक साम्राज्ञी होती है, उसके आधीन वे सभी रहती हैं । ये कार्यशीला मक्खियाँ जैसा नियम, आदेश प्राप्त करती हैं, उसको ग्रहण करके (शिरोधार्य करके) पालन करती हैं । अपने वंश की रक्षा अथवा हित

के लिये वे सभी प्रयास करती हैं । इस प्रकार परस्पर उपकार करने की चेष्टा करती हैं । उनसे हम बहुत से उपदेश प्राप्त कर सकते हैं । देखो, यदि वे एकत्र होकर मधुचक्र के प्रति दौड़ती हैं तो शीघ्र ही वर्षा की सम्भावना का अनुमान किया जाता है ।

शिष्यः—यश्च ता नाशयन्ति न किं तत् निष्ठुरं कर्म तासाञ्च यत् सञ्चित धनमपहरन्ति न किमेतदकार्यं भवति ?

शिष्य—और जो उनको नष्ट करते हैं, क्या वह निर्दय कर्म नहीं है; और जो उनके संगृहीत धन का अपहरण करते हैं क्या यह अकार्य नही हैं ?

गुरुः—तासामायास सञ्चित-मध्वपहरणेऽपि न वयं दोषभागिनो भवामः यतोहि कृत्स्नं मधु न तासां कार्योपयोगि भवति अत्राऽस्माभिर्निश्चीयते परमेश्वरेणाऽस्माकं हिताय मक्षिकाभिर्मधूनि संसृष्टानि । कथमेतासां वा वधं नाचरिष्यामः पश्य कि वयं मत्स्यान्न विनाशयामः । एकदा वहुतर मक्षिका यद्विनाशमुपयान्ति तत्राऽस्माकं श्वेदो भवतीति सत्यं एवमेकस्मिन्नब्दे ये वहवश्छागा मेषादयश्च विनश्यन्ति यदि तेऽस्माकं गोचरेष्येकदा नाशं यान्ति तर्हि वयं सखेदाः सन्तः कथयिष्याम एतदतीव निष्ठुरं कर्मेति । परन्तु क्रमशो विनाशेन न तादृक् श्वेदोऽस्माकमिति । परन्तु येन मधुमक्षिका वृन्दमहत्वा लोकैर्मधुलभ्यते अस्त्येकस्तत्रोपायः । अतस्तेनरूपेण मधुग्रहणे समीचीनं हितञ्च भवति ।

गुरु—उनके प्रयास से संगृहीत मधु (शहद) के अपहरण में भी हम दोष के भागी नहीं हैं, क्योंकि उत्पन्न अर्थात् बनाया गया शहद उनके लिये कार्योपयोगी नहीं होता । अतः हमें यह निश्चय होता है कि परमेश्वर ने हमारे हित के लिये मक्खियों से मधु (शहद) बनवाया है ।

तो फिर क्यों न हम उनका वध करेंगे और देखो, क्या हम मछलियों को विनष्ट नहीं करते। एकबार बहुत सारी मक्खियां जो विनाश को प्राप्त होती हैं उसमें हमें खेद होता है यह सत्य है, और एक ही वर्ष में अनेक भेड़-बकरी मरती हैं यदि वे हमारे सामने मरें तो हम खेदपूर्वक कहेंगे कि यह बड़ा ही निठुर कर्म है। क्रमशः नाश होते रहने पर वैसा खेद नहीं होता। परन्तु जिस मधु मक्षिका के समूह महत्व से लोक में शहद प्राप्त होता है उसके लिये एक उपाय है उससे मधु भी प्राप्त हो जाता है और विनाश भी नहीं होता।

शिष्यः—मधून्यऽपह्यते ताभिः शीतसमये केन जीव्यते ?

शिष्य—शहद के अपहरण कर लिये जाने पर शीतकाल में वे कैसे जीवित रहती है ?

गुरुः—तेषां जीवनार्थं किञ्चिदवशोषित मधुस्थापनमुचितं न चेदेवं परं तेषां प्रयोजनानुरूपं क्रमेणादातुमुचितं स्यादिति यद्येवं प्रकारेण मधुगृहीतं स्यात् तर्हि तेषां निष्प्रयोजनमवशिष्टं मधुगृहीतं भवति न कश्चिद्दोषोऽपि तत्र जायते।

गुरु—उनके जीवन के लिये थोड़ा मधु रखना ही चाहिये, शनैः शनैः मधु ग्रहण से उनकी रक्षा भी बनी रहेगी और निष्प्रयोजन अवशिष्ट मधु भी प्राप्त होगा उससे कोई दोष भी नहीं है।

शिष्यः—पिपीलिका किमाश्चर्यभूतो जन्तुर्न ?

शिष्य—क्या चींटी आश्चर्यभूत जन्तु नहीं है ?

गुरुः—पिपीलिका अपि मधुमक्षिकावत् सुशासित प्रजारूपाः क्षुद्रजन्तवः सन्ति परन्तु तासां मध्येऽयमेको विशेषस्तु तत्र राजा नास्ति ताः सर्वा एव।

गुरु—होने के समय में जब किसान अपने घर लाकर एकत्र करते

हैं, उस समय कोप से निकलकर मिट्टी में नहीं गिरते हैं और न अपहृत होते है इसी कारण कठोर छिलके से वे सुरक्षित रहते हैं।

शिष्यः—शस्यफलानि केन वर्द्धन्ते केन वा पक्वतां व्रजन्ति ?

शिष्य—शस्य फल किससे बढ़ते हैं अथवा कैसे परिपक्वता को प्राप्त होते हैं ?

गुरुः—वृष्ट्या कुझ्झटिकया च पुष्टानि भूत्वा रविकिरण सम्पर्केण क्रमशः शुष्कतां गत्वा सुपक्वानि भवन्ति यदि च छिन्नानि भूत्वा कियद्दिनं क्षेत्रे तिष्ठन्ति तर्हि विशेषेण पक्वतां यान्ति।

गुरु—वर्षा और कुहर से पुष्ट होकर सूर्य की किरणों के सम्पर्क से क्रमशः सूखकर अच्छी तरह पक जाते हैं। और यदि टूटकर (अलग होकर) कुछ दिन खेत में पड़े रहते हैं तो विशेष रूप से पक जाते हैं।

शिष्यः—शस्यकाण्डे कियन्ति फलानि जायन्ते ?

शिष्य—शस्य काण्ड में कितने फल उत्पन्न होते हैं ?

गुरुः—एकस्मिन्न तावन्ति फलानि जायन्ते यत् श्रुत्वा प्रायः कोपि नो विश्वसति। मयैतत् श्रुतं यदेकस्माद्गोधूम बीजात् शतं काण्डा अजायन्त तेषां काण्डानां शिरसि द्विसहस्र फलानि गणितान्यभवन्।

गुरु—एक से ही इतने फल उत्पन्न होते हैं कि सुनकर प्रायः कोई विश्वास नहीं करता। मैंने यह सुना है कि एक गेहूं के बीज से सैकड़ों काण्ड उत्पन्न हुए और उन काण्डों बालों के शिरो भाग पर दो हजार फल गिने गये।

⁂

अथ दशम कथोपकथनम्

(कृमि विषयकं)

गुरुर्वदति—अवशिष्ट जन्तोरर्थात् कृमेर्विषयमिदानीं वयं विवेचयामः।

गुरु कहते हैं—अवशेष जन्तु अर्थात् कृमि के विषय में अब हम विचार करते हैं।

शिष्यो वदति—कृमिजातेः कतिवर्गाः सन्ति ?

शिष्य कहता है—कृमि जाति के कितने वर्ग (प्रकार) हैं ?

गुरुः—तेषां पञ्चैव वर्गाः सन्ति।

गुरु—उनके पाँच वर्ग हैं।

प्रथम वर्गास्तु येषां शरीरं रज्जुवत् यथा महीलता गर्भकृमि प्रभृतयः।

द्वितीय वर्गास्तु येषां शरीरमनावृत्तं विशेषाऽवयवयुक्तञ्च यथा शम्बूकादयः।

तृतीय वर्गास्तु येषां शरीरं सुकोमलं शंखेनावृत्तञ्च। कृमिदेह समुत्पन्न शङ्खेन तृतीय वर्गस्तु विभक्तो भवति। शङ्खास्तु द्विविधाः। आद्यञ्च येषामेकखण्डोवयवः यथा वराटकादयः।

द्वितीयञ्च येषामवयवः खण्डद्वयेन मिलितः यथा सूक्ति प्रभृतयः।

तृतीयञ्च येषामवयवो नाना खण्डेन मिलितः। तृतीय प्रकारास्तु वहुविधो नास्ति। एषु त्रिविध शंखेषु नाना गणा नाना प्रकाराञ्च विद्यन्ते। अस्मिन् विषये यत् विशिष्ट ज्ञानं तदेव शङ्खविद्याऽभिधीयते।

चतुर्थ कृमि वर्गास्तु ये चाप्राणिवद् बुध्यन्ते यथा प्रवालादयः।

पञ्चम वर्गाञ्च प्रथमवर्ग द्वितीय वर्गाभ्यां केवलमाकारगत क्षुद्रतया विशेष्यन्ते ते चाविलजलेषु हठात् जायन्ते। केन जायन्ते तत् वक्तुमशक्यमस्माभिरिति।

प्रथम वर्गीय तो जिनके परिवार रस्सी के समान हैं जैसे—

द्वितीय वर्ग तो जिनका शरीर अनावृत्त और विशेष अवयव से युक्त है जैसे—

तृतीय वर्गीय तो जिनका शरीर सुकोमल और शंख से आवृत्त है। कृमि के शरीर में उत्पन्न शंख से (ये) तृतीय वर्ग तो विभाजित होता है। शंख तो तीन प्रकार के हैं। प्रथम जिनका एक खण्ड के अवयव है जैसे—शहद की मक्खी।

दूसरे प्रकार के जिनके—अवयय (अङ्ग) दो खण्डों से मिलकर बने हैं जैसे—शूक्ति आदि।

तीसरे प्रकार के—जिनके अवयव अनेकों खण्डों से मिलकर बने है। तीसरा प्रकार तो बहुत प्रकार का नहीं है। इन तीन शंखों में अनेक गण और अनेक प्रकार हैं। इस सम्बन्ध में जो विशिष्ट ज्ञान है। वही शंख विद्या कहलाती है।

चौथे प्रकार के कृमि (कीट) के वर्ग तो, को प्राणियों की तरह ज्ञात होते हैं जैसे—

पञ्चम वर्ग, प्रथम वर्ग और द्वितीय वर्ग से केवल आकारगत सूक्ष्मता के कारण विशेष है। वे पङ्क और जल में अचानक उत्पन्न हो जाते। किससे उत्पन्न होते हैं, वह हम नहीं कह सकते।

शिष्यः—हे महाशय ! मम बोधो भवति तर्हि सर्वेषु वस्तुषु प्राणाः सन्तीति ?

शिष्य—हे महोदय! मुझे बोध होता है कि तो (क्या)सभी वस्तुओं में प्राण हैं।

गुरुः—एतत् कृमि जाततोपि क्षुद्रतराऽपरा जन्तुरस्ति तत्र सन्देहो नास्ति परन्त्वेवं रूपेण ते तिष्ठन्ति कैश्चिदपि नयनेन दूरदर्शन यन्त्रेण वा लक्षयितुं नो शक्यन्ते।

गुरु—इस कृमि (कीट) जाति से भी सूक्ष्मतर अन्य जन्तु हैं इसमें सन्देह नहीं है। परन्तु वे इस रूप से बैठते हैं कि कोई भी नेत्रों से अथवा दूरदर्शन यन्त्र से नहीं देख सकता।

शिष्यः—एतेषां प्रागुक्त कृमिवर्गाणां मध्ये येषां पृष्ठदेशे शंखोऽस्ति तेषां विषयं बहुधा विवेचितवानऽहं। एवं तत्र महान् ममाश्चर्य बोधो भवति ते च केन रूपेण स्व स्व गृहं विदधतीति तथैव स्वेन सार्द्धं कथं रूपेण वा तन्नीत्वा गच्छन्ति।?

शिष्य—इन पूर्वोक्त कृमि वर्गों के मध्य में जिनकी पीठ पर शङ्ख हैं उनके विषय में प्रायः मैंने विचार किया एवं उसमें महान् आश्चर्य का मुझे बोध होता है कि वे किस प्रकार से स्व अर्थात् अपने-अपने घर को रखते हैं और वैसे ही अपने साथ उन्हें लेकर कैसे जाते हैं (गमन करते हैं) ?

गुरुः—एतदतीवाश्चर्यमिति सत्यं यदात्मनां तद्रूपं गृहं स्वेन स्वेन सार्द्धं नीत्वा ते भ्रमन्ति। त्वं हि तेजस्वता नयनेन यत्तदऽपश्यस्तस्मिन्नहं नाश्चर्यं मन्ये। सर्वेषां जन्तूनां प्रत्येकेन वासगृहमस्ति। यश्च शङ्खमध्ये शम्बूक जन्तुरस्ति तस्य काठिन्यं लघुता चेति गुणद्वयमस्ति। परन्त्वेतत् गुणद्वयस्यैकत्राऽवस्थानं दुर्घटं। किञ्च शङ्खस्येदृग्गुणो यदि नासीत् तर्ह्येष कृमिगणो नहि जीवितुं समशकत। तथा स्थाने स्थाने च गन्तुं न शक्नोति। शीतसमये समागते कस्मिंश्चिद्गर्त्ते ते प्रविशन्ति एवं तस्मिन् स्थाने तेषां शरीरतो निर्यासवत् क्लेदो निःसरति तेन च शङ्खानां मुखावृतिर्जायते। अनेनप्रकारेण शीतसमये सुखेन ते कालं गमयन्ति किन्तु ग्रीष्मकाले समागते तदेता मुखावृतिं शिथिलीकृत्य सर्वतो भ्रमन्ति।

गुरु—यह अति आश्चर्य की बात है ये सत्य है कि अपने घरों को वे अपने-अपने साथ लेकर घूमते हैं। तुम जो तेजस्वी नेत्रों से अर्थात् आश्चर्यमय दृष्टि से देखते हो मैं उसे आश्चर्य नहीं मानता। सभी जन्तुओं के प्रत्येक के पास उसका घर है। जो शङ्ख के मध्य में शम्बूक जन्तु है उसके कठोरता, और लघुता ये दो गुण हैं। परन्तु इन दोनों गुणों का एक स्थान पर रहना दुर्लभ है। और यदि शङ्ख का यह गुण नहीं होता तो ये कृमिगण जीवित नहीं रह सकते थे। और न स्थान-स्थान पर जा सकते। शीतकाल आ जाने पर किसी गड्डे में वे प्रवेश कर जाते हैं। उस स्थान में उनके शरीर से रसवत् तरल(द्रव) पदार्थ निकलता है और उससे शङ्खों का मुख आवृत्त हो जाता है। इस प्रकार से शीतकाल में वे सुखपूर्वक सनय व्यतीत करते हैं। किन्तु ग्रीष्मकाल के आने पर इस मुखावृत्ति को शिथिल करके सर्वत्र घूमते हैं।

शिष्यः—मन्मनसि एवं भवति शम्बूकस्य चक्षुर्विषये किञ्चिदहं श्रुतवान् ।

शिष्य—मेरे मन में ऐसा लग रहा है कि शम्बूक के नेत्रों के विषय में मैंने कुछ सुना है ।

गुरुः—तदेव भवितुमर्हति यतस्तेषां चक्षुर्विषये महदाश्चर्यमसम्भवश्चेति सत्यं ते च भूमावपि चलन्ति । पृष्ठदेशे च स्व स्व गृहस्य भारमुद्वहन्ति । एतदर्थं शूकाग्रभागे तेषां चक्षुर्वर्त्तते यदि तथा नस्यात्तर्हि कस्य सकाशात् पलायनमुचितं कस्य समीपे वा गमनमुचितं एतन्निर्णेतुं ते नाशक्नुवन् । येन तथा न भवति तदर्थं तेषां नयनं दूरवीक्षण यन्त्रवद्विद्यते यत् शूकं बालकैः सिङ्गमुच्यते तत् शूकन्तु चतुर्नालं तत् प्रत्येकस्याग्रभागे आदर्शवत् चन्द्रकमस्ति । यदि तवेच्छा भवति तर्हितच्चतुष्टयं दर्शनशिरां वक्तुमर्हसि येषामग्रभागे एकैकशश्चत्वारि चारु नयनानि सन्ति । शम्बूकस्तन्नयनमूर्द्ध्वमुन्नेतुं शक्यते चतुः पार्श्वे च भ्रामयितुमर्ह्यते । एवं दूरवीक्षण यन्त्रवत् तद्विस्तारयितुं सङ्कोचयितुञ्च शक्यते ।

गुरु—वह हो सकता है क्योंकि उनके नेत्रों के विषय में महान् आश्चर्य और असम्भवता प्रतीत होती है यह सत्य है । वे भूमि पर भी चलते हैं । और पीठ पर अपने अपने घर के भार को धारण करते हैं । इसके लिये शूकाग्र भाग में उनके चक्षु हैं यदि वैसा नहीं होता तो किसके समीप से पलायन करना उचित है अथवा किसके समीप जाना उचित है इसका वे निर्णय नहीं कर सकते थे । जिससे वैसा नहीं होता इसलिये उनके नेत्र दूरवीन यन्त्र के समान हैं जिस शूक को बालक सिंग कहते हैं जो शूक चार नाल वाला है वह प्रत्येक के आगे आदर्श की भाँति चन्द्रकाकार है । यदि तेरी इच्छा है तो उन चार दर्शन शिरा को बता सकते हो जिसके अग्रभाग में एक-एक के चार सुन्दर नेत्र हैं ।

शम्बूक उस नयन को ऊँचा लेजा सकता है और चारों तरफ घुमा सकता है। दूरबीन यन्त्र की भाँति वह उसका विस्तार भी कर सकता है और संकोच भी।

शिष्यः—तेषां चरणं कदापि मया न दृष्टं।

शिष्य—मैंने कभी उनके चरण (पैर) नहीं देखे।

गुरुः—सृष्टि विषये नानाविधं परमाश्चर्य कौशलं प्रदर्शयितुं परमेश्वरोहि तेषां चरण परिवर्तेन मांसपेशी द्वयस्य मांसपेशी द्वयस्य त्वचं निर्मितवान् यामेव तैरिच्छानुसारेण विस्तारयितुं सङ्कोचयितुं च शक्यते। येन वातैः स्वच्छन्देन गम्यते। एवं दुर्गरूपं शङ्खं स्वेन सार्द्धं नीत्वा चल्यते यथा तेषां कापिहानिर्न जायते तदर्थं वृक्ष निर्यासवत् तेषां देहक्लेदो वर्त्तते यत् संयोगवशेन तैर्न टल्यते। एवं तेन च निज शरीरस्थ स्वेद निःसरण रन्ध्रजालं निवद्धं तिष्ठति। यथा केनचिद्रूपेण तेषां शरीरे जलादिर्न प्रविशति।

गुरु—सृष्टि के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के परम आश्चर्य और कुशलता प्रदर्शित करने के लिये परमेश्वर ने उनके चरण के स्थान पर दो मांसपेशी और त्वचा बनाई जिसको वे अपनी इच्छानुसार विस्तृत और संकुचित कर सकते हैं अथवा जिनसे वे स्वच्छन्द गमन करते हैं और दुर्गरूप (किला रूपधर) शङ्ख को अपने साथ लेकर चलते हैं। जिससे उनकी कोई हानि नहीं होती है उसके लिये वृक्ष के द्रव के समान उनके शरीर में तरल पदार्थ रहता है जो संयोगवश उनसे अलग नहीं होता। और उससे अपने शरीर में स्थित स्वेद निकलने के छिद्र समूह को निबद्ध किये रहते हैं जिससे किसी भी रूप से उनके शरीर में जल आदि प्रवेश नहीं करता है।

शिष्यः—हे गुरो ! इदानीमनुग्रहं विधाय शङ्ख विषयान् मां कथयिष्यसि ?

शिष्य—हे गुरुदेव! अब कृपा करके मुझे शङ्ख के विषय में बतलायेंगे ?

गुरुः—अण्डाद्यदा शम्बूका निर्गच्छन्ति तदा तेषां शङ्खोऽति क्षुद्रः कोमलश्च भवति। अस्य कोमल शङ्खस्योपरिभागेऽपरः कश्चिद्गृहदुत्पद्यते। एवं प्रकारेण चक्राकार प्रथम शङ्खावयवोपरि चक्राकारोऽपरावयवो जायते। एवं क्रमेण द्वितीय भागोपरि तृतीय प्रभृतिर्जायते। किञ्च पार्श्वभागे शङ्खस्य शरीरं नो वर्द्धते परन्तु सम्मुख भागे वृद्धिमाप्नोति। अतः सुतरां तस्मिन् भागे तेषां वृद्धि सम्भावना भवति। किञ्च यस्माच्च शङ्खोऽयमुत्पद्यते तत्र क्रमेण तत् शरीराभ्यन्तरे तिष्ठति तत् किमित्यवधीयतां वृक्ष निर्यासवत् क्लेदो वालुका रूपातिसूक्ष्म परमाणु श्वेत्युभयं मिलितं सत् शङ्खीय समग्रभागः क्रमशो वृद्धि लभते एवमावरण त्वचा निबद्धो भवति अस्मिन् भवन् बोद्धुं शक्नोषि यत् कृमिजातेः केनरूपेण शङ्खो जायते।

गुरु—अण्डे से जब शम्बूक निकलते हैं तब उनके शङ्ख अति छोटे और कोमल होते हैं। इस कोमल शङ्ख के ऊपरी भाग पर दूसरा कोई घर उत्पन्न हो जाता है। इसी प्रकार से चक्राकार प्रथम शङ्ख के अवयव के ऊपर चक्र के आकार का दूसरा अवयव उत्पन्न होता है। इसी क्रम से दूसरे हिस्से के ऊपर तीसरे आदि उत्पन्न होता है और समीप की ओर शङ्ख के शरीर की वृद्धि नहीं होती परन्तु सामने का भाग वृद्धि को प्राप्त होता है। अतः निरन्तर उस भाग में उनके बढ़ने की सम्भावना रहती है। जिससे शंख उत्पन्न होता है वह क्रम से उस शरीर के भीतर रहता है, वह क्या है ये ध्यान से सुनो—वृक्ष के निर्यास (रस, तरल द्रव विशेष) के समान क्लेद अर्थात् तरल पदार्थ और बालुका (बालू) रूप आदि सूक्ष्म परमाणु इन दोनों के मिलने पर

शंख का समस्त भाग क्रमश, वृद्धि को प्राप्त करता है एवं आवरण त्वचा संलग्न होती है इससे आप समझ सकते हो कि कृमि जाति का शंख कैसे उत्पन्न होता है ।

शिष्य:—किमहो सर्वस्मिन् देशे शम्बूको लभ्यते ?

शिष्य—क्या सभी देशों में "शम्बूक "घोंघा" प्राप्त होता है ?

गुरु:—आं वरमन्य शङ्खापेक्षया शम्बूकस्य शङ्खो वर्णत: परिमाणत: चिह्नतश्च नानाविधाश्चर्य रूपो वर्त्तते अस्मिन् देशे दक्षिणे इउरपाख्य देशे च शम्बूकीय शङ्खो महान् महान् जायते परन्त्वितश्चोत्तरोत्तरतो यावद्गमिष्यसि तावच्च तेषां परिमाणं क्षुद्र क्षुद्रं वर्णतश्चाल्पाल्पं द्रक्ष्यसि ।

गुरु—हाँ भले ही अन्व शंखों की अपेक्षा शम्बूक के शंख वर्ण से, परिमाण से, और चिन्ह से अनेक प्रकार के आश्चर्यमय रूप वाले हैं । इस देश में और दक्षिणी यूरोप नामक देशमें शम्बूकीय (शम्बूक के)शख बड़े-बड़े उत्पन्न होते हैं परन्तु इससे विपरीत उत्तरोत्तर से जहाँ तक जाओगे वहाँ उनके परिमाण छोटे छोटे और वर्ण से भी अल्पतर देखोगे ।

शिष्य:—कश्चित् कश्चित् शम्बूक: किं भक्ष्यार्थं समीचीनो न भवति ?

शिष्य—कोई कोई शम्बूक क्या भक्षण के उपयुक्त नहीं होता ?

गुरु:—य एक जातीय: शम्बूको विद्यते तं तावत् खाद्यं वदन्ति इंगलण्डाख्य देशेऽयं भक्ष्य शम्बूकश्चतुर्यवावधि शङ्यत्र परिमितो लभ्यते । इउरपाख्यादितरस्मिन् देशे तत् परिमाणापेक्ष्यापि महान् महान् लभ्यते पुरातन रूमाह्वय देशाभ्यान्तरे भक्ष्यार्थमुपादेयतया धनिभि: खातं विधाय शम्बूकोऽयं जीवयित्वा स्थापित: । कालान्तरे वर्द्धितकायं ज्ञात्वा भक्ष्यतेस्म ।

गुरु—जो एक जातीय शम्बूक है वह खाद्य है ऐसा कहा जाता है। इग्लैंड देश में भक्ष्य शम्बूक ४ यव की अवधि से ६ यव की परिधि तक प्राप्त होता है। युरोप से भिन्न देशों में इस परिमाण की अपेक्षा बड़े बड़े रोम देश के भीतर भक्ष्यार्थ उपादेय होने से धनियों ने खात करके यह शम्बूक जीवित करके स्थापित किया है। कालान्तर में जब यह गड्ढे में बढ़ जाता है तब इ से खाते हैं।

*

अथ एकादश कथोपकथनम्

(वृक्ष पुष्पादि विषयकं)

गुरुर्वदति—अस्माकं सृष्टिकर्ता दयालुः परमेश्वरो योह्यस्माकं निवासार्थमिमां पृथ्वीं सृष्टवान् । अस्माकं रक्षणार्थं सुखार्थञ्चेति स हि नानाविधानि वस्तून्यर्थात् वृक्षलता पुष्पादीनि समुत्पादितवान् । अस्य जगतः प्रथमावधि युगे युगे सर्वमेतत् सृष्टं सत् रक्षितमस्ति । जगतः प्रथमादेतत् कालपर्यन्तमस्माकं बोधगम्यमपरं किमपि नवीनं वस्तु सृष्टं न भवति एवं प्राणिष्वपि कश्चिदधिको नोद्भवति परन्तु मनुष्य पशु, पक्षि, मत्स्य, कृमयः सर्व एते प्राणिनः प्रथमावधि सर्वदैकेन रूपेण सृष्टा अभवन् । एवञ्चते मनोनिवेश योग्यैका कथाऽस्ति तथाहि एतेऽसंख्यक तरव एकस्यां मृदिरोपिताः सन्त एकस्य रवेः किरणंनैकस्य धाराधरस्य वर्षणेन च संवर्द्धिता एकस्मात्तरोपर तरवो आस्वादनेन, गन्धेन वर्णेन चातिविशेषा भवन्ति ।

गुरुदेव कहते हैं—हमारे सृष्टिकर्ता दयालु परमेश्वर ने जिसने हमारे रहने के लिये ये पृथ्वी बनाई, हमारी रक्षा और सुख के लिये उसने अनेक प्रकार की वस्तु अर्थात् वृक्ष, लता, पुष्प आदि उत्पन्न किये । इस संसार के प्रथम काल से युग युग में सब ये बनाई हुई सृष्टि रजित है । संसार के प्रथमकाल से इस कालपर्यन्त हमारे बोधगम्य अर्थात् जाननेयोग्य और कोई भी नवीन वस्तु सृष्ट नहीं होती अर्थात् नहीं बनती

इस प्रकार प्राणियों में भी कुछ अधिक उत्पन्न नहीं होता परन्तु मनुष्य पशु, पक्षी, मछली, कीट, पतङ्ग, कृमि आदि ये सभी प्राणी पहले से सर्वदा एक रूप से रचे गये । इस प्रकार तुम्हारे मनोनिवेश के योग्य एक वार्ता है उदाहरणतः—-ये असंख्य वृक्ष एक प्रकार की मिट्टी में आरोपित हुए, एक सूर्य की किरण से, एक मेघ की वर्षा से बढ़े हुए एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष आस्वादन से सुगन्ध से और वर्ण से अति विशेष होते हैं ।

शिष्यः—एते च तरवो जातितो वर्गतो गणतः प्रकारतश्च विभक्ताः सन्ति न वेति ?

शिष्य—और ये वृक्ष जाति से, वर्ग से, गण से, प्रकार से विभक्त हैं अथवा नहीं ?

गुरुः—आं सन्ति यावन्तो वृक्षाः पृथिव्यां सन्ति ते सर्व एव इंगलण्डीय पण्डितैर्विभक्ता भवन्ति । जातिषु वर्गाः सन्ति, वर्गेषु गणाः सन्ति, गणेषु प्रकारा गणिताः सन्ति । प्रकारेषु नाना प्रभेदाः सन्ति ।

गुरु—हाँ हैं । जितने वृक्ष पृथ्वी पर हैं वे सभी इंग्लैंड देशीय विद्वानों द्वारा विभक्त हैं । जाति में वर्ग हैं; वर्गों में गण (समूह) हैं, गणों में प्रकार गिन गये हैं । प्रकारों में अनेक भेद प्रभेद हैं ।

शिष्यः—वृक्षादीनां जाति वर्गादि नाम केन निर्णीतं भवति ?

शिष्य—वृक्षादि की जाति वर्गादि नाम कैसे निश्चित होता है ?

गुरुः—केशरेण जाति निर्णीता भवति । यद्येकं केशरं पुष्पं भवति तर्हि प्रथमा जातिः वेदितव्याः । यदि च द्विकेशरं पुष्पं भवति तर्हि द्वितीय जातिर्भवति । एवं त्रिचतुरादि केशरैस्तृतीय चतुर्थादि जातिर्वेदितव्या । गर्भशिरया वर्णनिर्णयो भवति यदि

पुष्पमध्य भागे एका गर्भशिरा वर्त्तते तर्हि द्वितीय वर्गोवेदितव्यः यदि च तन्मध्ये द्वे गभशिरे विद्यते तर्हि द्वितीय वर्गो भवति एवं त्रिचतुरादि गर्भशिराभिस्तृतीय चतुर्थादि वर्गा मन्तव्याः। मानवानामिच्छानुसारेण गणनिर्णयो भवति। एवं पुष्पीय गुण विशेषेण प्रकारनिर्णयो भवति।

गुरु—केशर से जाति निश्चित होती है। यदि एक केशर वाता-पुष्प होता है तो प्रथम प्रकार की जाति जाननी चाहिये और यदि दो केशरमय पुष्प होता है तो दूसरी जाति होती है एवं तीन चार आदि केशरों से तीसरी चौथी आदि जाति जाननी चाहिये। गर्भशिरा से वर्ग निर्णय होता है यदि पुष्प के मध्य भाग में एक गर्भशिरा है तो प्रथम वर्ग जानना चाहिये, और यदि उसके बीच में दो गर्भ शिराऐं हों तो दूसरा वर्ग होता है एवं तीन चार आदि गर्भ शिराओं से तृतीय, चतुर्थादि वर्ग मानने चाहिये। मनुष्यों की इच्छानुसार गणों का निर्णय होता है और फूलों के गुण विशेष से प्रकार का निर्णय होता है।

शिष्यः—वृक्षाणां कतिजातयः सन्ति ?

शिष्य—वृक्षों की कितनी जातियाँ हैं ?

गुरुः—सन्ति वृक्षाणां षड्विंशति जातयः। आसां जातीनां मध्येशतं वर्गा भवन्ति। वर्गाणाञ्चैषां मध्ये द्विसहस्र गणा भवन्ति। गणानामेषां मध्येद्ययुत संख्यकाः प्रकारा भवन्ति। एवमेषां प्रकाराणां मध्ये कृषकस्य कौशलाधिक्येन चरया मृतिकया वायुविशेष संपर्केण चासंख्यकाः प्रमेदाः क्रियन्ते।

गुरु—वृक्षों की २६ जातियाँ हैं। इन जातियों की मध्य में सौ (१००) वर्ग होते हैं। इन वर्गों में द्वि-सहस्र अर्थात् दो हजार गण होते हैं। इन गणों में दो अयुत अर्थात् (२०,०००) बीस हजार प्रकार होते हैं। और इनके प्रकारों के मध्य में किसानों की कुशलता की

अधिकता से, श्रेष्ठ मिट्टी से, वायु विशेष के सम्पर्क से भेद किये जाते हैं।

शिष्य:—वृक्षगण: कस्मादुत्पद्यते ?

शिष्य—वृक्षगण किससे उत्पन्न होते हैं ?

गुरु:—बीजादुत्पद्यते। अंकुर जनन योग्यतार्थं त्वचा सार्द्धं बीजं रक्षितं भवति। प्रत्येकतो बीजाञ्चात्मनुसारेण नानाविधास्तरवो जायन्ते। बीजन्तु तावत् द्वयुत प्रकारं विदितमस्ति। इतोप्यधिक प्रकारं वर्त्तत इत्यनुमीयते। वदने कृते बीजादुत्पन्न मूलमधोभागे गच्छति काण्डभागस्तूद्र्ध्वं मुत्तिष्ठते।

गुरु—बीज से उत्पन्न होता है। अंकुर उत्पन्न करने योग्य होने के लिये त्वचा से युक्त बीजरक्षित होता है। प्रत्येक बीज से जाति के अनुसार अनेक प्रकार के वृक्ष उत्पन्न होते हैं। बीज तो दो अयुत अर्थात् २०,००० प्रकार के विदित हैं। इससे भी अधिक प्रकार हैं ऐसा अनुमान किया जाता है। बो देने पर बीज से उत्पन्न मूल जड़भाग तो नीचे की ओर जाता है और मुख्य भाग तो ऊपर उठता है।

शिष्य:— केनरूपेण ते वृद्धि लभन्ते ?

शिष्य—वे किस प्रकार वृद्धि को प्राप्त करते हैं ?

गुरु:—पवन वर्षणनीर ग्रीष्मोर्वरा मृत्तिकाभिर्मूलोपमूल रन्ध्रेषु यद्रस: प्रविशति तेनैव ते वृद्धि लभन्ते।

गुरु—वायु, वर्षा, जल और गर्मी उर्वरा (बनी) मृतिका (मिट्टी) से जड़ की भी जड़ के छिद्रों में जो रस प्रवेश करता है उसी से वे वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

शिष्य:—वृक्षाणां त्वग्भि: पत्रैश्च किं प्रयोजनं ?

शिष्य—वृक्षों की त्वचा (छाल) और पत्तों से क्या प्रयोजन है ?

गुरुः—आघाततो रक्षणमुत्पन्नरसेन च संपोषणमित्येताभ्यां तेषां त्वक् समभवत्। नीहार वर्षणनीर ग्रहणार्थं तेषाञ्च पत्राण्यभवन्।

गुरु—आघात से रक्षा और उत्पन्न रस से संपोषण करने के निमित्त ही उनकी छाल बनी। ओस, वर्षा का जल ग्रहण करने के लिये उनके पत्ते बने।

शिष्यः—एकस्मिन्नेकस्मिन् वृक्षे नाना पत्राणि सन्ति तेषु पत्रेषु नाना विशेषा दृश्यन्ते।

शिष्य—एक एक वृक्ष में अनेक पत्ते हैं उन पत्तों में अनेक विशेषता दिखाई देती हैं।

गुरुः—तत्सत्यं। विचित्र शक्तेः परमेश्वरस्य सृष्टौ नाना विशेषाः सन्ति तत्रापि जगतीमध्ये प्रायो वस्तुद्वयं सर्वतः समानं न लभ्यते इत्यभिप्रायार्थं। उपरिभागे जलावस्थानेन यथा तेषां कापि हानिर्न भवति तदर्थं पत्राणामुपरि भागस्तैलाक्तवत् परिष्कृतो भवति एवं नीहार नीरग्रहण योग्यतार्थं पत्राणां पृष्ठभागोऽपरिष्कृतो रूक्षश्च भवति।

गुरु—वह सत्य है। विशेष शक्ति वाले परमेश्वर की सृष्टि में अनेकों विशेषताऐं हैं तो तो भी जगत् में प्रायः दो वस्तु सर्वथा समान प्राप्त होतीं ये अभिप्रायः का अर्थ है। ऊपरी भाग में जल के रहने से जिससे उनको किसी तरह की हानि नहीं होती है उसी हेतु पत्तों का ऊपरी भाग तेल से युक्त परिष्कृत होता हैं। और ओस, जल ग्रहण करने योग्यता के लिये पत्तों का पिछला भाग अपरिष्कृत और रूखा होता है।

शिष्यः—प्राणिनां हितार्थं समुत्पन्ना अपि ये वृक्षा न फलन्ति तैः प्रयोजनं किं?

शिष्य—प्राणियों के हित के लिये उत्पन्न भी जो वृक्ष नहीं फलते हैं उनसे क्या प्रयोजन है ?

गुरुः—पश्य च सर्वे वन्य वृक्षा अति सुदृश्या भवन्ति। पथिकानां सन्तापप्रशनाय च स्निग्धां छायां वितन्वन्ति। अपरञ्च गृहादि रचनायां वृहन्नौकाया गुणवृक्षक निर्मितौ च तथा कृषि कर्मगृहोपकरणौषध सम्पादनार्थं चर्मकाराणां चर्मादि, रञ्जन शिल्प कर्म पाकादि निर्वाहार्थश्च वन्यानां तरुणां महोपकारकत्वमस्ति ।

गुरु—देखो, सभी वन के वृक्ष अति शोभन होते हैं। राहगीरों के ताप के प्रशमन (शान्ति) के लिये स्निग्ध छाया वितरित करते हैं। और भी घर आदि की रचना में, बड़ी-बड़ी नौकाओं के गुण वृक्षक निर्माण में तथा कृषि कार्य, घर के उपकरण, औषधि के लिये, चर्मकारों को चर्म (चमड़ा) आदि रंगने के कार्य, शिला कर्म (वस्तु कला) पाकादि के निर्वाह के लिये वन के वृक्षों का परम उपकरकत्व है।

शिष्यः—हे महाशय ! वृक्षतो यदेतावत् प्रयोजनं तन्नाहं ज्ञातवान् किञ्च येषां फलानि जायन्ते तानेवाहं भद्रानकथयिष्यं।

शिष्य—हे महाशय वृक्ष से इतने प्रयोजन हैं वे मुझे ज्ञात नहीं थे। और भी, जिनके फल उत्पन्न होते हैं उनहीं को मैं भद्र कहता था (कहूंगा)।

गुरुः—सन्ति फलिनः कति कति वृक्षाः। तेषां मध्येवा कतिविधाः सन्ति। पश्य, आम्र नारङ्ग कमलाख्य जम्बीर श्रीफलपनसकृष्ण वीजादीनस्माकमाधरार्थं रक्षण सुख हितास्वादग्रह तृप्त्यर्थं च ग्रीष्मसमये तृष्णोपशमनार्थं अपि य एतान् समसृजत स हि कीदृक् दयामययोऽस्माकं पिता। सर्वमेतन्मनसि कर्तुं मुचितं भवति यदस्माकमुद्याने व्यञ्जनार्थं कतिविध शाकमूलादयो भव-

न्तीति । पश्य च कफीति पुष्प कफीति च लोकप्रसिद्ध शाकं मूलकं शालगमाख्यं गृञ्जनञ्च कन्दसूरणे वार्त्ताक्लाबु पटोल फलञ्चैवमादिकं नानाविधं विहितमिति ।

गुरु—कितने-कितने वृक्ष फलदायी हैं और उनमें भी कितने ही प्रका के है। देखो, आम, नारंगी, कमल नामक, नारियल, कटहल, पपीता आदि हमारे खाने के लिये, संरक्षण के लिये, सुख, हित के लिये आस्वादन के लिये, और तृप्ति (संतुष्टि) के लिये, ग्रीष्मकाल में गर्मी की शान्त्ति के लिये भी जिसने इनको बनाया वह निश्चय ही कितना दयालु हमारा पिता है। ये सब मन में सोचना उचित होता है कि हमारे उद्यान में व्यञ्जन के लिये कितने प्रकार की साग-सब्जी(उत्पन्न) होते हैं। और देखो, कफीति ( ) नामक पुष्प, शाक, मूली सलगम, गाजर, कन्द, सूरण, वार्त्ताकूलाबु और पटोलफल आदि नाना जाति के शाक हैं।

शिष्यः—अस्मिन् देशे के के वृक्षा अति कार्योपयोगिनो भवन्ति ?

शिष्य—इस देश में कौन-कौन से वृक्ष अतिशय कार्योपयोगी (पैदा) होते हैं ?

गुरुः—नारिकेल, वंश, कदलीप्रभृतयो वृक्षा महा प्रयोजनार्हा भवन्ति। पश्य च नारिकेल पत्रशिरया संमार्जनी क्रियते तदीय फलत्वग्भिश्च भोजनपात्र धरादिः परिष्क्रयते तत् फलन्तु नाना कर्मोपयोगि भवति यतस्तत् संभवजलं पीयते भोजने तैल विशेप निष्पादने च तत् शस्यमुपादेयं भवति। तत् फलत्वग्भिरपि वृहती रज्जुर्जायते। एवमपरापर कर्मोपयोगि च भवति। वंशैर्नाना कर्माणि क्रियन्ते। पश्य च तैर्गृहादिः प्रस्तूयते। शूर्पादि गृहोपकरणञ्च निष्पाद्यते क्रियन्ते च नानाविधानि यन्त्राणि। कदल्या

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पत्रे च पाठशालायां बालकैर्लिख्यते पात्रान्तराभावे तत् पत्रैर्मनुष्यै र्युज्यते च तत् फलान्युपादेयानि मत्वा भक्ष्यन्ते च।

गुरु—नारियल, बाँस, केला आदि के वृक्ष बड़े ही प्रयोजनार्थ होते हैं। देखो, नारियल के पत्तों की शिखाओं से झाड़ू बनाई जाती है उसके फल के छिलके से भोजनपात्र और धरातल (फर्श) को साफ किया जाता है और उसके फल तो अनेक कार्यों में उपयोगी होते हैं क्योंकि उसमें उत्पन्न जल को पीया जाता है। खाने के लिये और तेल विशेष (गोले का तेल) के निकालने के लिये उसका पदार्थ उपयोगी होता है। उस फल के छिलके से भी बड़ी:बड़ी रस्सी बनाई जाती है। इसी प्रकार और भी कार्य में उपयोगी होती है। बाँस से अनेक कार्य लिये जाते हैं। देखो—उनसे घर आदि बनाये जाते हैं। सूप (फटकने वाला) और (अन्य) घर के उपकरण बनाये जाते हैं और अनेक प्रकार के यन्त्रों का निर्माण किया जाता है। कदली (केला) के पत्ते पर पाठशाला में बच्चे लिखते हैं। पात्र (बर्तन) के अभाव में उस पत्ते पर मनुष्य भोजन करते हैं और उसके मध्य के पदार्थ से व्यञ्जन बनाये जाते हैं। और सार्वभौम लोग प्रायः उस फल की उपयोगिता मानकर खाते हैं।

शिष्य:--केनरूपेण वृक्षाणां फलान्युत्पद्यन्ते ?

शिष्य—वृक्षों के फल कैसे उत्पन्न होते है ?

गुरु:—प्रायः सर्वेषां तरुणां पुष्पोत्पन्नाऽवयवतः फलानि जायन्ते किन्तु जनरञ्जन वृक्षस्यार्थात् भूरेति प्रसिद्ध वृक्षस्य यस्मिन् प्रदेशे पुष्पं नो जायते तत् प्रदेशे फलं जायते। एतद्विना प्रायः सर्वेषां वृक्षाणां पुष्पेभ्यः एव फलानि जायन्ते। परन्त्वऽश्वत्थ वट प्रभृतीनां पुष्पाभावेपि फलं जायते। किञ्च सुखाशन शीर्णवृन्त कर्कटी प्रभृतीनां पुष्पेऽप्यजाते प्रथमं फलं दृष्टं भवति।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गुरु—प्रायः सभी वृक्षों के पुष्पों से उत्पन्न अवयव से फल उत्पन्न होते हैं किन्तु जनरञ्जन वृक्ष के जिस भाग में पुष्प उत्पन्न नहीं होता उस भाग में फल उत्पन्न होता है। इसके बिना प्रायः सभी वृक्षों के पुष्पों से ही फल उत्पन्न होते हैं। परन्तु पीपल, बड़ आदि के पुष्पों के अभाव में भी भल उत्पन्न होता है। और सुखाशन-शीर्णवृन्त-ककड़ी आदि के पुष्प न होने पर भी फल ही पहले दिखाई देता है।

शिष्यः—केनरूपेण फलं रक्षितं भवति ?

शिष्य—फल की रक्षा किस प्रकार से होती है ?

गुरुः—कृत्स्नं फलं त्वग्भिः संरक्षितं भवति किन्तु सर्वस्मिन् विजातीय फलेनैकरूपा त्वग्भवति। पश्य, शीर्णवृन्त, कर्क्कटी, सुखाशनादि फले स्थूला त्वग्भवति। अपरेषु फलेषु सूक्ष्मा त्वग्भवति। यानि फलानि भूमौ स्थित्वा वर्द्धन्ते यदि तेषां विपुला त्वक् नाऽभवत् तर्हि कीटोपहतानि भवेयुः। एवं यदि द्राक्षाफलानां त्वग्सुखाशनादिवत् स्थौल्यमभवत् तर्हि निष्पीड़न चोषण योग्यानि तत् फलानि न भवेयुः।

गुरु—उत्पन्न हुए फल छिलकों से रजित होते हैं किन्तु सभी विजातीय (भिन्न-भिन्न) फलों में एक ही प्रकार का छिलका नहीं होता। देखो शीर्णवृन्त, (तरबूजा), ककंटी (ककड़ी) सुखाशनादिफल (ककड़ी) में मोटी त्वक् होती है। दूसरे फलों में सूक्ष्म छिलका होता है। जो फल भूमि में रहकर ही वृद्धि को प्राप्त होते हैं यदि उनका द्राक्षा अर्थात् मुनक्का फलों का छिलका सुखाशनादि की भाँति मोटा होता है तो वह निष्पीडन, चूसने के योग्य नहीं होते।

शिष्यः—फलानां कुत्र वीजानि तिष्ठन्ति ?

शिष्य—फलों के बीज कहाँ रहते हैं ?

गुरुः— वृक्षोत्पादने वीजानामत्यावश्यकत्वं एतस्मादेव फलाभ्यन्तरे समुचित स्थाने वीजानि रक्षितानि भवन्ति। कतिचिद्वीजानि अष्ठि मध्ये निभृतं तिष्ठन्ति कतिचिच्च त्वङ् मध्ये तिष्ठन्ति।

गुरु—वृक्ष की उत्पत्ति में बीजों की अत्यावश्यक होती है इसीलिये फलों में समुचित स्थान में बीज सुरक्षित होते हैं। किन्हीं (फलों के) बीज (अष्ठि) के मध्य और कुछ त्वचा में रहते हैं।

शिष्यः—एतदतीवाश्चर्यं रक्षार्थं वीजारोपणार्थञ्च मनुष्यानां यत्नाभावेपि बहुविधा वृक्षा लताश्च कथ न विनश्यन्ति ?

शिष्य—यह अति आश्चर्य की बात है कि (बीजों की) रक्षा और बीज रोपण हेतु मनुष्यों के प्रयत्न के अभाव में भी अनेकों प्रकार की लताएं और वृक्ष क्यों विनष्ट नहीं होते हैं ?

गुरुः—अत्र च परमेश्वरस्य महत् कौशलं प्रकाशते यतोहि मानवानां चेष्टामन्तरेण कति कति वीजानि सरोपितानि भवन्ति। कति वीजानि च नदी नद वेगेनोन्मज्जमानानि जन्मवृक्षाद्दूरे रोपितानि भवन्ति। कतिचिद्वीजानि वायुनोड्डीयमानानि समुचित स्थाने रोपितानि भवन्ति। खग काष्ठविडालादयो यानि नाना वीजानि भक्षयन्ति तानि च तेषामुदरगतानि भूत्वापि नो नश्यन्ति परन्तु तत् पुरीष संपृक्तानि यत्र तत्र पतन्ति तत्र तत्रैव रोपितानि भूत्वा वृद्धि लभन्ते किन्तु गन्धमूषिक, पिपीलिका, कृमि प्रभृतयो यत्र भूमौ विलं कुर्वन्ति तत्र वायुवेगेन यद्वीजमुड्डीयमानं पतति तत्तत्रैव रोपितं सत् वृद्धि लभते।

गुरु—इसमें ईश्वर का महान कौशलत्व प्रकट अर्थात् दृष्टिगत होता है क्यों कि मनुष्यों की चेष्टा (प्रयास) के बिना हीं कितने ही बीजारोपित हो जाते हैं। कितने ही बीज नदियों और नदों के वेग से गीले होते हुए जन्मवृक्ष से दूर रोपित हो जाते हैं। कुछ बीज वायु में

उड़कर समुचित स्थान पर रोपित हो जाते है। पक्षी और काष्ठविडाल आदि जिन अनेक बीजों को खाते हैं वे उनके उदरगत होकर भी नष्ट नहीं होते परन्तु उनके पुरीष अर्थात् छेड़ में लगे हुए जहाँ तहाँ गिर जाते हैं और वहाँ वहाँ रोपित होकर (अंकुरित होकर) वृद्धि को प्राप्त हो जाते हैं। चूहे, चींटी, कृमि आदि जहाँ भूमि में बिल बना लेते हैं वहाँ वायु के वेग से जो बीज उड़कर गिर जाता है वह वहाँ ही रोपित होकर वृद्धि को प्राप्त हो जाता है।

शिष्य:—पक्वफलं केनरूपेण ज्ञायते ?

शिष्य—पके फल को कैसे जाना जाता है ?

गुरु:—फलस्य वर्णविशेषेण तद्वृन्तस्य म्लान भावेद एवमीषत् स्पर्शवशात् वृक्षात् पतनेन च फलस्य पक्वता निर्णीयते। इदानीं तवेच्छा यदि भवति तर्हि गच्छ, वयं पुष्पोद्याने व्रजाम:। पश्योद्यानं कीदृग्रमणीयदर्शन तथा कीदृग्वा परमाश्चर्यं विविधरक्त पीतादि वर्णं एवं नयनयो: कीदृगाह्लाद जनकश्च घ्राणेन्द्रियस्य कीदृशम्वा तृप्तिजनकमिति।

गुरु—फल के वर्ण विशेष से उसके वृन्त (डण्डी) की मलिनता से, और थोड़ा स्पर्शमात्र से वृक्ष से गिरने से फलों के पकेपन का निर्णय होता है। यदि इस समय तुम्हारी इच्छा है तो जाओ, हम (भी) पुष्पोध्यान में जाते है। देखो, उपबन कैसा रमणीय दर्शनवाला, और कैसे परम आश्चर्यमय विभिन्न लाल, पीले आदि रंग वाले एवं नेत्रों को कितना आह्लाद प्रदान करने वाला और श्राणेन्द्रिय (नासिका) को कितनी संतुष्टि देने वाला है।

शिष्य:—अहमेतत् प्रष्टुमिच्छामि पुष्पानां केचनावयवा विवेचनीया भवन्ति ?

शिष्य—में यह पूछना चाहता हूं कि पुष्पो को कौन से अवयव विवेचनीय होते हैं ?

गुरुः—पुष्पीयाः सप्तावयवा विवेचनार्हा भवन्ति । ते च प्रसव वन्धन, दलकेशर, गर्भकेशर, वीज, वीजकोष, कोषाधारा इत्येवं सप्तावयवाः ।

गुरु—पुष्प के सात अवयव विवेशन योग्य हैं। वे प्रसवबन्धन, दल केशर, गर्भकेशर, बीज कोष और कोषाधार ये सात अवयव हैं।

शिष्यः—सर्वेषां पुष्पानां किं प्रसववन्धनमस्ति ?

शिष्य—सभी पुष्पों के क्या प्रसव बन्धन हैं ?

गुरुः—सर्वेषां नहि किन्त्वनेकेषु पुष्पेषु प्रसववन्धनमस्ति । विशेषतः कस्मिश्चित् पुष्पे वीजपाक पर्यन्तं तत्तिष्ठति कतिषु पुष्पेषु वा विकसानात् प्रागेव विघट्य पतति । कतिषु पुष्पेषु च प्रसववन्धनं न भवत्येव यथा रजनीगन्धादौ ।

गुरु—सभी के नहीं, किन्तु अनेकों पुष्पों में प्रसव वन्धन है। विशेषतः किसी पुष्प में बीज के पकने के समय तक वह रहता है अथवा किन्हीं पुष्पों में विकास से पूर्व ही अलग होकर गिर जाता है। किन्हीं पुष्पों में प्रसवबन्धन होता हीं नहीं है जैसे—रजनीगन्धा में।

शिष्यः—किन्तावद्दल मुच्यते ?

शिष्य—तो दल किसे कहते हैं ?

गुरुः—पुष्पावयव पत्रमेवदलं यत् समुदाय मिलितं पुष्पमुच्यते ।

गुरु—पुष्प के अवयव पत्र (पत्ता) ही दल है जो समुदाय में मिलकर पुष्प कहलाता है।

शिष्यः—कस्तावत् केशरोऽभिधीयते ?

शिष्य—तो केशर किसे कहते हैं ?

गुरुः—दलानां मध्यदेशे सर्वासु दिक्षु यत् सूत्राकाराणि वस्तूनि येषु च पुष्परेणवस्तिष्ठन्ति त एव केशरा उच्यन्ते।

गुरु—दलों के मध्य भाग में सभी दिशाओं में जो सूत्र के आकार की वस्तु है और जिसमें पुष्परेणु अर्थात् परागकण रहते हैं वह ही केशर कहलाता है।

शिष्यः—कस्तावद्गर्भ केशरोऽभिधीयते ?

शिष्य—तब गर्भ केशर किसे कहते हैं ?

गुरुः—पुष्पीय मूलाऽवयवमारभ्य केशरमध्य प्रदेशे ये तिष्ठन्ति तएव गर्भकेशरा भवन्ति।

गुरु—पुष्प के मूल अवयव से लेकर केशर के मध्य भाग में जो रहते हैं, वे ही गर्भ केशर होते हैं।

शिष्यः—गर्भकेशरः किं सर्वेषां पुष्पाणां मध्यभागे तिष्ठति ?

शिष्य—गर्भकेशर क्या सभी पुष्पों के बीच में रहता है ?

गुरुः—प्रायः सर्वेषां पुष्पाणां मध्यभागे तिष्ठति किञ्च कस्यचिद्वृक्षस्य कस्मिंश्चित् पुष्पे केशरस्तिष्ठति कस्मिन् पुष्पे वा गर्भकेशरमात्रं तिष्ठति। एवं कदाचिद्वा एकस्मिन् वृक्षे केशरस्तिष्ठति अन्यस्मिन् वृक्षे गर्भ केशरस्तिष्ठति। तद्रूप पुष्पेषु वायुयोगेन कीट पक्षिभ्यामपरेण वा अन्यस्मात् केशरादुड्डीयमानः परागोगर्भकेशरे लगति न चेत् तस्मात् पुष्पात् फलोत्पत्तिर्न स्यादिति।

गुरु—प्रायः सभी पुष्पों के मध्य भाग में रहता है और किसी वृक्ष के किसी पुष्प में केशर रहता है अथवा किसी पुष्प में केवल गर्भकेशर मात्र रहता है। और कभी एक वृक्ष में केशर रहता है तो दूसरे वृक्ष में गर्भकेशर होता है। उसके अनुरूप पुष्पों में वायु के योग से (सहयोग

से) कीट पक्षी अथवा अन्य किसी से केशर से उड़ता हुआ पराग गर्भकेशर में लग जाता है, नहीं तो उस पुष्प से फल उत्पन्न नहीं होता ।

शिष्यः—केशर गर्भकेशर विषयिणी काप्यन्या कथाऽस्ति ?

शिष्य—केशर, गर्भकेशर सम्बन्धिनी कोई अन्य बात है ?

गुरुः—केशरस्य द्वावंशौ मृणाली परागाविति एवं गर्भकेशरस्य त्रयोभागाः प्रथमश्चोर्द्ध भागोयस्तु मणिरित्यभिधीयते । द्वितीयो मणेरधो वीजकोष पर्यन्तं मृणाली । तृतीयस्तु वीजाधार मञ्जरी ।

गुरु—केशर के दो अंश हैं—मृणाली और पराग, तथा गर्भकेशर के तीन भाग हैं—प्रथम ऊपरी हिस्सा जिसे मणि कहते हैं । द्वितीयमणि के नीचे का हिस्सा वीजकोष पर्यन्त मृणाली, और तीसरा तो वीजाधार मंजरी हैं ।

शिष्यः—एभिः केनरूपेण वीजं जायते ?

शिष्य—इनसे कैसे वीज निष्पन्न होता है ?

गुरुः—यदा पुष्पं विकसितं भवति तदा केशराणि स्फाटितानि भवन्ति तेन च तत् परागो गर्भकेशरे पतति । तदनन्तरं तत्र वीजमुत्पद्यते ।

गुरु—जब पुष्प विकसित होता है तब केशर स्फुटित होते हैं और उससे वह पराग गर्भकेशर में गिरता है । तत्पश्चात् वहाँ वीज उत्पन्न होता है ।

शिष्यः—कस्तावद्वीजकोषः कोषाधारश्चोच्यते ?

शिष्य—तो क्या वीजकोष को कोषाधार कहते हैं ?

गुरुः—वीजानि यत्र तिष्ठन्ति स हि वीजकोष उच्यते । पुष्पसम्वलित वीजकोषो यत्र तिष्ठति स एव कोषाधारो ज्ञातव्यः ।

गुरु—बीज जहाँ रहते हैं वह बीजकोष कहलाता है। पुष्प से संयुक्त बीजकोष जहाँ रहता है वह ही कोषाधार जानना चाहिये।

शिष्य:—इदानीं अहं प्रष्टुमिच्छामि गुरो पुष्पाणां केके गुणा विवेचनीयाः सन्ति?

शिष्य—गुरुदेव! अब में यह पूछना चाहता हूं कि पुष्पों के कौन-कौन से गुण विवेचनीय हैं?

गुरुः—रुचि तरवर्णैराकार विशेषैः सौरभैश्च पुष्पाणि ज्ञातव्यानि सन्ति। पुष्पं हि न केवलं भूषणार्थं किञ्च तन्मध्ये केनचित् केनचित् पुष्पेणमहत् प्रयोजनमस्ति। अपरश्चानेन परमाश्चर्य बोधो भवति। यतः श्यामवर्ण वृक्षादेस्तादृश सौरभशालि पुष्पं जायते। एवं मलिनतर मूलादेतावद्विचित्र पुष्पाण्युद्भवन्ति।

गुरु—रुचिकर वर्णों से, आकार विशेष से, और सुरभि से पुष्प जाने जाते हैं। पुष्प केवल शोभार्थ (पक्षान्तर में पुष्पाभूषण) ही नहीं हैं। उनमें से किसी किसी पुष्प से बड़े प्रयोजन हैं। दूसरी बात इससे परम आश्चर्य का बोध होता है। क्योंकि श्यामवर्णीय वृक्षादि से वैसी सुगन्धि वाले पुष्प उत्पन्न होते हैं। तथा मलिनतम जड़ से ऐसे विचित्र पुष्प उत्पन्न होते हैं।

शिष्य:—पुष्पाणामाघ्राण विषये भवन् किमपि कथयिष्यसि?

शिष्य—पुष्पों की सुगन्धि के सम्बन्ध में आप कुछ कहेंगे?

गुरुः—पुष्पमध्ये वाष्पमय रसोऽस्ति सहि क्षुद्र क्षुद्र रन्ध्र जालात् तत्पत्राच्च यन्निःसरति तेनैव समुत्पन्नं सौरभं वयं जिघ्रामः।

गुरु—फूल के मध्य भाग में भापमय रस है जो छोटे छोटे छिद्र-समूह से और उसके पत्तों से जो निकलता है उसी से उत्पन्न सुरभि को हम सूँघते हैं।

शिष्यः—हे महाशय ! भवता पूर्वमुक्तं न केवलं भूषणार्थं पुष्पं परन्त्वऽपराऽपर विषयेऽपि तत् प्रयोजनमस्तीति ?

शिष्य—हे महाशय आपने पहले कहा कि पुष्प केवल भूषणार्थ ही नहीं होते प्रत्युत् इनके और विषय में भी उसके प्रयोजन हैं।

गुरुः—तत्सत्यं। यदाऽस्माकं मनांसि समुत्कण्ठितानि संतप्तानि च भवन्ति तदा पुष्पाणि मनांसि स्थिरयन्ति सन्तर्पयन्ति च। एवं पुष्पतः फलानि वीजानि चास्माभिर्लभ्यन्ते। विशेषतो मधुतैल विशेष मधूत्सृष्टरञ्जनौषधादयो लभ्यन्ते।

गुरु—वह सत्य है। जब हमारा मन उत्कण्ठित और संतृप्त होता है तब पुष्प मन को स्थिर करते हैं तथा संतुष्टि प्रदान करते हैं। इसी प्रकार पुष्प से फल और बीज हमें प्राप्त होते हैं। विशेषकर शहद तेल विशेष जो मधु से बनता है रंग (रंगने के लिये) और औषधि आदि प्राप्त होती हैं।

शिष्यः—कियत् पुष्पाणां गन्धोऽति मन्दोऽस्ति ?

शिष्य—पुष्पों की सुगन्ध अति कम किस कारण होती है ?

गुरुः—इदमनुमीयते येषां पुष्पाणां गन्धोऽति मन्दस्तानि पुष्पाणि दुष्टं वाष्पमल्पयन्ति किम्वा नाशयन्ति। एवं तानि पशुपतङ्गादीनां भक्ष्याणि भवन्ति औषधीय गुणञ्च धारयन्ति। वयमद्यापि समग्रया बुद्ध्या नो ज्ञातुं प्रभवामो यद्वृक्षेभ्यः पुष्पेभ्यश्च कियत् प्रयोजनं भवतीति।

गुरु—यह अनुमान लगाया जाता है कि जिन पुष्पों की गन्ध अति मन्द होती है वे पुष्प दूषित वाष्प को कम कर देते है अथवा नष्ट करते हैं। और पुष्प, पशु पतङ्ग आदि के भक्ष्य होते हैं तथा औषधीय गुणों को धारण करते हैं। अब भी (अभी तक) समग्र बुद्धि से नहीं जान सकते कि वृक्षों से और पुष्पों से कितना प्रयोजन होता है।

शिष्यः—मन्येऽहं पुष्पविषयिणी नान्या कापि कथाऽस्ति ?

शिष्य—सोचता हूं, पुष्प सम्बन्धी और कोई (विशेष) बात है ?

गुरुः—तत्रैकाऽपरा कथाऽस्ति या च युष्माकं मनोयोग योग्या भवति तथाहितैः पुष्पैरीश्वरस्य परं कौशलमनुग्रहश्च वयं जानीमः। तथास्माकं जीवनविषये वा या दुरत्यया चिन्ता सा निष्प्रयोजनकी भूता। पश्य क्षेत्रस्थानि कानुर इति प्रसिद्ध पुष्पाणि कीदृशं वर्द्धन्ते तानि वै नहि परिश्रमं कुर्वन्ति न वा सूत्रं संसृजन्ति तथापि कश्चिन्महाराजाधिराजो निजसमग्र परमैश्वर्येस्तुल्यतां नो याति। अतएवाऽचिरतर कालावस्थायिने पुष्पाय यदि परमेश्वरेणेदृशं भूषणं दत्तं तर्हि किमस्मभ्यं भक्ष्यं परिधेयश्च तेन नो प्रदास्यते।

गुरु—इस सम्बन्ध में एक और बात है और जो तुम्हारे मनोयोग अर्थात् ध्यान देने योग्य है। उदाहरणतः उन पुष्पों से ईश्वर की परम कुशलता एवं कृपा हम जानते हैं। वैसे ही हमारी जीवन सम्बन्धी जो दुरत्यय चिन्ताएं हैं वे निष्प्रयोजन हो गई। देखो–क्षेत्रस्थ 'कानुर' नामक प्रसिद्ध पुष्प किस तरह बढ़ता है न वे परिश्रम करते हैं और न सूत्र उत्पन्न करते हैं तो भी किसी महाराजाधिराज की समानता को क्या वह अपने समग्र परम् ऐश्वर्य से प्राप्त नहीं करता। अतएव अचिरकाल तक रहने वाले अर्थात् थोड़े ही समय तक रहने वाले पुष्प को यदि ईश्वर ने इतनी शोभा दी तो क्या वह हमको भोजन और परिधान नहीं देगा।

शिष्यः—वृक्षः पुष्पश्च केनरूपेण संरक्षणं वृद्धिश्च प्राप्नोति ?

शिष्य—वृक्ष और पुष्प किस प्रकार संरक्षण और वृद्धि को प्राप्त करते हैं ?

गुरुः—प्रत्येक वृक्षे बहुतराणि बीजानि जायन्ते तैरपि काले

काल तरवः संरक्षिता भवन्ति कियन्ति वीजानि क्षुद्रतराणि प्रायोऽदृश्यानि ।

गुरु—प्रत्येक वृक्ष में बहुत से बीज उत्पन्न होते हैं उनसे भी समय पर वृक्ष संरक्षित होते हैं कितने ही बीज छोटे प्रायः अदृश्य होते हैं ।

शिष्यः—वीजानि पुष्पाणां कस्मिन् प्रदेशेतिष्ठन्ति ?

शिष्य—बीज पुष्पों के किस भाग में रहते हैं ।

गुरुः—कियत्सु वृक्षेषु पुष्पाग्रभागे वीजानि तिष्ठन्ति । कियतां पुष्पाणां मध्यप्रदेशे कियताञ्च पत्रमध्ये पत्राधः प्रदेशे च वीजानि तिष्ठन्ति कियतां वा शिम्बीमध्ये त्वग्भिर्विभक्तानि वीजानि तिष्ठान्ति । केषाञ्चित् समग्राणि वीजानि सम्भूयैकत्र तिष्ठन्ति यथा सूर्यमुखी प्रभृतीनां । नैतन्महादाश्चर्य यत् क्षुद्रतराद्वीजान्महान् महान् वृक्षो जायते ।

गुरु—किन्हीं वृक्षों में पुष्प के अग्र भाग में बीज रहते हैं । किन्हीं पुष्पों के मध्यभाग में, किसी के पत्तों में, पत्ते के निचले भाग में बीज रहते हैं । अथवा किसी के .... छिलके से विभक्त बीज रहते हैं । किसी के समस्त बीज एकत्र होकर एक स्थल पर रहते हैं । जैसे—सूर्यमुखी आदि के । ये बडे आश्चर्य की बात नहीं है कि छोटे से बीज से बड़े बड़े वृक्ष उत्पन्न होते हैं । अर्थात् वस्तुतः ही ये बड़े आश्चर्य की बात है ।)

शिष्यः—एतदतीवाश्चर्यमिति सत्यं । किञ्च एकस्मिन् वत्सरे एकैक वृक्षे किं वहूनि वीजानि जायन्ते ?

शिष्य—ये बड़े ही आश्चर्यमय है यह सत्य है और एक साल में एक-एक वृक्ष में क्या बहुत से बीज उत्पन्न होते है ?

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गुरुः—वृक्षविशेषे वीजानां विशेष संख्या विद्यते एकस्य ताम्र कूटतरोरेकस्मिन् समये वीजानि चतुरयुत सख्यकानि गणितान्य भवन्। एवमेकस्मिन्नली वृक्षे वत्सरैकाभ्यन्तरेलक्षत्रय संख्यकानि वीजानि लभ्यन्ते।

गुरु—वृक्ष विशेष में बीजों की विशेष संख्या है। एक ताम्रकूट वृक्ष में एक समय में चार अयुत अर्थात् ४०,००० संख्या में बीजों की गणना हुई। इसी प्रकार एक नली वृक्ष में एक वर्ष के भीतर तीन लाख बीज प्राप्त होते हैं।

शिष्यः—एतद्वीजानां कथमेतादृक् संख्यावाहुल्यं ?

शिष्य—इन बीजों की इतनी बड़ी संख्या क्यों है ?

गुरुः—बहूनि वीजानि पक्षिणां भक्ष्याणि भवन्ति यदि कृत्स्नानि वीजानि तेषां भक्षणेनैकदा नाशमुपयान्ति किञ्च तेषामेकदा विनाशस्तु तद्रूपेण कदाचिद्भवितुमर्हत्येव। तर्हि वीजानां संख्याधिक्याभावे पुनरिह केनरूपेण वीजं लभ्यं भवति। अत्रविषये परमेश्वरस्य पराक्रम कौशलानुग्रहाणां बोधः कर्तव्य एव। पश्य यदि वीजरूप भक्ष्यं नाऽभवत् तर्हि प्रायः सर्वेषां पक्षिणामर्द्ध भागो विनाशमगमत्। कणिकाकारमिदं यद्भक्ष्यं तदपि शीतसमये प्राणधारणार्थं तैः संचितं भवति।

गुरु—बहुत से बीज पक्षियों का भक्ष्य होता है। यदि उत्पन्न बीज उन के भक्षण से एक बार में नष्ट हो जाते हैं और उनका एक बार विनाश तो उस रूप में कदाचित् हो ही सकता है तब बीजों की संख्याधिक्य के अभाव में पुनः कैसे बीज प्राप्त हो सकता है। इस बिषय में परमेश्वर की कुशलता एवं अनुग्रहशीलता का बोध करना ही चाहिये। देखो, बीजरूप में भक्ष्य (भोज्य) नहीं होता तो प्रायः सभी पक्षियों का आधा भाग विनाश को प्राप्त हो जाता। कणों के आकार का ये जो भक्ष्य है

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वह भी शीतकाल में प्राणों की रक्षा हेतु उनके द्वारा सञ्चित कर लिया जाता है ।

शिष्य:—शिम्बीत: केनरूपेण बीजं लभ्यते ?

शिष्य—शिम्बी से किस रूप में बीज मिलता है ?

गुरु:—एषा शिम्बी वसन्त समये शुष्कतां गत्वा विदीर्णा भवति । अनन्तरं बीजं निर्गत्य भूमौ पतति । यश्च बीजं मनुजैरगृहीतं भवति तत्तु वृष्टिभिर्मृत्तिकायां प्रविशति ।

गुरु—ये शिम्बी वसन्त समय में सूखकर विदीर्ण हो जाता है अर्थात् फट जाती है । तत्पश्चात् बीज निकलकर भूमि पर गिर जाता है । जो बीज मनुष्यों द्वारा अगृहीत (पकड़ने में असमर्थ) होता है वह वर्षा से मिट्टी में प्रविष्ट हो जाता है ।

शिष्य:—यद्बीजं अतिलघु तत्सर्वं कुत्र गच्छति ?

शिष्य—जो बीज अति लघु है, वह सब कहाँ जाता है ?

गुरु:—वयमेतद्दृष्टवन्तस्तानि वायुना प्रेरितानि भूत्वा निर्वात समये नीचप्रदेशे पतन्ति । एतस्मादेव कारणादुच्चप्राचीरे प्रासादोपरिभागे च वटाश्वत्थादयो वृक्षा जायन्ते । यस्माच्चेष्टकानां प्रस्तराणाञ्च सन्धौ निपतिते बीजोऽङ्कुरो भूत्वा क्रमेण वृद्धिं लभते । एवं यदा पक्षिणश्चञ्चुभिर्बीजं गृहीत्वा वा गच्छन्ति तदा कदाचिदपि तद्बीजं निपतति तेनैव च ते जायन्ते तत्र । एवञ्च बीजोपरि भागे तूलवद्वस्तुवर्त्तते तद्योगेन वायु वशात् नाना स्थाने बीजं निपतति ।

गुरु—हमने ये देखा है कि वे (बीज) वायु से प्रेरित होकर वायुरहित समय में नीचे गिर जाते हैं । इसी कारण से ऊँचे प्राचीरों पर, भवनों के ऊपरी भाग में वट (बड़) और पीपल आदि वृक्ष उत्पन्न हो

जाते हैं। इसी तरह ईंटों, और पत्थरों के सन्धिस्थलों पर बीज के गिर जाने से अंकुर होकर क्रमशः वृद्धि को प्राप्त करता है। अथवा इसी प्रकार जब पक्षी चोंच में बीज लेकर चलते हैं (उड़ते हैं) तब कदाचित् (कैसे भी) वह बीज गिरता है उसी से वे वहाँ उत्पन्न हो जाते हैं। बीज के ऊपरी भाग में तूलकी सी वस्तु है उसके सहयोग से वायुवश अनेकों स्थान में बीज गिरता है।

शिष्यः—कियद्दिन पर्यन्त वीजान्यऽङ्कुर योग्यानि तिष्ठन्ति?

शिष्य—कितने दिन पर्यन्त बीज अंकुरयोग्य रहते हैं ?

गुरुः—वत्सरद्वय वत्सरत्रय पर्यन्तं वीजान्यविकलानि तिष्ठन्ति परन्त्वतिवृष्टिवशात् यस्मिन्नब्दे वीजसंग्रहो न भवति तत्राब्दे पुरातनं वीजं वपति।

गुरु—दो वर्ष तीन वर्ष पर्यन्त बीज सम्पूर्ण अर्थात् सर्वथायोग्य रहते हैं किन्तु अति वर्षा के कारण जिस वर्ष बीज संग्रह नहीं होता है उस वर्ष पुराने बीज को बोते हैं।

शिष्यः—केनरूपेण वीजानामङ्कुरो जायते ?

शिष्य—बीज का अंकुर कैसे उत्पन्न होता है ?

गुरुः—वाष्पतापाभ्यां वीजाभ्यन्तरे याचोद्भिच्छक्ति विद्यते सैवाङ्कुरजननरक्षणयोः कारणं भवति। उद्भिच्छक्तेः प्रारम्भे स्वावरणं विमुच्य मूलमातनोति वीजं। एतदवसरे सवलं सदऽङ्कुरं वहिष्करोति अनन्तरं क्रमशो वृद्धि प्राप्य स्वाभाविको वृक्षो भवति।

गुरु—वाष्प के ताप से बीज के भींतर जो उत्पन्न होने की शक्ति है वह ही अंकुर उत्पन्न करने और अक्षण का कारण होती है। उस उत्पन्न होने वाली शक्ति के प्रारम्भ में अपने आवरण को छोड़कर बीज जड़ रूप धारण करता है। इसी समय में सवल होने पर अंकुर बाहर

निकलता है तत्पश्चात् क्रमशः वृद्धि को प्राप्त करके स्वाभाविक वृक्ष हो जाता है।

शिष्य:—प्रागुक्त प्रयोजनमन्तरेण वीजानां किं कार्यान्तरमस्ति ?

शिष्य—पहले कहे हुए प्रयोजन के अत्तिरिक्त बीजों का कोई और कार्य है ?

गुरु:—अस्तीति सत्यं कियन्ति वीजानि मनुष्य, पशुपक्षिणां भक्ष्याणि भवन्ति कतिचिद्वीजेभ्यश्चित्र कर्ममृक्षण प्रदीपाशनार्थं तैलमुत्पाद्यते कतिपय वीजादौषधानि जायन्ते। अत्रास्मकमेवं वोधः कर्तव्यः सुलघुन्यपि वस्तुनि हेय बुद्धिर्नोचितेति। यतस्तेनाप्यऽस्माकं महानुपकारो जायते।

गुरु—है,यह सत्य है। कुछ बीज मनुष्यों, पशु एवं पक्षियों के भक्ष्य होते हैं। कुछ बीजों से चित्रकर्म के लिये सामग्री, दीपकों को प्रज्वलित करने हेतु तेल उत्पन्न होता है। कुछ बीजों से जो खाद्य उत्पन्न होती हैं। अतः हमें यह ज्ञात होना चाहिये कि छोटी सी वस्तु में भी हेय बुद्धि अर्थात् उपेक्षा भाव उचित नहीं है क्योंकि उससे भी हमारा बड़ा उपकार होता है।

★

अथ द्वादश कथोपकथनम्

(तृणशस्यादि विषयकं)

शिष्यो वदति—पृथिव्यां समुत्पन्न वस्तूनां मध्ये किं किं अत्यन्तावश्यकं ?

शिष्य कहता है—पृथ्वी पर उत्पन्न वस्तुओं में से क्या-क्या अत्यन्त आवश्यक है ?

गुरुर्वदति—घास धान्य गोधूम यव प्रभृतिकं । पश्य पशूनां पोषणार्थं घासो मनुजानां पोषणार्थं धान्य गोधूमादि च परमेश्वरेण सृष्टमभूत् ।

गुरुदेव कहते हैं—घास, धान्य, गेहूं, जौ आदि । देखो, पशुओं के पोषण के लिये घास, मनुष्यों के पोषण के लिये धान्य और गेहूं आदि परमेश्वर ने उत्पन्न किये ।

शिष्यः—घासानां मध्ये विवेचनीयं किमस्ति ?

शिष्य—घासों के मध्य में विवेचनार्ह क्या है ?

गुरुः—तन्मध्ये चैतद्विवेचनीयमस्ति यन्मनुष्याणामायासमन्तरेण पशूनां भक्षणीय घासो भवति । एवं विचित्र नयनोत्सुक रमणीयामनेनैव घासेन पृथिव्या मुखमावृतमस्तीति ।

गुरु—उसके बीच में यही विवेचनीय है कि मनुष्यों के प्रयास के बिना ही पशुओं के लिये भक्षणीय (भोज्य) घास होती है । इस प्रकार

विचित्र नयनों को उत्सुक और रमणीय दीख पड़ने वाली इसी घास से पृथ्वी का मुख आवृत्त (ढका) हुआ है।

शिष्यः—घासाऽनुत्पत्ति समये पशुभिः किं भुज्यते ?

शिष्य—घास के उत्पन्न न होने के समय पशु क्या खाते हैं ?

गुरुः—समये कियतो घासान् छित्वा शुष्कयित्वा च स्थापयन्ति। समयान्तरे च त एव पशूनां भक्ष्या भवन्ति। कस्मिंश्चित् वत्सरे द्वित्रिवारं घासान् छित्वा संचिन्वन्ति यदि तन्न करोति तर्हि प्रान्तरे स्थिताः पशूनां भक्ष्या भवन्ति।

गुरु—समय पर कुछ घास को काटकर (उखाड़कर) और सुखाकर रख लेते हैं। दूसरे समय में अर्थात् घास के उत्पन्न होने की स्थिति में वह ही पशुओं का भक्ष्य होता है। किसी वर्ष में दो तीन बार घास को काटकर संचय करते हैं यदि ऐसा नहीं करते तो प्रान्तर में स्थित पशुओं का भक्ष्य होते हैं।

शिष्यः—सर्वे घासा किमेकविधाः सन्ति ?

शिष्य—सभी घास क्या एक प्रकार की है ?

गुरुः—मैवं घासास्तु इयन्नानाविधाः सन्ति सर्वे नृभिर्यावज्जीवन कालेपि प्रायस्ते सर्वे ज्ञातुं न शक्यन्ते।

गुरु—ऐसा नहीं है। घास तो इतने प्रकार की हैं कि सभी मनुष्य जीवनकाल में भी प्रायः उन सबको नहीं जान सकते।

शिष्यः—शस्यानां मध्ये किं तावत् प्रधानं शस्यं ?

शिष्य—शस्यों में कौन सा शस्य प्रमुख है ?

गुरुः—धान्य गोधूम भव प्रभृतिकं तत्र प्रधानं।

गुरु—धान्य, गेहूं और जौ आदि प्रधान हैं।

शिष्यः—शस्येषु किं किं शस्यं लोकैरधिकं भक्ष्यते ?

शिष्य—शस्यों में किस-किस शस्य (अन्न) को लोग अधिक खाते हैं ?

गुरुः—धान्योद्भव तण्डुलोह्यधिकं भक्ष्यते यतस्तेन तण्डुलेन प्रायः पृथिव्यास्त्रिभागस्य लोकैर्जीव्यते ।

गुरु—धान्य से उत्पन्न तण्डुल (चावल) को अधिक खाते हैं क्योंकि उस तण्डुल मे प्रायः पृथ्वी के तीन भाग के लोग जीवन धारण करते हैं।

शिष्यः—कतिविधास्तण्डुलाः सन्ति ?

शिष्य—तण्डुल कितने प्रकार के हैं ?

गुरुः—सिद्धातप भेदेन तण्डुला द्विविधाः तन्मध्ये नानाप्रभेदाः सन्ति। वह्नि योगेन धान्य सन्तापवशात् यस्तण्डुलो भवति तं सिद्धतण्डुलं वदन्ति। केवलं दिनकर किरणैः शुष्कयित्वा यं तण्डुलं करोति तमेवातप तण्डुलं वदन्ति।

गुरु—सिद्ध और आतप भेद से तण्डुल दो प्रकार के हैं उनके अनेकों भेद हैं—अग्नि के सहयोग से धान्य ताप के कारण जो तण्डुल होता है उसको सिद्ध तण्डुल कहते हैं। केवल सूर्य की किरणों से सुखाकर जो तण्डुल बनता है वही आतप तण्डुल कहलाता है।

शिष्यः—अस्य शस्यस्य कथमनेकाऽभिधानमभवत् ?

शिष्य—इस शस्य के अनेक नाम कैसे (क्यों) हुए ?

गुरुः—अवस्था प्रभेदेऽस्य नामविशेषो भवति। पश्य यदा सतुषं तिष्ठति तदा धान्यं कथ्यते यदा च वितुषं क्रियते तदा तण्डुलो लोके चालुरप्यभिधीयते। यदा च भक्षणार्थं स तण्डुलः स्विन्नः क्रियते तदा अन्नं लोके भातमप्यभिधीयते।

गुरु—अवस्था के भेद से इसका नाम विशेष होता है। देखो जब तुष सहित होता है तब धान्य कहा जाता है और जब तुषारहित कर

दिया जाता है तो तण्डुल (कहलाता) लोक में चावल भी कहते हैं और जब भोजनार्थ वह तण्डुल पकाया जाता है तब अन्न (कहलाता) लोक में 'भात' भी कहते हैं।

शिष्यः—वत्सराभ्यन्तरे कस्मिन् कस्मिन् समये धान्यानां वदनं छेदनं च भवति ?

शिष्य—साल के भीतर किस-किस समय में धानों को बोआ और काटा जाता है अर्थात् किस समय बुबाई और कटाई होती है ?

गुरुः—कतिचिद्धान्यानि वैशाखेमास्युप्तानि भवन्ति भाद्रे च सम्पन्नानि भवन्ति किमपि धान्यमाषाढे व्युप्तं सत् पौषे छिन्नं भवति।

गुरु—कुछ धान वैशाख महीने में बोया जाता है और भादों में सम्पन्न होता है। कोई धान आषाढ़ में बो देने पर पूस के महीने में कटाई होती है।

शिष्यः—क्षेत्रेषु धान्यानि केन शीघ्रं वर्द्धन्ते ?

शिष्य—खेतों में धान कैसे शीघ्र बढ़ते है ?

गुरुः—धान्यानि वृष्टिभिस्तूर्णं वर्द्धन्ते।

गुरु—धान वर्षा से शीघ्र बढ़ते हैं।

शिष्यः—अस्मिन्देशेऽन्यत् किमपि शस्यं जायते येनाऽस्माकं महत् प्रयोजनं ?

शिष्य—इस देश में अन्य कोई भी शस्य (अन्न) उत्पन्न होता है जिससे हमें महत् प्रयोजन हो ?

गुरुः—चणकमास प्रभृतिकमेतद्देशे जायते। चणकन्तु घोटकानां भक्ष्यं पाटलीपुत्राख्य देशेऽत्युत्तमं जायतेऽधिकश्च।

गुरु—चना, उड़द आदि इस देश में उत्पन्न होते हैं। चने तो घोड़ों का भक्ष्य है। पाटलिपुत्र (पटना) नामक देश में अति उत्तम और अधिक होता है।

शिष्यः—गोधूमतः किं निष्पद्यते ?

शिष्य—गेहूं से क्या निकलता है ? अर्थात् क्या निष्पन्न होता है ?

गुरुः—प्रथमं तस्मात् चूर्णविशेषो जायते तस्माच्चूर्ण विशेषाद्विह्वि पक्वं, घृतपक्वं पिष्ठकादि जायते।

गुरु—पहले उसमें से चूर्ण विशेष (आटा) बनता है उस चूर्ण विशेष से वहुत से पकवान।

शिष्यः—यवेभ्यः किं निष्पद्यते ?

शिष्य—जौ से क्या बनता है ?

गुरुः—तेभ्यस्तु पिष्ठक विशेषशक्तु यवाग्वादयो भवन्ति परन्त्विवउरप् देशे च तेनैकं पेयवस्तु सम्पद्यते।

गुरु—उनसे तो पिष्ठक विशेष सतुआ, यवागु आदि होते हैं, परन्तु, योरोप देश में उससे एक पेय वस्तु सम्पादित की जाती है।

शिष्यः—शस्यकाण्डैः किं प्रयोजनमस्ति ?

शिष्य—शस्य काण्ड (मुख्य शिरोभाग) से क्या प्रयोजन है ?

गुरुः—यथा फलवत् शीर्षमार्द्धभूमौ पतन्नतिष्ठति एवं येन ग्राम्य लोकानां तृणानि भवन्ति यैरेव तृणैर्गृहमाच्छादयन्ति अपराऽपर कर्मापि कुर्वन्ति तदर्थमेव काण्डानामावश्यकता।

गुरु—जैसे फलवान् शीर्ष (शिरोभाग) गीली भूमि पर गिर नहीं पड़ता एवं जिससे ग्रामीण लोगों को तृण प्राप्त होते हैं उन्हीं तिनकों से घर को आच्छादित करते हैं (छप्पर बनाते हैं।) अन्य कार्य भी करते हैं इसीलिये काण्डों की आवश्यकता है।

शिष्यः—शस्य काण्ड कथमीदृक् तैलाक्तवत् चिक्कणो भवति?

शिष्य—शस्यकाण्ड क्यों इतना तेल से युक्तवत् चिकना होता है ?

गुरुः—यथा वृष्टिजलेन तदवयवस्य कापि हानिर्न भवति तस्मादेवकारणात् तस्य तथात्वमिति ।

गुरु— जिससे वर्षा के जल से उसके अवयव को कोई हानि नहीं होती, उसी कारण से उसका वैसापन है अर्थात् वह चिकना होता है ।

शिष्यः—काण्डेषु ग्रन्थिपत्रयोः किमस्ति प्रयोजनं ?

शिष्य—काण्डों में ग्रन्थि और पत्रों का क्या प्रयोजन है ?

गुरुः—वायुना शस्यकाण्डोभंक्त्वा यथा क्षेत्रभूमौ न पतति तदर्थमेव तयोरावश्यकता ।

गुरु—वायु से शस्यकाण्ड टूटकर जिससे पृथ्वी पर न गिरे इसलिये ही उन दोनों की आवश्यकता है ।

शिष्यः—शस्यकाण्डः कथमुत्तरोत्तरं सूक्ष्मो नमनयोग्यश्च भवति ?

शिष्य—शस्यकाण्ड (शिरोभाग) क्यों उत्तरोत्तर सूक्ष्म और झुकने योग्य होता है ।

गुरुः—यदि तथात्वं न स्यात् तर्हि तदुपरि निवसन् पक्षिगणः पक्वाऽपक्व फलं सदा भक्षयति ।

गुरु—यदि वैसा नहीं होता तो उसके ऊपर बैठते हुए पक्षी समूह पके और बिना पके फलों को सदा ही खाते रहते ।

शिष्यः—शीतसमये शस्यीय नवीन तरुः केन रक्षां प्राप्नोति ?

शिष्य—शीतकाल में शस्य का वृक्ष (नवीन) किस प्रकार रक्षा को प्राप्त करता है ?

CC-0. Agamnigam Digital Preseyation Foundation, Chandigarh

गुरुः—शीतसमये च तस्य चतुःपार्श्वे विविधानि पत्राणि तिष्ठन्ति ग्रीष्मे च तानि विशुष्कानि भूत्वा निपतन्ति तेनैव क्रमशः शस्य काण्डो वृद्धि गत्वा उत्तिष्ठते शस्यश्च सम्यक् सम्पन्नं भवति।

गुरु—शीतकाल में उसके चारों ओर अनेक पत्ते होते हैं और गर्मी में वे सूखकर गिर जाते हैं, उसी से शस्यकाण्ड वृद्धि को प्राप्त करके उठता है और शस्य भली प्रकार सम्पन्न (पक जाता है) हो जाता है।

शिष्यः—शस्य फलानि केनरूपेण रक्षां लभन्ते ?

शिष्य—शस्य फल किस प्रकार रक्षा को प्राप्त होते हैं ?

गुरुः—फलानि तानि कठिनत्वङ्मध्ये सुरक्षितानि तिष्ठन्ति यया त्वचा पक्वानि फलानि सूर्यतापैर्दग्धानि नष्टानि च न भवन्ति एवं वृष्ट्या कुञ्झटिकया च न वा विलीनानि भवन्ति। एवं सम्पन्न समये यदाकृषकैः स्वगृहमानीय राशिः क्रियते तस्मिन् काले कोषान्निर्गत्य यथा मृत्तिकायां न पतन्ति नवाऽपहृतानि च भवन्ति एतस्याः देव कारणात् कठिनायां त्वचि सुरक्षितानि तिष्ठन्ति।

गुरु—वे फल कठोर छिलके के मध्य सुरक्षित रहते हैं जिससे छिलका युक्त पका हुआ फल सूर्य के ताप से दग्ध और नष्ट नहीं होता और इसी प्रकार वर्षा और आँधी से विलीन नहीं होते हैं। इसी प्रकार सम्पन्न (परिपक्व) होने के समय में जब किसान अपने घर लाकर एकत्र करते हैं, उस समय कोप से निकलकर मिट्टी में नहीं गिरते हैं और न अपहृत होते हैं, इसी कारण कठोर छिलके से वे सुरक्षित रहते हैं।

शिष्यः—शस्य फलानि केन वर्द्धन्ते केन वा पक्वतां व्रजन्ति?

शिष्य—शस्य फल किससे बढ़ते हैं अथवा किससे परिपक्वता को प्राप्त होते हैं ?

गुरुः—वृष्ट्या कुज्झटिकता च पुष्टानि भूत्वा रविकिरण सम्पर्केण क्रमशः शुष्कतां गत्वा सुपक्वानि भवन्ति यदि च छिन्नानि भूत्वा कियद्दिनं क्षेत्रे तिष्ठन्ति तर्हि विशेषेण पक्वतांयान्ति।

गुरु—वर्षा और कुहर से पुष्ट होकर सूर्य की किरण के सम्पर्क से क्रमशः सूखकर अच्छी तरह पक जाते हैं और यदि (वृक्ष से) छिन्न अर्थात् अलग होकर कुछ दिन खेत में पड़े रहते हैं तो विशेषतः पक जाते हैं।

शिष्यः—शस्यकाण्डे कियन्ति फलानि जायन्ते ?

शिष्य—शस्य काण्ड में कितने फल उत्पन्न होते हैं ?

गुरुः—फलानामीदृग्बाहुल्यं न भवति येन हेय बुद्ध्या लोकैः स्वल्पमूल्येनाऽधिकं लब्धुं शक्यते एवमीदृगल्तापि न भवति येन तदलाभे पुनः पुनर्दुर्भिक्षं भवति। अनेन परमेश्वरस्य कीदृगनुग्रहः प्रकाशते। पश्य च दैतादृशे दुर्भिक्षं भवति तदा देशान्तरतो भक्ष्यमायाति।

गुरु—फलों का इतना आधिक्य नहीं होता जिससे उपेक्षित भाव से लोग थोड़े ही मूल्य से अधिक प्राप्त नहीं कर सकते और इतनी कमी भी नहीं होती कि जिससे उसके प्राप्त न होने से बार-बार दुर्भिक्ष पड़ता है। इससे परमेश्वर का कितना अनुग्रह दृष्टगत होता है। देखो, यदि इस देश में दुर्भिक्ष होता है तो दूसरे देश से भक्ष्य (भोज्य शस्य) आता है।

शिष्यः—प्रत्येक काण्डे कियन्ति फलानि जायन्ते ?

शिष्य—प्रत्येक काण्ड में कितने फल उत्पन्न होते हैं।

गुरुः—एकस्मिन्नं तावन्ति फलानि जायन्ते यत् श्रुत्वा प्रायः कोपिविश्वसितुं न पार्यते मयैतत् श्रुतं यदेकस्माद्गोधूम वीजात्

शतं काण्डा अजायन्त तेषां काण्डानां शिरसि द्विसहस्र फलानि गणितान्यभवन् ।

गुरु—एक ही से इतने फल उत्पन्न होते हैं कि सुनकर प्रायः कोई भी विश्वास नहीं कर सकता । मैंने यह सुना है कि एक गेहूं के बीज से सैकड़ों काण्ड उत्पन्न हुए उनके काण्डों के शिरोभाग पर दो हजार फल गिने गये ।

शिष्यः—एतत् प्रायोऽविस्सनीयं सत्यं मयैयज्ज्ञायते नेदृशं सर्वदा फलति ।

शिष्य—यह प्रायः अविस्सनीय है यह सत्य है मैं समझता हूं । इस प्रकार हमेशा फलित नहीं होते ।

गुरुः—नह्येवमेकरूपेण सर्वदा फलतीति सत्यं परन्तु क्षेत्रस्य गुणगुणाभाववशात् कृषकाणां प्रयत्नविशेषात् वीजानाञ्चोत्तमाऽनुत्तम भावात् वपनस्य तात्पर्यविशेषाच्च फलविशेषो जायते ।

गुरु—निश्चय ही इस प्रकार एक रूप में सदैव फलते हैं ये सत्य है किन्तु खेत के गुण, गुणों के अभाववश, किसानों के प्रयत्न विशेष से, बीजों की उत्तमता अथवा अनुत्तम भाव से, बोने के बिशेष कारण से फल विशेष उत्पन्न होता है ।

शिष्यः—शस्यजातैरीश्वरस्य कौशलमनुग्रहश्च किमन्यरूपेण ज्ञायते ?

शिष्य—शस्यों से ईश्वर की कुशलता और कृपा क्या किसी अन्य रूप में ज्ञात होती है ?

गुरुः—अस्मिन्नेव विषये परमेश्वरस्य कौशलमनुग्रहश्च समीचीनतया दृश्यते यतोहि शस्याधार विपुल गृहाभ्यन्तरे धान्यादिकं स्थापयित्वा दुर्भिक्षसमये तैरेव प्राणान् धारयन्ति । अन्यत् फलं

सम्वत्सरं नाऽवतिष्ठते फलश्चापरं पक्वं सत् मासमेकं पक्षमेकं वा दिनमेकमपि नहि समीचीनं तिष्ठति। भूमण्डलस्थ तावत् फलानां मध्येऽस्माकं भक्षणार्थं धान्य शूकधान्यादि समं जीवनोपयोगि फलान्तरं नास्ति। पश्य, प्रतिवासरमस्माभिरन्नादिर्भक्ष्यते तथापि तत्र नाऽस्माकमरुचिर्जायते अतः कारणात् सर्वाणि धान्यानि सर्वेषां प्राणिनां प्राणधारणयष्टिरभवत्। तस्मिन्विषये वयं कीदृग् चेतनाविहीनाः स्मः एवं प्रत्यहमुचितं भक्ष्यं लभामहे तथापि तत्र कीदृगऽकृतज्ञा भवामः।

गुरु—इसी विषय में ईश्वर की कुशलता और (अनुग्रह) कृपा भली प्रकार दृष्टिगत होती है क्योंकि शस्य के बड़े घरों में अर्थात् शस्य रखने योग्य बड़े-बड़े गोदामों में धान आदि रखकर दुर्भिक्ष के समय उसी से प्राणों को धारण करते हैं। दूसरा फल अर्थात् अन्य फल एक साल तक नहीं रह पाते और अन्य फल तो पककर अर्थात् पक जाने पर एक महीने; एक पक्ष (१५ दिन) अथवा एक दिन तक ठीक नहीं रहते। भूमण्डलीय फलों के बीच में हमारे खाने के लिये धान, शूक धान आदि के समान जीवनोपयोगी फल नहीं है। देखो, प्रतिदिन हम अन्न आदि खाते हैं तो भी हमें इससे अरुचि पैदा नहीं होती। इसी कारण सभी धान्य सभी प्राणियों के प्राण धारिका लकड़ी के समान है। उस विषय में हम कैसे चेतना विहीन हैं और प्रतिदिन उचित भक्ष्य (भोज्य पदार्थ) प्राप्त करते हैं तो भी कैसे अकृतज्ञ हैं।

शिष्यः—यदपि शस्यजातं नहि भक्षणोपयोगि तन्मध्ये किं किमिति प्रयोजनार्हं भवति ?

शिष्य—यद्यपि शस्य जात अर्थात् सब धान खाने के उपयोग में नहीं आता क्या उसमें अति प्रयोजन के योग्य कुछ होता है ?

गुरुः—उभयाशणेन चास्माकं महत् प्रयोजनमस्ति उभया कृषकाणां महान् लाभोऽपराणाञ्च परमोपकारो बोद्धव्यः।

गुरु—दोनों प्रकार के शण से (सन) हमारा बहुत प्रयोजन है। दोनों किसानों के लिये महान् लाभकारी और दूसरों के लिये परमोपकारी जानना चाहिये।

शिष्यः—केन प्रकारेण तया लाभोपकारौ भवतः ?

शिष्य—किस प्रकार से उससे लाभ और उपकार होता है ?

गुरुः—तस्या बीजात्तैलं जायते काण्डत्वचा च सूक्ष्मं वस्त्रं जायते। तस्मिन् वस्त्रे जीर्णे सति तस्मादुत्तमं शुभ्रतरं कागजेति प्रसिद्धं लिपियोग्यं पत्रं निर्मितं भवति।

गुरु—उसके बीज से तेल बनता है काण्ड और छिलके से वस्त्र बनता है। उस वस्त्र के जीर्ण (पुराने) हो जाने पर उससे उत्तम श्वेत कागज इस नाम से प्रसिद्ध लिखने योग्य कागज बनता है।

शिष्यः—जीर्ण वस्त्रात् किं तन्निर्मितं भवति ?

शिष्य—क्या वह जीर्ण वस्त्र से बनता है ?

गुरुः—तद्वस्त्रं यन्त्र विशेषेण पिष्ट्वा जलशिरीष निर्यास सम्पर्केण संमिश्य समे यन्त्रे निःक्षिपति अनेन प्रकारेणाऽस्माकं व्यवहारार्थं परम प्रयोजनार्हं वस्तु जायते स्थूलवस्त्रेण स्थूललिपिपत्रं जायते।

गुरु—उस वस्त्र को यन्त्र विशेष से पीसकर जल शिरीष निर्यास सम्पर्क से मिलाकर समान यन्त्र में डाल देते हैं। इस प्रकार से हमारे व्यवहार के लिये परम प्रयोजन की वस्तु बन जाती है। मोटे वस्त्र से मोटा लिखने का कागज बनता है।

शिष्यः—शणेन किं कार्यं भवति ?

शिष्य—सन से क्या कार्य होता है ?

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गुरुः—तस्माच्च नौकायान वितानार्थं विपुल गोण्याद्यर्थञ्च स्थूलं वस्त्रं भवति एवं तेन सूक्ष्म रज्जु वृहन्नौस्थूलरज्जुश्च निर्मिता भवति। त्वयैतत् सर्वं बुद्ध्वा द्रष्टुं शक्यते यदेतज्जगदेकं महा-कोषागार स्वरूपं वर्त्तते। यस्मिन्नगणितं महामूल्यं वस्तु विद्यत इति।

गुरु—उससे नौकायान (नाव) के वितान के लिये विशाल डलिया आदि के लिये स्थूल वस्त्र बनता है और उससे पतली रस्सी और बड़ी नौकाओं के लिये बड़ी (मोटी) रस्सी निर्मित होती है। तुम ये सब जानकर देख सकते हो कि यह संसार एक महान् कोषागार (भण्डारगृह) है जिसमें अगणित महामूल्यवान् वस्तु विद्यमान है।

⁂

अथ त्रयोदश कथोपकथनम्

(आकर जातवस्तु विषयकं)

गुरुर्वदति—सम्प्रति वयं वस्तुविवेक चरमभागमर्यादाकर जातवस्तु वर्गं विवेचयामः ।

गुरु कहते हैं—अब हम वस्तु विवेक की परम सीमा अर्थात् खान में उत्पन्न वस्तुवर्ग का विवेचन करते हैं ।

शिष्यो वदति—यथा प्राणिनो वृक्षाश्च जातिवर्गादिभिर्विभक्ताः सन्ति तथा खनिसम्भूतानि वस्तूनि किं विभक्तानि सन्ति ?

शिष्य कहता है—जैसे प्राणि और वृक्षाजाति वर्गादि में विभक्त हैं वैसे ही खान में उत्पन्न वस्तु क्या विभक्त है ?

गुरुः—सन्ति चतसृभिर्जातिभिराकरजानि वस्तूनि विभक्तानि । यथा प्रस्तरो लवणं ज्वलनीय वस्तु धातुरित्येतच्चतसृणां जातीनां मध्ये वर्गो गणः प्रकारश्च विद्यते ।

गुरु—खान में उत्पन्न वस्तु चार जातियों में विभाजित हैं । जैसे—पत्थर, लवण, जलने योग्य वस्तु, धातु ये चार जाति हैं इनमें वर्ग, गण और प्रकार हैं ।

शिष्यः—प्रस्तरस्य कतिवर्गाः सन्ति ?

शिष्य—पत्थर के कितने वर्ग हैं ?

गुरुः—तस्य द्वौ वर्गौ स्तः। आद्यो मृन्मयो द्वितीयो लवणमयः।

गुरु—उसके दो वर्ग हैं। प्रथम मृन्मय (मिट्टी संयुक्त) द्वितीय-लवणयुक्त।

शिष्यः—सर्वे मृन्मय प्रस्तराः किमेकविधाः सन्ति ?

शिष्य—सभी मृन्मय पत्थर क्या एक ही प्रकार के हैं ?

गुरुः—नहि तेपि द्विविधाः सन्ति। आद्यास्तु यैरेव काचकर्तनं भवति द्वितीया यैरेव तन्न भवति।

गुरु—नहीं, वे भी दो प्रकार के हैं। प्रथम तो जिनसे काँच का कार्य होता है और द्वितीय (वे) जिनसे वैसा नहीं होता।

शिष्यः—प्रथम प्रकारमध्ये कस्तावत् प्रधानः प्रस्तरः ?

शिष्य—प्रथम प्रकार में कौन से प्रधान पत्थर हैं ?

गुरुः—एतत् प्रकारमध्ये मणिरत्नादिकं गणितं भवति तानि च हीरक, पद्मराग, पीताश्म, मरकत, नीलकान्त, यामूल्याप्रस्तर स्फाटिकादीनि वेदितव्यानि।

गुरु—इस प्रकार के अन्तर्गत मणि, रत्नादि, परिगणित होते हैं उनमें हीरा-पन्ना, पुखराज, मरकत, नीलमणि और जो अमूल्य पत्थर स्फटिक मणि आदि जाननी चाहिये।

शिष्यः—एतेषां मध्ये वहुमूल्यं किमस्ति ?

शिष्य—इनमें बहुमूल्य क्या है ?

गुरुः—एतेषां प्रभापरिमाणयोरनुसारेण मूल्याधिक्यं भवति परन्तु सर्वापेक्षया हीरकं वहुमूल्यं भवति।

गुरु—इनकी कांति (चमक) के परिमाण के अनुसार मूल्य की अधिकता होती है, परन्तु सभी की अपेक्षा हीरा बहुमूल्य होता है।

शिष्यः—हीरकं कियन्मूल्यं भवति ?

शिष्य—हीरा कितना मूल्यवान् होता है ?

गुरुः—परिमाण विशेषेण हीरकस्य मूल्यं निर्णीतं भवति अतः कस्यचिद्धीरकस्य मूल्यं मुद्राशतं कस्यचिद्वा शतत्रयं कस्यचिद्धिदुरस्यमुद्रा सहस्र मूल्यं भवतीत्यादिकं वेदितव्यं। अवधीयतां मन्दराजाख्य देशादिलण्डदेशे एक महाढ्य समीपे हीरकमेक पञ्चत्रिंशत् सहस्त्राधिक लक्षमुद्राभिर्विक्रीतमभूत्। एवं दक्षिणामेरिकाख्य देशे हीरकमेकं प्राप्तमभूत् यस्य मूल्यमष्टशताधिक चतुश्चत्वारिंशत सहस्रोत्तर षड्लक्षोत्तर पञ्चनियुतं निर्णीतमभूत्। हीरकानां मध्ये यद्धीरकं स्फाटिकवत् हिमानीवद्वा शुभ्रतरं भवति तत्तु सर्वापेक्षया वहुमूल्यं वेदितव्यं।

गुरु—परिमाण विशेष से हीरे का मूल्य निश्चित होता है, अतः किसी हीरे का मूल्य एक सौ मुद्रा (१००) अथवा किसी की कीमत ३००) (तीन सौ) मुद्रा, किसी का मूल्य १००० (एक हजार) मुद्रा होता है, इस प्रकार जानना चाहिये। सुनो, मन्दराज नामक देश से इंग्लैण्ड देश में एक महाजन (धनाढ्य) को एक हीरा एक लाख पैंतीस हजार मुद्राओं से वेचा गया था। एवं दक्षिण-अमेरिका नामक देश में एक हीरा प्राप्त हुआ जिसका मूल्य   निश्चित हुआ। हीरों में जो हीरा स्फाटिक के समान अथवा बर्फ के समान शुभ्रतर होता है वह तो सभी की अपेक्षा बहुत मूल्यवान होता है यह जानो।

शिष्यः—मणिरत्न मेतत् सर्वं कस्मिन् स्थाने प्राप्तं भवति ?

शिष्य—ये सभी मणिरत्न किस स्थान में प्राप्त होता है ?

गुरुः—आकरे, पर्वत विशेषे नदीविशेष, वालुकाभ्यन्तरे च रत्नादिः प्राप्यते।

गुरु—खान में, पर्वत विशेष में, नदी विशेष और वालू के अन्दर से रत्नादि प्राप्त होते हैं ।

शिष्यः—मणिरत्नादिभिन्नः कश्चिदपरः प्रस्तरोऽस्मिन् वर्गे किं नास्ति येनाऽस्माकं महत् प्रयोजनमस्ति ?

शिष्य—मणि रत्नादि से भिन्न क्या कोई दूसरा पत्थर इस वर्ग में नहीं है जिससे हमको बहुत प्रयोजन है ?

गुरुः—अस्त्येवैतत् वर्गाभ्यन्तरे वह्नि प्रस्तर वालुकादिर्गणितो भवति एतदुभयेन काच स्वच्छ काचादर्शादिकं निर्मितं स्यात् ।

गुरु—है । इस वर्ग में वह्नि पत्थर और बालुका आदि गिने जाते हैं । इन दोनों से कांच, स्वच्छ कांच अर्थात् आदर्श (दर्पण) आदि बनाये जाते हैं ।

शिष्यः—ये प्रस्तरा हि रेखया स्वच्छकाचं न छिन्वन्ति तन्मध्ये केके गणिता भवन्ति ?

शिष्य—जो पत्थर रेखा से निर्मल कांच को नहीं काटते हैं उनमें कौन-कौन से (पदार्थ) परिगणित होते हैं ।?

गुरुः—एतेषां मध्ये सर्वा मृत्तिका गणिताः सन्ति याभिरस्माकं इष्टका मृतघटादि पात्रं निर्मितं भवति ।

गुरु—इनमें सभी प्रकार की मिट्टियाँ गिनी जाती हैं जिनसे हमारी ईंट और मिट्टी का घड़ा आदि पात्र निर्मित होता है ।

शिष्यः—मयैतत् श्रुतं सर्वामृत्तिका उपर्युपरिभावेन पृथक् पृथक् तिष्ठन्ति तत् किं सत्यं ?

शिष्य—मैंने यह सुना है कि सभी मिट्टी समीप भाव से अर्थात् तहों की भिन्नता में पृथक्-पृथक् रूप में हैं वह क्या सत्य है ?

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गुरुः—प्रथमे उर्वरा कृष्णवर्णा मृत्तिका तिष्ठति यस्यां धान्यादि शस्यं वृक्षादिश्च जायते तदधः कदर्माकृतिः स्थूलमृत्तिका तिष्ठति यया चेष्ठकादिः सम्भवति। तदधो नाना कर्करमयी मृत्तिका तिष्ठति ययाऽस्माकमनेक प्रयोजनमस्ति। तदधश्च चूर्णमयी मृत्तिका एषा च मृत्तिका रत्नाद्याकर समीपे नानास्थाने तिष्ठति। तदधो भागेऽङ्गारमयी वह्वी मृत्तिका सा हि हिमानी देशे, वह्निरक्षार्थं महाप्रयोजनार्हा। एतदुपर्युपरिभावेनऽवस्थानं सर्वदैकविधं नो तिष्ठति किन्तु प्रागुक्त वाक्येन तासामवस्थितेरनुक्रमो वेदितव्यः।

गुरु—सबसे पहिले उपजाऊ काली मिट्टी रहती है जिसमें धान आदि शस्य और वृक्ष उत्पन्न होते हैं उसके नीचे कर्दम की आकृति की स्थूल (मोटी) मिट्टी होती है जिससे ईंट आदि उत्पन्न होती हैं (बनाई जाती हैं।) उसके नीचे अनेक कंकड़ से युक्त मिट्टी होती है जिससे हमारे अनेक प्रयोजन हैं। उसके नीचे चूर्णमयी (चूने की) मिट्टी है और ये मिट्टी रत्नादि की खान के समीपवर्ती अनेकों स्थानों में है। उसके निचले भाग में अङ्गारमयी बहुत सारी मिट्टी है वह बर्फीले भाग में अग्नि की रक्षा हेतु महान् प्रयोजन के योग्य है। ये उपर्युपरि भाव से (एक के ऊपर एक) सर्वदा एक ही प्रकार नहीं रहतीं, किन्तु पहले कहे गये वचनों से उनके अवस्थिति में क्रम समझना चाहिये।

शिष्यः—एतद्वर्गाभ्यन्तरे कश्चिदाश्चर्य प्रस्तरोऽस्ति ?

शिष्य—इस वर्ग के अन्तर्गत कोई आश्चर्यमय पत्थर है ?

गुरुः—आमस्त्येकः प्रस्तरो यस्य नामधेयमदाह्य प्रस्तरः। अर्थात् हुताशने निक्षिप्तः सन् ज्वलति न पुनर्दग्धो भवति।

गुरु—हाँ एक पत्थर है जिसका नाम अदाह्य (न जलने वाला) है अर्थात् अग्नि में डालने से जलता है किन्तु दग्ध नहीं होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शिष्यः—लवणमय वर्गाऽभ्यन्तरे केके प्रस्तराः सन्ति ?

शिष्य—लवणमय वर्ग के अन्तर्गत कौन-कौन से पत्थर हैं ?

गुरुः—एतद्वर्गाऽभ्यन्तरे ग्रावजचूर्णं कठिनी श्वेतपाषाणो गृहादि निर्माण योग्य पाषाणादयो नानाविधाः सन्ति ।

गुरु—इस वर्ग के अन्तर्गत पत्थर का चूर्ण (सीमेन्ट अथवा चूना), कठिनी, श्वेत पत्थर (संगमरमर) गृह आदि निर्माण योग्य पत्थर आदि अनेक प्रकार है ।

शिष्यः—ग्रावजचूर्णेन किं प्रयोजनमस्ति ?

शिष्य—पत्थर के चूर्ण (सीमेन्ट) से क्या प्रयोजन है ?

गुरुः—महत्यरोषकर्मणि तल्लगति । पश्य, प्रासादाऽट्टालिकादि निर्माण निवद्ध पङ्कविशेषो लेपविशेषश्च भवति । तदुभयमेवं चिरस्थायि भवति प्रासादादौ प्रलिप्तं सत् प्रायोद्विसहस्राब्द पर्यन्तं पाषाणवत् कठिनं भूत्वा तिष्ठति । एतच्चूर्णं कृषिकर्मोपयोगि भवति यतः क्षेत्राऽभ्यन्तरे कृते निःक्षेपे दुष्टकीटाः प्रणश्यन्तीति । एवं जलधारण शक्ति दत्वा तच्चभूमिमुर्वरां करोति । एवं सितानिर्मली करणे सावनाख्य वस्तुविधाने लौहद्रवीकरणे च एवमपराऽपर कार्येऽपि तस्यावश्यकत्वं विद्यते ।

गुरु—बहुत से कर्मों में वह लगता है । देखो भवन और अट्टालिका आदि के निर्माण में लगाया गया पङ्कविशेष (लेप पदार्थ) अथवा लेप विशेष होता है । वे दोनों ही चिरकाल पर्यन्त स्थायी होते हैं हैं । प्रासादादि में लगाये जाने पर प्रायः दो हजार वर्ष पर्यन्त पत्थर के समान कठोर होकर रहता है अर्थात् मजबूत बना रहता है । इसका चूर्ण कृषि कार्य के लिये (भी) उपयोगी होता है क्योंकि खेतों में डाल देने से दुष्ट कीटाणु नष्ट हो जाते हैं एवं जल धारण करने की शक्ति देकर उस भूमि को उपजाऊ बनाता है । इसी प्रकार, सिता के स्वच्छ करने में सावन

नामक वस्तु के बनाने में, लोहे का द्रवीकरण (तरल) करने में तथा अन्य-अन्य कार्य में भी उसकी आवश्यकता होती है।

शिष्य:—कठिन्या किं कर्म भवति ?

शिष्य—कठिनी से क्या कार्य होता है ?

गुरु:—या कठिनी महाकठिना सा च गृहादि निर्मितौ पाषाणो भवति एवं तया च निवद्धषङ्क विशेषो जायते। लण्डनाख्य नगरे प्राय: सर्वा अट्ठालिका तद्ग्रन्थन पङ्केन निर्मिता भवन्ति। ग्रावज चूर्णवदेषा कठिनी कृषकर्मोपयोगिनी भवति। शिल्पिनश्च तथा कठिन्या अवयवयन्त्रं निर्माय धातुद्रव्यं गालयित्वा तत्रनि:क्षिप्य प्रतिमूर्तिं विदधाति। तक्षाणश्च गठन काष्ठेषु तया च रेखां ददति। एवं भावनाख्यौषधेषु एतस्या भावनामहौषधं।

गुरु—जो कठिनी है वह महान् कठिन है और वह घर आदि के निर्माण के लिये पत्थर होता है और उससे निबद्ध पङ्कविशेप (लेप की सामग्री) उत्पन्न होता है। लन्दन नामक नगर में प्राय: सभी अट्टालिकायें उससे ग्रन्थित पङ्क से ही निर्मित होते हैं। पत्थर के चूने के समान ये कठिनी कृषि-कार्य में उपयोगी होती है। शिल्पी उस कठिनी से अवयव यन्त्र बनाने के लिये धातु द्रव्य को गलाकर वहाँ निक्षेप करके प्रतिमूर्ति (प्रतिमा) बनाते हैं। बढई गठन काष्ठों में उससे रेखा देते हैं। भावना नामक औषधि में इसकी भावना महोषध है।

शिष्य:—श्वेत प्रस्तरेण किं कार्यं भवति ?

शिष्य—सफेद पत्थर (संगमरमर) से क्या कार्य होता है ?

गुरु:—स चास्ति नानाविध:। येनाट्टालिका शोभां कुर्वन्ति कुर्वन्ति च प्रतिमूर्ति निर्माणं येन एवं प्रासादादि मध्यप्रदेशं तैरपि निवद्धं करोति कियत् श्वेत प्रस्तरो दग्धो भूत्वा कठिनीवत् कृषि कर्मोपयोगी भवति।

गुरु— अनेकों (कार्य उससे) हैं जिससे अट्टालिका आदि को शोभन किया जाता है और जिससे मूर्ति का निर्माण होता है और प्रासादादि का मध्यभाग उससे भी निवद्ध किया जाता है। कुछ श्वेत पत्थर दग्ध होकर कठिनी के समान कृषि कार्य में उपकारी होते हैं।

शिष्यः—हे गुरो ! त्वया प्राक् यदुक्तं तन्मया बुद्धं यद्द्वितीय जाति प्रस्तरो लवणमय इति एतस्यां जातौ कति वर्गाः सन्ति ?

शिष्य—हे गुरुदेव ! आपने पहले जो बताया वह मैं जान गया कि दूसरी जाति के कितने वर्ग हैं ?

गुरुः—एतस्यां द्वौ वर्गौ एको मृतिकामयं लवणं द्वितीयो धातुमयं लवणं।

गुरु—इसमें दो वर्ग हैं एक मृत्तिकामय लवण और दूसरा धातुमय लवण।

शिष्यः—प्रथम वर्गाऽभ्यन्तरे कतिविधानि लवणानि सन्ति ?

शिष्य—प्रथम वर्ग में कितने प्रकार के अथवा किस प्रकार के लवण है ?

गुरुः—स्फाटिकार्याख्य लवण विशेषमर्थात् फट्करीति प्रसिद्ध मेकं द्वितीयं पांशु लवणं तृतीयं विड्लवणं चतुर्थं यवक्षारामिध-लवणं शोरेति प्रसिद्धमित्यादि।

गुरु—स्फाटिकारि नामक लवण विशेष अर्थात् 'फिटकरी' इस नाम से प्रसिद्ध एक प्रकार, दूसरा पांशु लवण (खाने का शोरा), तीसरा बिड्लवणं, चौथे प्रकार का यवक्षार नामक लवण शोरा इस नाम से प्रसिद्ध आदि।

शिष्यः—स्फाटिकारिः कस्मिन् कर्माणि लगति ?

शिष्य—फिटकरी किस कार्य में लगती है ?

गुरुः—रङ्गाजीवैर्वस्त्रादौ तया पक्वरङ्गं क्रियते चर्मकारैरपि तयैव चर्मणां दार्ढ्यं क्रियते। वर्त्तिकारैस्तु तया च वर्तिचाक्चक्यं विधीयते। लिपिपत्र कृद्भिस्तया तत्पत्रं विलम्बदाह्यं क्रियते। मुद्राक्षरकृद्भिश्च तया लिपिपत्रीय प्रभाहानिः क्रियते न चेत्तत्पत्रे मुद्रामसी न सम्यग्लगति। कस्मिश्चित समये तया निर्मल जलं क्रियते।

गुरु—रंगरेज (वस्त्र रंगने वाले) उससे वस्त्रादि में पक्का रंग करते हैं, चर्मकार उससे चमड़ा कड़ा करते हैं, वर्त्तीकार तो वर्त्तिचाकचक्य करते हैं, कागज बनाने वाले पत्र को विलम्ब से दहन योग्य बनाते हैं। मुद्राक्षरकार (प्रेस वाले) उससे लिपिपत्र की प्रभा की हानि करते हैं, अन्यथा उस पत्र में टाइप की स्याही अच्छी तरह नहीं लगती, किसी समय उससे निर्मल जल किया जाता है।

शिष्यः—व्यञ्जनीय सुस्वाद जननाऽतिरिक्तमन्यत् किमपि कार्यं पांशुलवणेन भवति?

शिष्य—व्यंजनों में सुस्वाद उत्पन्न करने के अतिरिक्त कोई और भी कार्य पांशुलवण (खाने का शोरा) से होता है?

गुरुः—आं तदतिरिक्तमस्माकं भुक्तवस्तु परिपाकार्थं तत्प्रयोजनमस्ति। किन्तु यद्यधिकं तद्भवति तर्हि भुक्तवस्तुनो जारकतां नाश्रित्य वरं कठिनं विधाय वहुदिनपर्यन्तं तदपिकृतं स्थापयति।

गुरु—हाँ उससे अतिरिक्त हमारी भोज्य वस्तु के परिपाक के लिये (शीघ्र पकाने के लिये) उसका प्रयोजन है। किन्तु यदि वह अधिक हो जाता है, अर्थात् अधिक मात्रा में डाल दिया जाता है तो भोज्यवस्तु जारकता को नष्ट करके कठिन होकर बहुत दिन पर्यन्त उसे अविकृत बनाये रखता है अर्थात् वह वस्तु खराब नहीं होती।

शिष्यः—विड्लवणस्य प्रयोजनं जानामि तेनभेदकमौषधं भवति परन्तु यवक्षाराभिधलवणेन किं प्रयोजनं तदहं ज्ञातुमिच्छामि ?

शिष्य—विड्लवण के प्रयोजन को जानता हूं कि उसका भेद औषधि होती है, परन्तु यवक्षार नामक लवण से क्या प्रयोजन है उसे मैं जानना चाहता हूं ।

गुरुः–नानाविधेष्वौषधेषु यवक्षाराभिधलवणं मिलितं क्रियते । एवं नाना शिल्प कर्मसाधनं तद्भवति एवं यथा भक्ष्यमाममांसादिकं पर्युषितं न भवति तदर्थं सामान्य लवणेन समिश्र्य यवक्षाराख्य लवणं मांसादौ मृक्षितं क्रियते । संग्राम समये च तेन वहुतरं कार्यं भवति यतस्तेन वृह्यस्त्रद्योतनं वस्तु सम्पद्यते ।

गुरु—अनेक प्रकार की औषधियों में यवक्षार लवण (शोरा) मिलाया जाता है । इस प्रकार जाना शिल्प कर्म का साधन होता है और यथा भक्ष्य कच्चा मांस आदि बिगड़ता नहीं है । तदर्थ सामान्य लवण से मिलाकर यवक्षार नामक लवण मांसादि में मिलाते हैं । संग्राम समय में उससे अनेक कार्य होते हैं और उससे आग्नेयास्त्र की वस्तु बनती है ।

शिष्यः—मामिदानीमनुग्रहं विधाय धातुमयप्रधान लवणवृत्तान्तं ब्रूहि ।

शिष्य—मुझे अब कृपा करके धातुमय प्रधान लवण के विषय में बतलाइये ।

गुरुः—धातुमयं प्रधान लवणं तुत्थं तच्च हरिन्नील शुक्लवर्णभेदेम त्रिविधं भवति । हरिद्वर्णं तुत्थेन मसी जायते एवं शङ्कवदह प्रावरण शिरः प्रावरणादिकं रञ्जितं क्रियते । नील-

CC-0. Agamnigam Digital Preseyation Foundation, Chandigarh

वर्ण तुत्थेन च वृहत्पक्षिपक्षो मृगयार्थं वह्वस्त्रं पानपात्र विशेषञ्च रज्यते। श्वेताभ तुत्थेन विविधौषधं निष्पाद्यते एवं कर्मिविशेषैरात्मनां कर्मोपयोगि तैलमयं रोकणाख्यं द्रव्यं झटिति शुष्कं क्रियते तथैव तेन चिरस्थायि सुचारु श्वेतवर्णमेकं रङ्गं निष्पाद्यते।

गुरु—धातुमय प्रधान लवण तोथा है और वह हरे, नीले और श्वेत वर्ण के भेद से तीन प्रकार का होता है। हरे रग के तोथे से स्याही बनती है एवं शङ्कवदह प्रावरण शिरः प्रावरण (हरिण के बाल का वस्त्र) कम्बल, पगड़ी को रंगा जाता है। नीलवर्ण के तुत्थ से वृहत् पक्षि पक्ष, मृगयार्थ वह्नि अस्त्र पानपात्र विशेष रगा जाता है। सफेद आभा वाले तुत्थ से अनेक औषधि बनाई जाती हैं और कर्मि विशेष से अपने कर्म के उपयोगी तैलमय रोकण नामक पदार्थ शीघ्र सुखाया जाता है और वैसे हीं उससे चिरस्थायी सुन्दर श्वेतवर्ण का एक रंग बनाया जाता है।

शिष्यः—आकार जातानां दहनीय वस्तूनां मध्ये किं किं गणितं भवति ?

शिष्य—खान में उत्पन्न दहनीय वस्तुओं के बीच क्या-क्या परिगणित होता है ?

गुरुः—गन्धक मृत्तैल मृन्मयाङ्गार यक्ष धूपादयस्तन्मध्ये गणिता भवन्ति।

गुरु—गन्धक, मिट्टी का तेल, मृन्मयाङ्गार, यक्षधूप आदि उनमें गिने जाते हैं।

शिष्यः—गन्धकेन किं प्रयोजनं भवति ?

शिष्य—गन्धक से क्या प्रयोजन होता है ?

गुरुः—शब्दकृद्दहन्यस्त्रोपयोगि वस्तु निष्पादने शङ्कवप्रावरण

चित्रित वस्त्रादि रञ्जने च तस्याशेष प्रयोजनमस्ति तेन च किमप्यौषधं प्रस्तूयते एवमादि वेदितव्यं ।

गुरु—शब्द करने वाले बहुत से अस्त्रोपयोगी वस्तु के निष्पादन में, कम्बलादि वस्त्र रंगने में उसका अशेष प्रयोजन है उससे कोई औषध भी तैयार होती हैं।

शिष्यः—मृत्तैलेन किं किं कर्म भवति ?

शिष्य—मिट्टी के तेल से क्या-क्या कार्य होता है ?

गुरुः—पारश्य देशीयैः शरीरसुस्थ भावार्थं तत्तैलं पीयते। कस्मिश्चिद्देशे लोकाः सामान्य तैलाभावे तेन तैलेन प्रदीपं ज्वालयन्ति। इतर तैलयोगेन तेन मृत्तैलेन रोकणंति प्रसिद्धं वस्तु सुष्ठुजायते।

गुरु—पाश्चात्य देशीय शरीर के स्वास्थ्य हेतु उस तेल का पान करते हैं। किसी देश में लोग साधारण तेल के अभाव में उस तेल से दीपक जलाते हैं। दूसरे तेल के मिश्रण से उस मिट्टी के तेल से।

शिष्यः— मृन्मयैरङ्गारैः किं प्रयोजनमस्ति ?

शिष्य—मृन्मय अङ्गारों से क्या प्रयोजन है ?

गुरुः—वह्नये तैर्महत् प्रयोजनं भवति हिमानी देशे तदङ्गारा बहवो दह्यन्ते। तद्देशीय लोकानां तैरेव प्रयोजनं विनास्तैस्तेषां भक्ष्यद्रव्यं न निष्पन्नपाकं भवति। एवं तैर्विना नानाशिल्पकर्म रात्रौ च शीतशमनं न भवति।

गुरु—अग्नि के लिये उससे महान् प्रयोजन है बर्फीले देश में वे अङ्गार बहुतायत से प्रज्वलित होते हैं अर्थात् दहकते हैं। उस (बर्फीले प्रदेश) देशीय लोगों को उसी से प्रयोजन है उसके बिना उनका भक्ष्य द्रव्य नहीं पकता और उसके बिना अनेकों शिल्पी कृतकार्य और रात्रि में शीतशमन अर्थात् ठण्डक शान्त नहीं होती।

शिष्यः—किं यक्षधूपस्य किमपि मूल्यमस्ति ?

शिष्य—क्या यक्षधूप का कोई मूल्य है ?

गुरुः—कियतां यक्षधूपानां मूल्यमस्ति परन्तु नानादेशे गोंदेति प्रसिद्धं यद्वस्तु एवं तेन बहूनि कर्माणि निर्वहन्ति ।

गुरु—कुछ यक्षधूपों का मूल्य है परन्तु विभिन्न (अनेकों) देशों में 'गोंद' इस नाम से प्रसिद्ध जो वस्तु है, इसी प्रकार से उससे बहुत से कार्यों का निर्वाह होता है ।

शिष्यः—हे महाशय ! मामनुग्रहं विधाय तुरीय जातेरर्थाद्धातोर्विषये किञ्चित् कथयिष्यन्ति । एतस्य धातोर्वा कति वर्गाः सन्तीति ?

शिष्य—हे महाशय ! मुझको तुरीय जाति अर्थात् धातु के विषय में कुछ कृपा करके (कहेंगे) बतलायेंगे । इस धातु के कितने वर्ग हैं ?

गुरुः—धातोर्द्वौ वर्गौस्तः प्रथम वर्गीयास्तु यस्ताडनीय धातुरर्थात् ताडनयोग्यो द्वितीयश्चाऽताडनीयः ।

गुरु—धातु के दो वर्ग हैं प्रथम वर्ग में तो जो पीटने योग्य है अर्थात् ताडनीय धातु और दूसरा वर्ग जो अताडनीय है ।

शिष्यः—ताडनीय धातुमध्ये केके धातवः सन्ति ?

शिष्य—ताडनीय (पीटने योग्य) धातु में कौन-कौन सी धातुएं हैं ?

गुरुः—अयोधन विशेषेण हातुडीति प्रसिद्धेन ये धातवो नो मग्नतां यान्ति ते ताडनीया धातवः प्रोच्यन्ते । पश्य स्वर्णप्लातीना रजत ताम्र लौह रङ्ग सीसक प्रभृतयो धातव एतद्वर्गीया भवन्ति ।

गुरु—अयोघन विशेष (हतौड़ी) से जो धातु टेढ़ी नहीं की जा सकती वे ताडनीय धातु कही जाती हैं । देखो—स्वर्ण-चांदी तांबा-लोहा रांग सीसा प्रभृति धातु इस वर्ग में आती है ।

शिष्यः—एतेषां मध्ये कस्तावद्धातुरति प्रयोजनार्हः।?
शिष्य—इनमें कौन सी धातु अति प्रयोजन योग्य है ?

गुरुः—लौहेन सततमति प्रयोजनं। स्वर्णेन लौहं क्रीतं भवति परन्तु लौहसाध्यं कर्म स्वर्णेन न भवति यतो लौहापेक्षया स्वर्णं नैव कठिनं स्वर्णेन लाङ्गलादौ निर्मितेऽपि तद्विफलं भवति। समासेन वयमेवं वक्तुं शक्नुमः लौहं विनाऽस्माकं किञ्चिदपि वस्तु नहि निष्पद्यते अतः सर्वधातुभ्यो लौहेनाऽस्माकं महत् फलमस्ति।

गुरु—लोहे से निरन्तर अति प्रयोजन है। सोने से लोहा खरीदा जा सकता है किन्तु लोहे से होने वाला कार्य सोने से नहीं होता क्योंकि लोहे की अपेक्षा सोना कठोर नहीं है (अतः) स्वर्ण से संक्षेप में हम कह सकते हैं कि लोहे के बिना हमारी कोई भी वस्तु निष्पन्न नहीं होती, अतः सभी धातुओं में लोहे से हमें बहुत प्रयोजन हैं।

शिष्यः—अताडनीय धातूनां मध्ये केके धातवः ?
शिष्य—अताडनीय धातुओं में कौन-कौन सी धातुयें हैं ?

गुरुः—अयोधन विशेषेण हातुडीति प्रसिद्धेन ये धातवो भज्यन्ते तएवाडताडनीय धातवः। परन्त्वेतद्वर्गीया धातवः सप्तदशविधाः सन्ति तन्मध्ये चास्मिन्देशे द्विविधौ धातू प्रसिद्धौ स्तः अर्थाद्धरितालमञ्जनमिति।

गुरु—हतौड़ी से जो टूट जाती हैं वे धातु अताडनीय हैं परन्तु इस वर्ग की धातु १७ है, परन्तु इस देश में दो धातु प्राप्त होती हैं हरिताल और अंजन।

शिष्यः—एतदुभयेन किं कार्यं भवति ?
शिष्य—इन दोनों से क्या कार्य होता है ?

गुरुः—हरितालञ्चैकविधं विषमेव तथापि विविधेष्वौषधेषु शिल्पकर्मविशेषेषु च तस्यावश्यकत्वमस्ति। अञ्जनेन च मुद्राक्षराणि नानाविधौषधानि च निष्पाद्यन्ते एवं नयनाञ्जनमपीति।

गुरु—हरिताल एक प्रकार का विष ही है तथापि विविध औषधियों और शिल्प कर्म विशेष में उसकी आवश्यकता होती है। और अञ्जन से मुद्रित अक्षर अर्थात् अक्षर मुद्रित किये जाते है, अनेक प्रकार की औषधि निष्पन्न होती हैं और नेत्रों के लिये अञ्जन (काजल) भी।

* * *

अथ चतुर्दश कथोपकथनम्

(नानादेशोत्पन्न वस्तु विषयकं)

शिष्य:—नानादेशेषु समुत्पन्नानि यानि द्रव्याणि तैरस्माकं किं प्रयोजनम् भवति ?

शिष्य—नाना देशों में उत्पन्न द्रव्यों से हमारा क्या प्रयोजन है ?

गुरु:—येषुदेशेषु तद्देशीयानि वस्तून्युत्पद्यन्ते तानितत्तद्देशीयानां व्ययोपयुक्तानि स्थापयित्वा वाणिज्य कारिणो बृहन्नौकाभिर्नानादेशेषु तानि प्रेरयन्ति । यथा कृषकलोकैर्मृत्तिकामपलभ्य फलं लभ्यते तथा सहस्रं सहस्रं लोका: समुद्रमाश्रित्यफलमिष्टं लभन्ते ।

गुरु—जिन देशों में जो वस्तु पैदा होती हैं उन्हें अपने देश में व्यय के हेतु रखकर व्यापारी बड़ी नौकाओं के माध्यम से अनेक देशों में ले जाते हैं । जैसे किसान मिट्टी को लेकर फल प्राप्त करते हैं वैसे ही हजारों लोग समुद्र के द्वारा फल प्राप्त करते हैं ।

शिष्य:—हे महाशय ! मय्यनुग्रहं विधाय एतद् भूगोलवर्त्ति विविधदेशतो यानि सर्वाणि वस्तून्युत्पद्यन्ते तानि विशेषयित्वा

मां ज्ञापयिष्यसि एवं भूगोलोपरि तान् सर्वान् देशांश्च मां दर्शयिष्यसि ।

शिष्य—महाशय ! मुझ पर कृपा कर इस भूगोल वर्ति विविध देशों से जो वस्तु उत्पन्न होती है । उन्हें बतलावें और भूगोल में ऊपर उन देशों को भी दिखलाने की कृपा करें ।

गुरुः—भूमण्डलेऽस्मिन् यावन्तः खण्डाः सन्ति तेषां मध्ये आशियाख्य देशोऽति धनाढ्यः फलवानपि यतस्तस्मिन् देशे सर्वविधानि शस्यानि विविध प्रकाराणि फलानि च जायन्ते । अस्माकं जीवितार्थं सुखेन समययापनार्थञ्च तस्मिन् देशे नाना वस्तूनि जायन्ते । एवं तस्माद्देशादन्येषु देशेषु बहुमूल्यप्रस्तर विचित्र वणिग्द्रव्य पेयवस्तुविशेष वस्त्रविशेषादयः प्रेरिता भवन्ति ।

गुरु—समस्त भूमण्डल के खण्डों में एशिया देश अत्यन्त धनाढ्य है फलवान् भी है क्योंकि इस देश में सब प्रकार की खेती होती है । अनेक प्रकार के फल होते हैं । हमारी जीवनोपयोगी अनेक वस्तु भी उत्पन्न होती है । और यहीं से अन्य देशों में बहुमूल्य पत्थर विचित्र व्यापार योग्य द्रव्य पेयवस्तु विशेष, वस्त्र विशेष भेजे जाते हैं ।

शिष्यः—देशविशेषे किं द्रव्यविशेषो जायते ?

शिष्य—देश विशेष में क्या द्रव्य होता है ?

गुरुः—आं यदि सर्वस्मिन् देशे एकविधंद्रव्यमुत्पन्नं स्यात्तर्हि सुदूर देशनिवासिनां लोकानां प्रायः किमपि व्यवहार कर्म नोत्पद्यते पश्य, वङ्ग-देशकान्यकुब्जादि देशेषु तण्डुलसिता लवणगुटिकाकीट सूत्र तूलनीली अहिफेणाख्यमादक द्रव्यविचित्र वसनादीन्युत्पद्यन्ते । पश्य शालइतिप्रसिद्धेन शङ्कववस्त्रेण काश्मीर देशोऽति प्रसिद्धोऽस्ति । लंकायां मधुयष्टिका तूलमरिचादीनि नानावस्तून्युत्पद्यन्ते ।

तत्प्रदेशे समुद्रान्मुक्ता फलानि संगृह्यन्ते । ब्रह्मदेशे च स्वर्णरजत सूर्यकान्त नीलकान्तादि मणीनां वहून्याकरस्थानानि सन्ति । एवं तत्र महारण्यानि वहूनि सन्ति येभ्यो वृहन्नौगठनार्थ महान्तो वृक्षा जायन्ते । एवं तस्माद्धि देशात् कार्पास हस्तिदन्तादीनि द्रव्याण्यानीतानि भवन्ति । ब्रह्मदेशे समीपस्योपद्वीपात् रङ्गमरिचगजदन्त वेत्र गन्धवीर्य प्रभृतीनि आनीतानि भवन्ति । चीनाख्यदेशे विविधानां रत्नानामाकरा वहुमूल्य धातवश्च विद्यन्ते । तस्मिन्नपि देशेतण्डुला: शस्यानि नानाविधपेयद्रव्य विशेषाश्च जायन्ते । एवं गुटिका कीटसूत्र काचपात्र लिपिपत्र विशेषैस्तद्देशोऽति प्रसिद्धोऽस्ति । पारश्यदेशाद्गुटिका कीटसूत्र अर्णानिर्मित विचित्रासन चर्ममौक्तिकादीन्यानीतानि भवन्ति । तस्मिंस्तस्मिन् देशे च शाक पुष्प फलानि मेषपशवश्च सुष्ठुजायन्ते । आरवीदेशश्चोत्तम घोटकोष्ट्रोष्ट्रीकाह्वाख्य वणिग् द्रव्याणि च भद्राणि जायन्ते ।

गुरु—हाँ यदि सब देशों में एक सा ही द्रव्य उत्पन्न होवे तो दूर देश निवासियों का कोई व्यवहार कार्यहीन चले । देखो—बंगाल देश कान्यकुब्ज आदि देशों में चावल-शक्कर नमक-गुटिका कीट सूत्र तूल नीली अहिफेण मादक द्रव्य तथा विचित्र वस्त्रादि उत्पन्न होते है । देख–हरिण के बालों से बने शाल के लिये काश्मीर देश प्रसिद्ध है । लंका में मधुयष्टिका तूल-मिर्च आदि नाना वस्तु उत्पन्न होती हैं । उस देश में समुद्र से मोती भी मिलते हैं । ब्रह्मदेश (बर्मा) में सोने-चांदी-सूर्यकान्त नीलकान्त आदि मणियों की खान हैं । वहाँ बहुत से जंगल भी हैं जिन से बड़ी नौका के लिये बड़े वृक्ष भी मिलते हैं और कपास हाथी दांत आदि द्रव्य भी प्राप्त होते हैं । वर्मा के समीप के देश से रंग मिर्च गजदन्त बेंत गन्धवीर्य आदि लाये जाते हैं । चीन देश में अनेक रत्नों की खान हैं बहुमूल्य धातु है । चावल और अनेक प्रकार के पेय द्रव्य विशेष तैयार

होते हैं। गुटिका-कीट सूत्र काच पात्र लिपिपत्र (कागज) आदि इस देश के प्रसिद्ध हैं।

पारस देश से गुटिका कीटसूत्र उनके बने विचित्र आसन चमड़ा, शोनी आदि लाये जाते हैं। उन-उन देशों में शाक पुष्प फल मेष (भेड़) पशु भी अच्छे होते हैं। अरब देश में उत्तम घोड़े ऊँट और काह्व नामक द्रव्य अच्छा होता है।

शिष्य:—यूरुपाख्यदेशे किं वस्तु उत्पद्यते ?

शिष्य—यूरोप देश में क्या होता है ?

गुरु:—इंग्लण्डाख्यदेशे समीचीनोर्णा तीक्ष्णलौहसीसक पाषाणमयाङ्गार काचपात्राणि शस्येषु च यवगोधूमादयो जायन्ते। तत् समीपस्थितैर्लण्डाख्यदेशे नवनीतं लवणाक्तमांस क्षुमासूत्रीय वसनादीनि वस्तूनि समुत्पद्यन्ते। फ्रांशीमस्पेन पोर्टगालाख्यदेशेषु च समीचीना मदिरा नागरंगफल जम्बीरफल-उडुम्बर विशेष खर्जूरविशेष शुष्क द्राक्षाफलादीनि जायन्ते। भूमध्यस्थ सागर सन्निधिदेशेषु तूलगुटिकाटीकमूत्र रेचनी तैलादीनि जायन्ते।

मदिराभिधान देशे चोत्तमोद्राक्षारसो जायते। तद्देश नामधेयानुसारेण लोकास्तमेव मदिरां वदन्ति। सुईदेन देन्मार्क जर्मन्याख्यदेशेषु बृहन्तो गुणवृक्षक विदीर्ण दारुपट्ट देवदारुतरु ताम्रलौह:लोमजवस्त्र पशुचर्म यद्वक्षधूप अस्त्रकातराख्य निर्यासादीनि बहूनि जायन्ते। हलाण्डाख्यदेशत: क्षुमा-शण-नवनीत-पणीराख्य प्रभृतीनि द्रव्याणि वर्षे वर्षे देशान्तरे प्रेरितानि भवन्ति। रुषियाख्यदेशे शण-क्षुमा तारपिनाख्य तैल यक्षधूप आलकतराख्य निर्यास लोमजवस्त्र पशुचर्म पशुमज्जा प्रभृतीनि द्रव्याणि बहूनि जायन्ते।

गुरु—इंग्लैंड देश में समीचीन ऊन तीक्ष्ण लोहा सीसा प्रस्तरमय अंगार काचपात्र और शस्यों में जौ-गेहूं आदि होते हैं, उसके समीप में ही स्थित लन्दन देश में नवनीत-लवण-ताजा माँस रेशमी ऊनी वस्त्र आदि उत्पन्न होते हैं। फ्रांशिस-स्पेन-पुर्तगाल आदि देशों में अच्छी मदिरा नारंगी फल-जम्बीर फल-उदुम्बर विशेष-खजूर विशेष-सूखी दाल आदि होते हैं। भूमध्यस्थ सागर की सन्निधि के देशों में कपास रेचनी तैल आदि उत्पन्न होते हैं। मदिर नामक देश में उत्तम द्राक्षारस उत्पन्न होता है, उस देश के नाम के अनुसार लोक उसी मदिरा का पान करते हैं। स्वीडन-डेन्मार्क-जर्मन आदि देश में बड़ी नौका गुण वृक्षक फटे काष्ठपट्ट देवदारु की लकड़ी, तांबा, लोहा और लोमज वस्त्र-पशु चर्म यक्षधूप-आलकातर आदि वस्तु उत्पन्न होती हैं।

हालेंड देश से क्षुमा-सन-माखन-पनीर आदि द्रव्य प्रतिवर्ष विभिन्न देशों को भेजे जाते हैं। रूस देश में सन-रेशमी वस्त्र-तारपीन तैल-यक्ष धूप-आलकतर निर्यास लोमज वस्त्र पशु चर्म पशु मज्जा प्रभृति द्रव्य उत्पन्न होते हैं।

शिष्यः—आफ्रिकाख्यदेशे किमुत्पद्यते ?
शिष्य—अफ्रीका देश में क्या पैदा होता है ?

गुरुः—तस्मिन्देशे स्वर्ण रेणवो गजदन्ता जलपायीति प्रसिद्ध फलानि जायन्ते एवं खर्जूरीमदिरायवक्षार पशुचर्म गोदाढ्य निर्यास प्रभृति विविधौषधानि समुत्पद्यन्ते।

गुरु—उस देश में स्वर्ण धूलि, हाथी दांत, जलपायी प्रसिद्ध फल विशेष होते हैं तथा खजूरी मदिरा, यवक्षार, पशु चर्म गोदनिर्यास प्रभृति विविध औषध उत्पन्न होते हैं।

शिष्यः—अमेरिकाख्यदेशे किमुत्पद्यते ?

शिष्य—अमेरिका नामक देश में क्या उत्पन्न होता है ?

गुरु:—उत्तरामेरिकाख्यदेशे चतुष्कर वृहद्दारूणि ताम्रकूटाणि पशुचर्माणिसलोम पशु चर्माणि च आलकतराख्यवस्तूनि यक्षधूपादीनि जायन्ते। अमेरिकाख्यदेश समीपस्थोपद्वीपे तण्डुलाः सिताः काह्वाख्य वस्तूनि तूलनोली प्रभृतीनि वस्तूनि च जायन्ते। दक्षिणामेरिकायां स्वर्ण-रजत-पारदादीनि जायन्ते। एवं पिरु वृक्ष पिरुपलस्त्राख्य वस्तूनि नारिकेल नीली तूलकानि काह्वाख्य वस्तूनि च जायन्ते।

गुरु—उत्तरी अमेरिका देश में चौकोर बड़े-बड़े काष्ठ-तांबा पशुचर्म सलोम पशुचर्म आलकतर वस्तु यक्ष धूप आदि उत्पन्न होते हैं। अमेरिका देश के समीपस्थ द्वीप में चावल-शर्करा-काहु-वस्तु तूल नीली प्रभृति वस्तु उत्पन्न होती हैं। दक्षिण अमेरिका देश में सोना चांदी पारद आदि वस्तु उत्पन्न होती हैं। और पिरु वृक्ष-नारिकेल नीली-तूलक आदि वस्तु उत्पन्न होती हैं।

शिष्यः—हे महाशय ! मांप्रति परमानुग्रहं प्रकाशितवान्। तेन कृतार्थोऽहमभवम्। मयेदानीं ज्ञातं मनुष्याणां जगदिदमेकं महाकोषागारमभवत्। परमेश्वर प्रशंसाकरणमस्माभिरत्युचितमेव यस्मिन् जगति कोटि-कोटि मनुष्याः सन्ति तेभ्यः सर्वेभ्यो हिताय ईदृग् बाहुल्यरूपेण भक्ष्यं वस्तु विद्यते। अस्माकं मनस्येवं शंकापि नो भवति यत्तदभावो भविष्यतीति। एतत् सर्वं यावदहं विवेचयामि तावदाश्चर्यं बोधो भवति। परमेश्वरेण विश्वेषां जीवनार्थमेतावन्ति समीचीनानि वस्तूनि सृष्टान्यभवन्निति।

समाप्तश्चायं पदार्थ विद्यासार नामा ग्रन्थः।

शिष्य—हे महाशय ! आपने मुझ पर बड़ी कृपा की। मैं कृतार्थ हुआ। मैंने समझ लिया कि यह सम्पूर्ण जगत् एक महान् कोषागार है।

परमेश्वर की प्रशंसा करना हमें उचित ही है। इस जगत में कोटि-कोटि मानव हैं, उनके सबके कल्याण के लिये बहुत सी भक्ष्य वस्तु हैं। हमारे मन में यह शंका ही नहीं होती कि इनका कभी अभाव भी होगा। परमेश्वर ने सबके जीवन के लिये इतनी अच्छी वस्तु रची है।

॥ पदार्थ विद्यासार नामक ग्रन्थ पूर्ण हुआ ॥

डा० वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी द्वारा लिखित
एव सम्पादित पुस्तकें

१. श्रीमद्भागवत के टीकाकार (शोध प्रबन्ध)
(उ. प्र हिन्दी संस्थान द्वारा पुरस्कृत)
२ श्री द्वारकाधीश महाकाव्यम् (२१ सर्ग
(हिन्दी अनुवाद सहित)
३ अमृत तरंगिणी (श्रीमद्भगवद्गीता टीका हिन्दी अनुवाद)
४. श्रीमद्भागवत पात्रानुक्रमणिका एवं स्थानानुक्रमणिका
५. भागवत परिचय
६, नन्दोत्सवः
७. व्रजस्तवमालिका
८. श्री द्वारकाधीश का संक्षिप्त इतिहास
९ दायभाग (याज्ञवल्क्यस्मृति)
१० अभिज्ञान शाकुन्तलम (हिन्दी समीक्षा एवं टीका सहित)
११. संस्कृत साहित्यका सक्षिप्त इतिहास
१२. संस्कृत निबन्ध निकुंज (उ. प्र. सरकार द्वारा पुरस्कृत)
१३ कठोपनिषद् (प्रथम अध्याय हिन्दी अनुवाद)
१४ पंचतंत्र (मित्र सम्प्राप्ति)
१५. काशिका (हिन्दी टीका)
१६. पदार्थ बिद्यासार
१७ सांख्यकारिका (प्रेस में)
१८. ब्रह्मसूत्र उपनिषद् एवं श्रीमद्भागवत (प्रेस में)

पुस्तक मंगाने का पता—

श्री कृष्ण सत्संग भवन प्रकाशन
९६६ गतश्रम टीला,
मथुरा (उ. प्र.)